भाकृअनुप
ICAR

गेहूँ एवं जौ
स्वर्णिमा

ग्यारहवाँ अंक–2019

भाकृअनुप–भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान

करनाल–132001, भारत

ICAR-Indian Institute of Wheat and Barley Research

Karnal-132001, India

अनुज कुमार, राजपाल मीना, चन्द्र नाथ मिश्र, सोनिया श्योरन, चरण सिंह, रविन्द्र कुमार एवं ओम प्रकाश गुप्ता (2019) गेहूँ एवं जौ स्वर्णिमा, भाकृअनुप–भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान, करनाल– 132001 पृष्ठ संख्या– 118।

गेहूँ एवं जौ स्वर्णिमा

ग्यारहवाँ अंक

सम्पादक मंडल

मुख्य सम्पादक : अनुज कुमार

सम्पादक : राजपाल मीना, चन्द्र नाथ मिश्र, सोनिया श्योरन, चरण सिंह, रविन्द्र कुमार एवं ओम प्रकाश गुप्ता

अतिथि सम्पादक : राकेश कुमार कुशवाहा, उपनिदेशक राजभाषा व सचिव नराकास, करनाल

संरक्षक एवं प्रकाशक : ज्ञानेन्द्र प्रताप सिंह

निदेशक

भाकृअनुप–भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान

करनाल– 132001, हरियाणा

दूरभाष : 0184– 2267490

फैक्स : 0184– 2267390

वेबसाइट : www.iiwbr.gov.in

प्रतियाँ : 300

छायाचित्र : राजेन्द्र कुमार शर्मा

मुद्रण : एरोन मीडिया

यू.जी. 17 सुपर मॉल, सेक्टर–12, करनाल

दूरभाष : 9896433225, 9996547747

प्राक्कथन

भारतीय कृषि नित नई ऊंचाईयों को छू रही है। उत्पादन में लगातार बढ़ोत्तरी इस बात का सूचक है कि उत्पादन तकनीकों जिनका विकास कृषि वैज्ञानिकों द्वारा किया जाता है वह किसानों के खेतों पर अच्छे परिणाम देने में सक्षम हैं। किसान भाई भी उन तकनीकों का यथाशीघ्र अंगीकरण कर रहे हैं और इन तकनीकों की क्षमताओं का भरपूर दोहन करने में सक्षम हो रहे हैं। इस कार्य में भारत सरकार के कृषि एवं किसान कल्याण मंत्रालय से भी विभिन्न योजनाओं के माध्यम से कृषक समुदाय को भरपूर सहयोग मिल रहा है। बीज की उपलब्धता सुनिश्चित करने से लेकर खाद व पानी की व्यवस्था हर खेत और हर फसल को हो सके इसके लिए सरकार नीम कोटेड यूरिया और प्रधानमंत्री सिंचाई योजना के माध्यम से हर संभव सहायता कर रही है। जल को एक बहुमूल्य निधि माना गया है साथ ही यह उत्पादन को प्रभावित करने वाला एक महत्वपूर्ण अवयव भी हैं। अतः प्रत्येक खेत को पानी पहुँचाने के लिए सरकार प्रयास कर रही है। साथ ही जल उपयोग दक्षता को बढ़ाने के लिए **''प्रति बूंद अधिक उत्पादन''** का नारा भी दिया गया है।

आधुनिक खेती को बढ़ावा देने के लिए तथा किसानों की आमदनी में वृद्धि के दृष्टिकोण से संरक्षित कृषि को बढ़ावा दिया जा रहा है जिसके तहत पॉली हाउस, नेट हाउस, लो टनेल आदि पर सरकारी अनुदान देकर किसानों की हर संभव सहायता की जा रही है। यहाँ तक कि परंपरागत खेती से जुड़े हुए किसानों की सहायता की जा रही है। इसी दिशा में भारतीय नस्ल की गायों, भैसों व अन्य जानवरों के संरक्षण, संवर्धन का भी प्रयास गोकुल मिशन जैसी कई योजनाओं से किया जा रहा है। जलवायु परिवर्तन की वजह से आ रही चुनौतियों से लड़ने के लिए हमारी देशी नस्लों की उपयोगिता हमेशा सार्थक पाई गई है।

प्रधानमंत्री फसल बीमा योजना किसानों के लिए एक सुरक्षा कवच के समान है जो कृषि की अनिश्चितताओं में भी एक निश्चित आमदनी सुनिश्चित करता है। अतः हमारे किसान भाई इसका भरपूर फायदा उठाएं। आज सूचना क्रांति का युग है और हमारे किसान भाई इसका भरपूर इस्तेमाल कर भी रहे हैं। भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद के विभिन्न संस्थानों द्वारा कृषि एवं पशुपालन से संबधित अनेकों ऐप विकसित किए गए हैं जिनका किसान भाई इस्तेमाल कर लाभ ले सकते हैं।

''गेहूँ एवं जौ स्वर्णिमा'' के ग्यारहवें अंक में नई तकनीकों, उत्पादन बढ़ाने के तरीकों के साथ–साथ उन सरकारी योजनाओं का जिक्र किया गया है जिसका फायदा किसानों को मिल रहा है। सभी किसान भाई इन योजनाओं की जानकारी कृषि विभाग से ले सकते हैं और पर्याप्त लाभ उठा सकते हैं।

मै इस अंक के प्रकाशन के लिए सभी लेखकों एवं संपादक मंडल के सदस्यों को बधाई देता हूँ कि उनके सराहनीय प्रयासों से इस पत्रिका को मूर्त रूप दिया जा सका है।

जय किसान, जय विज्ञान।

ज्ञानेन्द्र प्रताप सिंह

निदेशक

भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान, करनाल

संपादकीय

भारतीय कृषि की आधारशिला किसान है जो आधुनिक तकनीकों के सफल अंगीकरण से उत्पादन प्रक्रिया को उत्कर्ष पर पहुँचाता है। उसकी तकनीकी आवश्यकताओं के लिए वैज्ञानिक समुदाय नित नए शोधों से उसकी सहायता करने में तत्पर है तो वहीं भारत सरकार एवं प्रदेश की सरकारें विभिन्न कल्याणकारी योजनाओं के माध्यम से उसकी हर संभव सहायता कर रही है।

खेती की विधा से जुड़े तीनों घटकों; किसान, कृषि वैज्ञानिक एवं नीति नियंता का आपसी तालमेल और समझ बहुत आवश्यक है तभी कोई देश कृषि के क्षेत्र में आत्मनिर्भरता, संपन्नता और संप्रभुता हासिल कर सकता है। तकनीकों के विकास में खेती की समझ, किसानों के संसाधनों का ज्ञान तथा किसानों की आवश्यकताओं की परख आवश्यक है तभी शोधों द्वारा किसानों का सही मायने में मार्गदर्शन किया जा सकेगा। नीति नियंताओं को भी यह बारीकी से समझना होगा कि किस वर्ग के किसान को कैसी सहायता दी जाये, कैसे सभी योजनाओं को सरल और सुगम बनाया जाये ताकि एक छोटा किसान भी आगे बढ़कर स्वयं पहल करें।

गेहूँ एवं जौ स्वर्णिमा का ग्यारहवां अंक **''कृषि वैज्ञानिक, तकनीकों एवं कल्याणकारी योजनाओं का कृषि के समग्र विकास में योगदान''** विषय पर आधारित है। इसी से संबंधित लेख इस अंक में सम्मिलित किए गए हैं। मुझे आशा ही नहीं अपितु पूर्ण विश्वास है कि हमारे किसानों के साथ–साथ अन्य पाठक भी इससे लाभान्वित होंगे।

ग्यारह वर्षों के इस शानदार सफर में हमें पाठकों का भरपूर सहयोग मिला है। साथ ही परिषद द्वारा इस पत्रिका को नई पहचान मिली है जो हमारे अंदर रचनात्मक व सृजनात्मक उर्जा का संचार करती है। आज उन तमाम लेखकों को आभार प्रकट करने में मुझे बेहद गर्व की अनुभूति हो रही है जिन्होंने अपनी रचनाओं से हमारा सहयोग किया और मातृभाषा के प्रति अपना समर्पण दिखाया।

मुझे पूरा यकीन है कि ''गेहूँ एवं जौ स्वर्णिमा'' का वर्ष 2019 का यह अंक आप सभी को पसंद आएगा। आप अपने अनुभव पत्र, ई मेल आदि के माध्यम से हमें अवश्य बताएं ताकि भविष्य में इस पत्रिका को और अधिक रोचक बनाया जा सकें।

अनुज कुमार

अनुक्रमणिका

क्र.सं.	शीर्षक	लेखक / लेखिका	पृ.सं.
1	कृषि वैज्ञानिक, तकनीकों एवं कल्याणकारी योजनाओं का कृषि के समग्र विकास में योगदान	अनुज कुमार, राजपाल मीना, मंगल सिंह, सेन्धिल आर एवं रमेश चन्द	01
2	गेहूँ उत्पादन में फसल बीमा योजना द्वारा जोखिम प्रबंधन	मंगल सिंह, सेन्धिल आर, अनुज कुमार, सत्यवीर सिंह एवं रमेश चन्द	04
3	किसानों को लाभावित्त करती विभिन्न सरकारी योजनायें	दीपक, कु. सुमन, अनुज कुमार, अभिषेक कुमार एवं मोनू कुमार	08
4	परम्परागत कृषि विकास योजना – एक जानकारी	मधु पटियाल एवं अंजना ठाकुर	12
5	ड्रिप सिंचाई के बारे में अक्सर पूछे जाने वाले प्रश्न	राजपाल मीना, कर्णम वेंकटेश एवं सूरज गोस्वामी	14
6	अच्छी गुणवता के गेहूँ की खेती द्वारा किसानों की आय में वृद्धि	वनिता पाण्डेय, ओम प्रकाश गुप्ता, स्नेह नारवाल, अंकुश चौधरी एवं सेवा राम	16
7	जीरो बजट खेती	रिंकी, ममृथा एचएम, अंकिता पाण्डेय, राकेश कुमार, जीनत वधवा, एवं योगेश कुमार	19
8	देश में पशुपालन, दुग्ध उम्पादन व दुग्ध प्रसंस्करण तकनीक	चित्रनायक, प्रशांत मिंज, सुनील कुमार, अमिता वैराट, खुशबू कुमारी एवं जितेन्द्र डबास	21
9	धान्य फसलों के मुख्य बीज जनित रोग एवं उनकी रोकथाम	रविन्द्र कुमार, सुधीर कुमार, प्रेम लाल कश्यप, पूनम जसरोटिया एवं ज्ञानेन्द्र प्रताप सिंह	25
10	गेहूँ का पीला रतुआ रोग के लक्षण, रोग प्रसार व नियंत्रण करने के उपाय	आशीष ओझा, भूदेव सिंह त्यागी, ज्ञानेन्द्र सिंह, चन्द्र मौली बग्गा, सोनू सिंह यादव, सुमित संधू एवं गीता संधू	38
11	विभिन्न कृषि उद्यमों में उद्यमशीलता की सफल गाथायें	राजा यादव, खुशबू राज एवं नेहा सिंह	41
12	गेहूँ एवं जौ में मोल्या रोग के लक्षण व उनका प्रबंधन	अंशुल छाछिया एवं चुनी लाल	44
13	पीजीपीआर की मदद से गेहूँ विकास एवं उत्पादन में वृद्धि	पालिका शर्मा, प्रेम लाल कश्यप, पूनम जसरोटिया, रवि शेखर, अंजु शर्मा, सुधीर कुमार एवं ज्ञानेन्द्र प्रताप सिंह	46
14	गेहूँ फसल रोगों पर आधारित मोबाइल ऐप "गेहूँ डॉक्टर"	सुमन लता, डीपी सिंह, पूनम जसरोटिया एवं ज्ञानेंद्र प्रताप सिंह	49
15	फसल अवशेष प्रबन्धन एक वरदान	मंगल सिंह, अनुज कुमार, आरएस छोकर सेन्दिल आर एवं रमेश चन्द	52
16	प्राकृतिक संसाधन जल की कमी–कारण एवं निवारण	विकास जुन, निशा कटारिया आरएस छोकर, राजपाल मीना एवं एससी गिल	55
17	डीबीडब्ल्यू 187 (करण वंदना) के व्यवसायीकरण की सफल गाथा	चुनी लाल, अंशुल छाछिया, दिनेश कुमार एवं ज्ञानेन्द्र प्रताप सिंह	58
18	सटीक डेटा रिकॉर्डिंग के लिए गेहूँ में फील्ड–फिनोटाइपिंग की सामान्य सिफारिशें	आशीष ओझा, चन्द्रमौली बग्गा एवं सोनू सिंह यादव	60
19	गेहूँ की फसल में लगने वाले मुख्य कीट तथा उनका प्रबंधन	अर्पित गौड़, दिनेश चौधरी एवं आरएस छोकर	63
20	ड्रोन : एक अद्भुत वैज्ञानिक खोज	सूरज गोस्वामी एवं सुदेश सिंह चौधरी	65
21	एकीकृत स्वास्थ्य दृष्टिकोणः मनुष्य एवं पशुओं के परस्पर स्वास्थ्य का आधार	विकाश कुमार एवं चन्दन कुमार राय	68

22	पार्थेनियम फसल उत्पादन एवं मानव स्वास्थ्य पर हानिकारक प्रभाव डालने वाला खरपतवार	दिनेश चौधरी	70
23	सब्जी फसलों में गुणवत्तायुक्त बीज बनाने हेतु उन्नत कृषि क्रियाएं	एससी राणा एवं वीके पंडिता	72
24	पर्यावरण अनुकूल गौपालन में देसी नस्लों का योगदान	श्रीजा सिन्हा, गोपाल सांखला एवं निपुणा ठाकुर	75
25	पशुपालकों की आय में वृद्धि करने हेतू भारत सरकार की कुछ महत्वाकांक्षी योजना	विकाश कुमार एवं रामदेव यादव	77
26	मालवा क्षेत्र में रबी प्याज की उन्नत खेती	धर्मेन्द्र सिंह यशोना, मनोज कुमार तरवरिया एवं अनिता कुमावत	80
27	बायोचार : मृदा के लिए वरदान	निधि कम्बोज, विकास जुन, आरके शर्मा, आरएस छोकर एवं सुभाष चन्द्र गिल	84
28	वर्मीवाश	विकाश जुन, आरएस छोकर एवं राजपाल मीना	87
29	धान उत्पादन एवं जलवायु परिवर्तन	रेनू सिंह, रूमा दास एवं श्रीला दास	89
30	कृषि को टिकाऊ बनाने में सूक्ष्मजीवों का महत्व–एक विवेचना	जेके पाण्डेय एवं अनुज कुमार	91
31	डेरी फार्म पर पशु शव निस्तारण के तरीके	श्रीजा सिन्हा, गोपाल सांखला एवं हंस राम मीना	94
32	भूमि की उर्वराशक्ति बढ़ाने एवं अधिक पैदावार लेने के लिए एकीकृत नाशीजीवा प्रबन्धन अपनाएं	उत्तम कुमार, राकेश कुमार, हरदेव राम एवं मुनीष लहरवान	95
33.	कृषक समूह द्वारा कृषि विकास की पहल	आनन्द कुमार ठाकुर	98
34.	कृषि विकास में बैंकों की भूमिका	श्रीश कांत तिवारी	100
राजभाषा खण्ड			
35.	सरकारी कार्य में हिन्दी और इच्छा शक्ति	राकेश कुमार कुशवाहा	103
36.	राजभाषा हिन्दी की दशा और दिशा	अनुज कुमार	105
37.	करें हम हिन्दी का सम्मान	अनुज कुमार	107
38.	मन के धन वे भाव हमारे है	आचार्य रामचन्द्र शुक्ल	108
39.	गेहूँ एवं जौ अनुसंधान परिवार	सूरज गोस्वामी	109
40.	किसान	सूरज गोस्वामी	110
41.	सब उसको कहते मजदूर	श्रीश कांत तिवारी	111
42.	हिन्दी कार्यक्रमों पर रिपोर्ट	–	112

कृषि वैज्ञानिक, तकनीकों एवं कल्याणकारी योजनाओं का कृषि के समग्र विकास में योगदान

अनुज कुमार, राजपाल मीना, मंगल सिंह, सेन्धिल आर एवं रमेश चन्द
भाकृअनुप– भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान, करनाल

कृषि क्षेत्र के समग्र विकास के प्रमुख स्तम्भों में सबसे प्रमुख है कृषि अनुसंधान जिसका सूत्रपात कृषि वैज्ञानिकों द्वारा किया जाता है। उत्पादन के सभी चरणों में उपयोग होने वाली इन्हीं तकनीकों का विकास भी इन वैज्ञानिकों द्वारा समय–समय पर आवश्यकताओं के अनुरूप किया जाता है। साथ ही सरकार की नीतियों द्वारा उन तकनीकों को सुलभता से किसानों के खेतों तक पहुँचाने का बृहत कार्य विभिन्न योजनाओं के माध्यम से समय–समय पर कार्यान्वित करना कृषि विकास को गति प्रदान करता है। जब नए शोधों से विकसित तकनीकों को सरकार की योजनाओं के माध्यम से किसानों के खेतों पर अंगीकृत किया जाता है तो उसके बेहतरीन परिणाम देखने को मिलते हैं। जहाँ एक तरफ किसान अच्छी पैदावार लेने में सक्षम होता है। वहीं उसके ज्ञान का आधार और दायरा भी बढ़ता है। साथ ही वह अंगीकृत तकनीकों में निपुणता भी हासिल करता है जिससे उसके जीवन स्तर में भी सुधार होता है। चूंकि नई तकनीकों से किसानों की आमदनी में निरंतर वृद्धि होती है वह एक आदर्श किसान के रूप में जाना जाने लगता है और वह अपने समाज में तकनीकी नेतृत्व का आगाज भी करता है। समाज में उसकी नए दृष्टिकोण से पहचान भी बनती है और उसके सोचने और समझने का दायरा भी बढ़ता है। उसकी सोच एक व्यवसायिक होने लगती है और वह किसान मित्र बनकर साथी किसानों का मार्ग दर्शन भी करता है।

28 फरवरी, 2016 को उत्तर प्रदेश के बरेली में एक किसान रैली के दौरान माननीय प्रधानमंत्री द्वारा वर्ष 2022 तक किसानों की आमदनी को दोगुनी करने की घोषणा की गई थी। जिसके लिए वार्षिक वृद्धि दर कृषि के क्षेत्र में 10.4 प्रतिशत की चाहिए। इतने बड़े लक्ष्य को प्राप्त करना थोड़ा मुश्किल प्रतीत होता है पर यह असंभव नहीं है। यदि कृषि के विभिन्न फसलों के उत्पादन की बात की जाये तो प्रत्येक वर्ष एक नया कीर्तिमान स्थापित हो रहा है। गेहूँ को ही ले ले तो वर्ष 2019–20 के दौरान क्षेत्रफल में 15 प्रतिशत की बढ़ोत्तरी हुई है और उत्पादन भी 106 मिलियन टन के आस–पास होने की संभावना है। इसका मुख्य कारण भारत सरकार द्वारा चलाई जा रही विभिन्न योजनाएं हैं जिनके तहत किसानों को बीज एवं रोपण सामग्री उपलब्ध करवाया जा रहा है। उसे यूरिया की कमी न हो इसके लिए नीम लेपित यूरिया आवश्यकतानुसार कम कीमत पर उपलब्ध करवाया जा रहा है। उर्वरकों का समुचित इस्तेमाल हो इसके लिए प्रत्येक खेत की मृदा के जाँच की व्यवस्था बृहत पैमाने पर सरकार द्वारा की गई है। राज्य कृषि विभाग, कृषि विज्ञान केन्द्र, शोध संस्थानों द्वारा इस कार्य का संपादन किया जा रहा है और यह प्रक्रिया निरंतर जारी है। मोबाइल वैन के जरिये ग्राम स्तर पर भी यह कार्य बड़ी आसानी से संपादित हो रहा है ताकि अधिक से अधिक किसान इस मुहिम का हिस्सा बन सकें। जहाँ एक तरफ मृदा स्वास्थ्य कार्ड द्वारा मृदा में उपलब्ध विभिन्न पोषक तत्वों की उपलब्धता की जानकारी किसानों को मिल रही है वहीं संतुलित मात्रा में उर्वरकों के इस्तेमाल से फसलों की पैदावार और उनकी गुणवत्ता भी सुनिश्चित हो रही है। कृषि मंत्रालय के आंकडों के मुताबिक अब तक 14 करोड़ मृदा स्वास्थ्य कार्ड जारी किए जा चुके है। किसानों को विश्व मृदा दिवस (5 दिसम्बर) के आयोजन के माध्यम से इसकी महत्ता को भी उजागर किया जा रहा है। इसी प्रकार **'मेरा गाँव मेरा गौरव'** जैसी महत्वाकांक्षी योजनाओं द्वारा भी किसानों को समय–समय पर जागरूक किया जा रहा है।

'स्वस्थ धरा खेत हरा' जैसे नारों को हर खेत तक आत्मसात करने का भारत सरकार की विभिन्न योजनाओं के माध्यम से सम्भव बनाने का निरंतर प्रयास हो रहा है।

जल एक बहुमूल्य प्राकृतिक संसाधन है जिसका उपयोग प्रत्येक फसल के उत्पादन में होता है। एक अनुमान के अनुसार एक किलोग्राम चावल के उत्पादन में 3000–5000 लीटर पानी की आवश्यकता होती है वहीं एक किलोग्राम गेहूँ के लिए 800–1000 लीटर पानी चाहिए अर्थात् कृषि में सिंचाई के लिए काफी मात्रा में जल की आवश्यकता है। हाल के वर्षों में देश के विभिन्न क्षेत्रों में सिंचाई एवं पीने वाले जल की समस्या देखने को मिली है। अतः जल के समुचित उपयोग तथा **'हर खेत को पानी'** के उद्देश्य से 1 जुलाई 2015 से प्रधानमंत्री कृषि सिंचाई योजना का सूत्रपात हुआ जिसका मुख्य उद्देश्य **'प्रति बूंद अधिक फसल'** है। अर्थात् सिंचाई की उन तमाम विधियों को प्रोत्साहित करना जो जल के समुचित प्रबंधन में मदद करें तथा सिंचित जल का उचित उपयोग हो सकें। इस दिशा में (ड्रीप) टपका विधि एवं फव्वारा विधि (स्प्रिंकलर) जैसी सूक्ष्म सिंचाई प्रणालियों को फार्म स्तर पर प्रोत्साहित करने का हर सम्भव प्रयास किया जा रहा है। जल उपयोग दक्षता में सुधार की

दृष्टि से ये प्रणालियाँ काफी कारगर है और 30–40 प्रतिशत तक पानी की बचत संभव है। भारत सरकार द्वारा विभिन्न राज्यों में इस योजना के तहत अनुदान देकर बागवानी एवं अनाज वाली फसलों में इन विधियों को बड़े पैमाने पर अंगीकृत करवाने का लगातार प्रयास किया जा रहा है। यहाँ तक कि प्रधानमंत्री सिंचाई योजना के तहत वाटरशेड विकास घटक के अंतर्गत ग्राम स्तर पर तालाब निर्माण तथा पुराने तालाबों का जीर्णोद्धार भी किया जा रहा है। इन सभी योजनाओं का उद्देश्य जल के प्राकृतिक स्त्रोतों का उपयोग, जल संरक्षण एवं संग्रह, वर्षा जल का संग्रह आदि है।

खेती में धन की आवश्यकता होती है। भूमि की तैयारी से लेकर विपणन तक के विभिन्न कृषि कार्यों के लिए धन चाहिए। इसी आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए तथा किसानों को निजी ऋण दाताओं के चंगुल से मुक्त रखने के लिए किसान क्रेडिट कार्ड योजना (केसीसी) की शुरूआत सन् 1998–99 में की गई। इस योजना में कम ब्याज दर पर सस्ती ऋण की सुविधा किसान को विभिन्न बैंकों के माध्यम से उपलब्ध करवाई जाती है। बहुत से किसान केसीसी स्कीम से लाभान्वित हो रहे हैं और कृषि, पशुपालन, मत्स्यपालन, बागवानी आदि से संबधित छोटी–छोटी आवश्यकताओं के लिए आसानी से उपलब्ध धन का प्रयोग कर रहे हैं।

फसल की बुआई से लेकर कटाई, गहाई एवं ढुलाई तक विभिन्न कृषि यंत्रों एवं उपकरणों की आवश्यकता होती रहती है। इसी को ध्यान में रखते हुए कृषि यंत्रीकरण के तहत जिसमें व्यक्तिगत स्वामित्व पर 25–50 प्रतिशत तक की वित्तीय सहायता छोटे एवं सीमांत किसानों को दी जाती है। कृषि यंत्रीकरण बैंकों की स्थापना पर 40 प्रतिशत की वित्तीय सहायता तथा किसान समूहों को 80 प्रतिशत तक वित्तीय अनुदान देकर यंत्रों की खरीद सुनिश्चित करने का सरकार द्वारा हर सम्भव प्रयास किया गया है। यहाँ तक कि किराये पर भी मशीन चलाने पर अनुदान का प्रावधान किया गया है। फसल अवशेषों के प्रबंधन पर उत्तर पश्चिमी मैदानी भाग के प्रमुख राज्यों जैसे पंजाब, हरियाणा, पश्चिमी उत्तर प्रदेश में पराली प्रबंधन के लिए उपयोग में लाई जाने वाली वाली मशीन जैसे हैप्पी सीडर, रीपर, रीपर वाईंडर, बेलर, चौपर, एमबी प्लाउ, जीरो टिलेज आदि पर प्रत्येक किसान को 50 प्रतिशत की सब्सिडी तथा किसान समूह एवं कस्टम हायरिंग सेंटर की हाल स्थापना के लिए इन मशीनों पर 80 प्रतिशत का अनुदान उपलब्ध करवाया जा रहा है।

फसल पर खरपतवारों, कीटों एवं बिमारियों का प्रकोप होता है जिससे उत्पादन पर प्रभाव पड़ता है। इससे संबंधित पौध संरक्षण एवं पौध संगरोध उपमिशन के तहत सहायता प्रदान की गई है। साथ ही राष्ट्रीय पादप स्वास्थ्य प्रबंधन संस्थान (एन.आई.पी.एच.एम.) के माध्यम से नीतिगत एवं क्षमता निर्माण के कार्यों का सम्पादन सुचारू रूप से सम्पादित हो सके इसकी भी व्यवस्था की गई है।

राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा मिशन (एनएफएसएम) एक वृहत् परियोजना है जिसकी शुरूआत वर्ष 2007–08 के दौरान हुई थी। इसी कार्यक्रम के तहत देश में दलहन उत्पादन पर विशेष बल दिया गया और इसके उत्पादन में भी आत्मनिर्भरता प्राप्त की गई है। पूर्वी भारत में हरित क्रांति के सूत्रपात से बड़ी संख्या में किसान लाभन्वित हुए है और यह क्रम अभी भी जारी है।

राष्ट्रीय तिलहन एवं ऑयल पाम मिशन के तहत समेकित तिलहन, ऑयल पाम व मक्का की खेती को विस्तार एवं नई गति प्रदान करने के लिए हर संभव प्रयास एवं इससे संबंधित किसानों को वित्तीय सहायता दी जा रही है ताकि खाद्य तेलों के आयात को कम किया जा सके।

इसी प्रकार कृषि की अन्य विधाओं जैसे बागवानी के लिए भी सरकार की अनेकों योजनाएं हैं जिससे रोपण सामग्री से लेकर, नेट हाउस/पॉली हाउस के निर्माण उनकी ढुलाई एवं भंडारण के लिए शीत भंडारण श्रृंखला का निर्माण द्वारा सरकार फल एवं सब्जियों की खेती के हर कदम पर किसानों की मदद कर रही है। मधुमक्खी पालन को बढ़ावा देने व इसके माध्यम से अतिरिक्त आय के सृजन के उद्देश्य से मधुमक्खी बोर्ड की स्थापना की गई है। किसानों को वैज्ञानिक तरीके से मधुमक्खी पालन के लिए प्रशिक्षण देकर उनका क्षमता निर्माण हो रहा है वहीं कृषक उत्पादक समूहों के गठन से शहद उत्पादन के लिए एक विपणन की भी व्यवस्था की जा रही है।

पशुपालन कृषि का अभिन्न अंग रहा है। साथ ही इससे प्राप्त होने वाले गोबर की खाद से खेतों की उर्वरा शक्ति को बढ़ाने में मदद भी मिलती है। पशुधन की उत्पादकता एवं उत्पादन को बढ़ावा देने के लिए कृषि एवं किसान कल्याण मंत्रालय, भारत सरकार द्वारा समय–समय पर नई–नई योजनाओं का सूत्रपात किया जाता है तथा उनके सफल क्रियान्वयन से पशुपालकों की हर संभव सहायता की जाती है। राष्ट्रीय पशुधन मिशन, राष्ट्रीय कामधेनू प्रजनन केन्द्र, राष्ट्रीय पशुधन मिशन चारा और खाद्य विकास, ग्रामीण बैकयार्ड कुक्कुट विकास, भेड़, बकरी विकास तथा पशुधन स्वास्थ्य और रोग नियंत्रण आदि कार्यक्रमों के माध्यम से पशुपालकों को हर कदम पर सहायता करने के लिए सरकार प्रतिबद्ध है।

मछलीपालन के माध्यम से देश में नीली क्रान्ति का सूत्रपात हुआ और व्यवसायिक दृष्टिकोण देने के लिए नीली क्रान्ति कार्यक्रम के तहत मछली पालन से सम्बंधित सभी पहलुओं पर सरकार द्वारा सहायता की जा रही है। उत्पादन उपरांत प्रबंधन एवं विपणन के लिए किसानों को सरकार द्वारा हर संभव सहायता करने के लिए विभिन्न योजनाएं लागू की गई है। कृषि विपणन के लिए राष्ट्रीय कृषि बाजार के माध्यम से विभिन्न उत्पादों की बिक्री के लिए समुचित व्यवस्था करना लघु किसान एग्रीबिजनेस कंसोर्टियम (एसएफसी) का गठन तथा इसके तहत विभिन्न स्कीमों को लागू करना, किसान निर्माता कंपनियों (एफपीसीएस) एवं किसान उत्पादक संगठन (एफपीओ) का गठन ताकि कृषि उत्पादों की बिक्री किसान खुद कर सके और उपभोक्ता के एक रूपये का अधिकांश हिस्सा उसे मिल सके।

मूल्य संवर्धन एवं खरीद योजना के तहत सरकार कृषि जींसों का न्यूनतम समर्थन मूल्य उत्पादन सभा शुरू होने से पहले घोषित करती है तथा देश के विभिन्न मंडियों के माध्यम से उन जींसों की खरीद भी सुनिश्चित करती है। इसके साथ ही खाद्य प्रसंस्करण को बढ़ावा देने के लिए प्रधान मंत्री किसान सम्पदा योजना की शुरूआत वर्ष 2017 में की गई थी जिसका लाभ भी किसान ले रहे हैं। देश में शीत भंडारण श्रृखलाओं के निर्माण एवं विकास के लिए सरकार बहुत अनुदान दे रही है। साथ ही मेगा फूड पार्क एग्रो प्रंसस्करण क्लस्टर आदि के माध्यम से भी हर संभव प्रयास किया जा रहा है ताकि कटाई उपरान्त होने वाले नुकसान को कम किया जा सके। इसी क्रम में अग्र एवं पश्च संपर्क सृजन की योजना द्वारा कच्चे माल की आपूर्ति एवं मंड़ी के साथ संपर्क के सम्बंध को दुरूस्त किया जा रहा है। कृषि पर प्राकृतिक आपदाओं का प्रकोप पड़ता ही रहता है जिससे उत्पादन में भारी नुकसान होता है। इनसे बचने के लिए तथा जोखिम को कम करने के लिए प्रधान मंत्री फसल बीमा योजना पूरे देश में लागू की गई है जो कृषि में जोखिम प्रबंधन के लिए एक कारगर हथियार है। साथ ही किसानों को सूचना देने प्रशिक्षण देने देश के अन्य भागों के भ्रमण आदि से सम्बंधित कई कार्यक्रम देश में चलाए जा रहे है। आतमा के तहत प्रशिक्षण एवं भ्रमण के कार्यक्रम लगातार आयोजित किए जाते हैं। किसान कॉल सेंटर, टॉल–फ्री नम्बर द्वारा फोन के माध्यम से किसानों की समस्याओं का निपटारा सभी संस्थानों, कृषि विभागों और विस्तार संस्थाओं द्वारा किया जा रहा है। समय–समय पर किसान मेला, कृषि प्रदर्शनी द्वारा किसानों को नवीनतम तकनीकों से रूबरू कराने का भी प्रयास होता रहता है। किसान पोर्टल, मोबाईल ऐप तथा व्हाट्सऐप समूहों के माध्यम से भी किसानों का लगातार मार्गदर्शन किया जा रहा है।

हमारे देश में फसल उत्पादन की संपूर्ण प्रक्रिया के प्रत्येक कदम पर सरकार की कोई न कोई योजना है जिसका लाभ किसान भाई ले सकते है। आवश्यकता है उन योजनाओं को जानने व समझने की फिर उनसे लाभन्वित होने की। हमें आशा है कि यह लेख निश्चित रूप से किसानों का मार्गदर्शन करेगा और उनके कृषि कार्यों में हर संभव सहायता करेगा।

गेहूँ उत्पादन में फसल बीमा योजना द्वारा जोखिम प्रबंधन

मंगल सिंह, सेंधिल आर, अनुज कुमार, सत्यवीर सिंह एवं रमेश चन्द
भाकृअनुप–भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान, करनाल

कृषि क्षेत्र की आधारभूत संरचना एवं सिंचाई संसाधनों में उल्लेखनीय सुधार के पश्चात भी, कृषि का एक बड़ा हिस्सा आज भी जलवायु जोखिमों से प्रभावित होता रहता है। भारत में प्राकृतिक आपदाओं के कारण हर वर्ष किसानों को भारी नुकसान उठाना पड़ता है। भारत में फसल–चक्र के दौरान विभिन्न प्राकृतिक आपदाओं जैसे–आगजनी, बाढ़, आँधी, तूफान, ओलावृष्टि, चक्रवात, बिजली का गिरना, सूखा, भूकम्प, भूस्खलन, कीट एवं बिमारियों से फसल खराब हो जाती है। इसके परिणामस्वरूप किसानों को अत्यधिक आर्थिक हानि होती है जिसकी भरपाई कर पाना उनके लिए नामुमकिन होता है।

भारतीय कृषि से संबन्धित जटिलताओं जैसे छोटी एवं बिखरी हई जोत, अत्यधिक पारिस्थितिकीय–भौगोलिक व उत्पादन विभिन्नताएं एवं मौसम संबन्धित असमानताओं के कारण फसलों में होने वाले नुकसान से किसानों को बचाने हेतु फसल बीमा योजना की शुरुआत की गई। इस योजना का मुख्य उद्देश्य प्राकृतिक आपदाओं के होने से किसानों को एक निश्चित आमदनी उपलब्ध कराना है, ताकि फसल बर्बाद होने पर भी किसानों को होने वाले नुकसान की क्षतिपूर्ति बीमा के रुप में की जा सके। भारत में सबसे पहले फसल बीमा वर्ष 1915 में एक प्रस्ताव के रुप में सामने आया था। जिसकी रुप–रेखा मैसूर के जेएस चक्रवर्ती द्वारा रेन इंश्योरेंस स्कीम के रुप में तैयार की गई, लेकिन सफलता नहीं मिल सकी। आजादी के बाद वर्ष 1947 में कृषि एवं खाद्य मंत्रालय के तत्वाधान में फसल बीमा की पुनः शुरुआत की गई। लेकिन राज्य सरकारों से इसे मंजूरी नहीं मिली। भारत सरकार ने वर्ष 1965 में फसल बीमा विधेयक एवं फसल बीमा के लिए एक योजना लाने का फैसला किया। और इसे वर्ष 1970 में डॉ. धर्म नारायण की अध्यक्षता वाली समिति को सौंप दिया गया। इस तरह से दो दशक तक कार्य एवं विचार होने के बावजूद फसल बीमा योजना विवादों से घिरी रही। इस योजना के तहत सन् 1972 में लाइफ इंश्योरेंस कॉरपोरेशन ऑफ इंडिया के जनरल इंश्योरेंस विभाग ने गुजरात में एच–4 कपास पर पहला फसल बीमा कार्यक्रम पेश किया। इसके बाद इसी योजना को गुजरात के साथ तमिलनाडू, महाराष्ट्र, कर्नाटक, आंध्र प्रदेश एवं पश्चिम बंगाल में भी लागू किया गया। इसमें कपास के साथ–साथ गेहूँ एवं आलू को भी शामिल किया गया। इस योजना से लगभग 3110 किसान लाभान्वित हुए। जनरल इंश्योरेंस कॉरपोरेशन ऑफ इंडिया ने वर्ष 1979 में फसल इंश्योरेंस स्कीम ऑफ इंडिया लॉन्च की। इस योजना में अनाज, दालें एवं ज्वार जैसी फसलों को भी शामिल किया गया। इसमें भुगतान की राशि को जनरल इंश्योरेंस कॉरपोरेशन ऑफ इंडिया एवं राज्य सरकार के मध्य 2:1 के अनुपात में निर्धारित किया गया। इस योजना को 13 राज्यों में लागू किया गया, जिससे लगभग 6.27 लाख किसानों को लाभ हुआ। यह योजना वर्ष 1984–85 तक चली। पुनः वर्ष 1985 में इस योजना का नाम विस्तृत फसल बीमा योजना कर दिया गया, यह योजना 15 राज्यों व 2 केन्द्र शासित प्रदेशों में लागू की गई। इस योजना के तहत 30 खरीफ फसलों व 25 रबी फसलों के बीमा का प्रावधान रखा गया।

भारत सरकार ने दिनांक 13 जनवरी, 2016 को खरीफ मौसम से नए कलेवर वाली एक व्यापक और परिवर्तनकारी योजना प्रधानमंत्री फसल बीमा योजना (पीएमएफबीवाई) के नाम से शुरु की। जिसका मुख्य उद्देश्य अप्रत्याशित कारणों से हुई फसल क्षति से पीड़ित किसानों को वित्तीय सहायता प्रदान करना, किसानों को कृषि कार्यों में बनाए रखने के लिए उनकी आय को स्थिरता प्रदान करना, किसानों को नवीन एवं आधुनिक कृषि प्रौद्योगिकियों को अपनाने के लिए प्रेरित करना एवं कृषि क्षेत्रों के लिए ऋण की उपलब्धता बनाए रखकर पोषणीय उत्पादन को बनाए रखना है, ताकि देश की खाद्य सुरक्षा, फसल विविधीकरण, वृद्धि सम्वर्धन एवं कृषि क्षेत्र की प्रतिस्पर्धात्मकता बढ़े और किसानों को उत्पादन जोखिमों से संरक्षण मिल सके।

भारत की खाद्यान्न फसलों में धान के बाद गेहूँ द्वितीय मुख्य फसल है। वर्ष 2019–20 के दौरान भारत में गेहूँ की खेती लगभग 33.22 मिलियन हैक्टर क्षेत्रफल पर की गई है। जिससे रिकार्ड उत्पादन 106 मिलियन टन होने की संभावना है। गेहूँ की फसल देश की खाद्य सुरक्षा में एक अहम भूमिका अदा करती है, इसलिए गेहूँ पैदा करने वाले किसानों की कृषि संबन्धित जटिलताओं को ध्यान में रखते हुए उन्हें ऐसे संकट से राहत देने के लिए केंद्र सरकार द्वारा प्रधानमंत्री फसल बीमा योजना की शुरूआत एक सराहनीय कदम है।

कृषि क्षेत्र में अत्यधिक प्रभावी कृषि पद्धतियाँ विकसित करने के लिए कृषि जलवायु की अधिकतम जानकारी होना अति आवश्यक है। कृषि जलवायु दशाओं के आधार पर भारत को व्यापक रूप से 5 गेहूँ क्षेत्रों में बांटा गया है जिसका विवरण तालिका 1 में दिया गया है।

तालिका 1: गेहूँ के उत्पादक क्षेत्र, अनुमानित क्षेत्रफल एवं संभावित जोखिम

उत्पादन क्षेत्र	क्षेत्रफल (मि.है.)	संभावित जोखिम
उत्तरी पर्वतीय क्षेत्र जम्मू कश्मीर (जम्मू एवं कठुआ जिलों को छोड़कर), हिमाचल प्रदेश (ऊना जिला एवं पोंटा घाटी को छोड़कर) उत्तराखंड (तराई क्षेत्रों को छोड़कर) सिक्किम, पश्चिमी बंगाल की पहाड़ियाँ एवं पूर्वोत्तर भारत के पहाड़ी क्षेत्र	0.82	फसल सत्र के दौरान तापक्रम का उतार– चढ़ाव, सूखा, चक्रवात, बेमौसम बारिश, भू–स्खलन, बिजली का गिरना, प्राकृतिक आग, कीट एवं रोग
उत्तर पूर्वी मैदानी क्षेत्र पूर्वी उत्तर प्रदेश, बिहार, झारखण्ड, उड़ीसा, पश्चिमी बंगाल की पहाड़ियों को छोड़कर, असम एवं उत्तर पूर्वी राज्यों के मैदानी भाग	8.85	असमय वर्षा, फसल–सत्र के दौरान तापक्रम का उतार–चढ़ाव, बाढ़ प्राकृतिक आग, कीट एवं रोग आदि
उत्तर पश्चिमी मैदानी क्षेत्र पंजाब, हरियाणा, दिल्ली, राजस्थान (कोटा एवं उदयपुर संभाग को छोड़कर) पश्चिमी उत्तर प्रदेश, उत्तराखंड के तराई क्षेत्र, जम्मू कश्मीर के जम्मू एवं कठुआ जिले व हिमाचल प्रदेश का ऊना जिला एवं पोंटा घाटी	12.33	असमय वर्षा, फसल–सत्र के दौरान तापक्रम का उतार–चढ़ाव, बाढ़ प्राकृतिक आग, बिजली का गिरना, तूफान, ओले, चक्रवात, आंधी, सूखा, सैलाब, भू– स्खलन, कीट एवं रोग
मध्य क्षेत्र मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़, गुजरात, राजस्थान के कोटा एवं उदयपुर संभाग तथा उत्तर प्रदेश का बुंदेलखंड क्षेत्र (झांसी एवं चित्रकूट संभाग)	6.84	प्राकृतिक आग, बिजली का गिरना, तूफान, ओले, चक्रवात, आंधी, सूखा, बाढ़, सैलाब, भू–स्खलन, कीट एवं रोग
प्रायद्वीपीय क्षेत्र महाराष्ट्र, कर्नाटक, आन्ध्र प्रदेश, गोवा एवं तमिलनाडु के मैदानी भाग, तमिलनाडु के नीलगिरी एवं पलनी पर्वतीय क्षेत्र तथा केरल के वायनाड एवं इडुक्की जिले	0.71	असमय वर्षा, फसल सत्र के दौरान तापक्रम का उतार चढ़ाव, बाढ़ प्राकृतिक आग, बिजली का गिरना, तूफान, ओले, चक्रवात, आंधी, सूखा, सैलाब, भू–स्खलन, कीट एवं रोग

जोखिम की कवरेज

फसलों में निम्नलिखित चरण के अंतर्गत होने वाले नुकसान के लिए जिम्मेदार जोखिम इस योजना के अंतर्गत कवर किये जाते हैं।

बीजाई की रोक संबन्धित जोखिम

सीमित क्षेत्र में कम बारिश या प्रतिकूल मौसमी परिस्थितियों के कारण बीजाई में बाधा उत्पन्न होने पर यह योजना सुरक्षा प्रदान करती है।

खड़ी फसल (बुवाई से लेकर कटाई तक)

मनुष्य द्वारा नियन्त्रित न हो सकने वाले जोखिमों जैसे प्राकृतिक आग, बिजली का गिरना, तूफान, ओले, चक्रवात, आंधी, तूफान, सूखा, बाढ़, सैलाब, भू–स्खलन, कीट एवं रोग आदि के कारण उपज के नुकसान को कवर करने के लिए यह बीमा व्यापक सुरक्षा प्रदान करता है।

कटाई के उपरांत हानि

फसल की कटाई के उपरान्त चक्रवात, चक्रवाती एवं बेमौसम बारिश के विशिष्ट खतरों से उत्पन्न हालत के लिए कटाई से अधिकतम दो सप्ताह की अवधि के लिए इस योजना द्वारा सुरक्षा प्रदान की जाती है।

स्थानीयकृत आपदाएं

अधिसूचित क्षेत्र में मूसलधार बारिश, भू–स्खलन एवं बाढ़ जैसे स्थानीय जोखिम की घटना से प्रभावित विभिन्न पृथक खेतों में उत्पन्न क्षति की स्थिति में यह बीमा योजना सुरक्षा प्रदान करती है।

पात्रता के लिए आवश्यक दस्तावेज

जिन किसानों की फसलें प्राकृतिक आपदाओं तथा अनिश्चित मौसम के कारण प्रभावित होती रहती हैं, वे किसान प्रधानमंत्री फसल बीमा योजना का लाभ ले सकते हैं। इसके अनुबन्ध के लिए व्यक्तिगत किसान, भू–स्वामी या बटाईदार पात्र बनते हैं और वे ही इस योजना का लाभ उठा सकते हैं। किसानों को इस योजना के अनुबन्ध के समय एक फोटो, पहचान पत्र (पैन कार्ड, ड्राइविंग लाइसेंस, वोटर आईडी कार्ड, पासपोर्ट व आधार कार्ड), आवास प्रमाण पत्र (ड्राइविंग लाइसेंस, वोटर आईडी कार्ड, पासपोर्ट व आधार कार्ड) अगर खेत आपका अपना है तो इसका खसरा/खाता नम्बर का पेपर, खेत में फसल की बुवाई हुई है, इसका प्रमाणपत्र (इसके सबूत के तौर पर किसान पटवारी, सरपंच एवं प्रधान जैसे लोगों से एक पत्र लिखवा कर ले सकते हैं।) अगर खेत बटाई या किराए पर लेकर फसल की बीजाई की गयी है तो खेत के मालिक के साथ करार पत्र की फोटोकॉपी (इसमें खेत का खाता/खसरा नम्बर साफ तौर पर लिखा हो) एवं फसल को नुकसान होने की स्थिति में पैसा सीधे आपके बैंक खाते में भेजने के लिए एक निरस्त चेक की आवश्यकता होती है।

गेहूँ का बीमा कराने का समय

प्रधानमंत्री फसल बीमा के तहत गेहूँ की फसल का बीमा 31 दिसम्बर तक करा लेना चाहिए।

बीमा की राशि व प्रीमियम दर

किसानों को खरीफ फसलों के लिए 2 प्रतिशत एवं रबी फसलों के लिए 1.5 प्रतिशत प्रीमियम पर बीमा किया जाता है, शेष प्रीमियम राशि क्रमशः 98 व 98.5 प्रतिशत केन्द्र एवं राज्य सरकारें वहन करती हैं। गेहूँ एवं जौ फसलों के लिए 1.5 प्रतिशत प्रीमियम अदा करनी पड़ती है।

चुनौतियाँ

- बीमा कंपनियां इस योजना के तहत अधिक मुनाफा कमा रही हैं, किसानों में यह धारणा एक बड़ी समस्या बन गई है।
- थोड़े समय के लिए अनुबंध की वजह से बीमा कंपनियाँ इस योजना के बारे में जानकारी पहुंचाने और इस संबंध में लोगों की समस्याओं के समाधान के लिए बहुत कम निवेश कर रही हैं। बार–बार ई टेंडरिंग की वजह से राज्यों में फसल बीमा को पूरी तरह से लागू करने में काफी परेशानी आ रही है।
- राज्य सरकारें अपने हिस्से की सब्सिडी ट्रांसफर करने में देरी करती हैं, जिसके कारण बीमा राशि के भुगतान में काफी देरी होती है।
- उत्तर पूर्वी मैदानी क्षेत्रों में सामुदायिक स्वामित्व वाली भूमि पर खेती करने वाले लाभार्थियों की पहचान का कोई भी प्रावधान न होने के कारण फसल बीमा योजना की पहुंच काफी कम है।
- प्रधानमंत्री फसल बीमा योजना के तहत ऋण लेने वाले किसानों के लिए स्वैच्छिक किया जा सकता है। मंत्रालय द्वारा "लोन लेने वाले किसानों के लिए फसल बीमा अनिवार्य करने की वजह से किसानों में नाराजगी देखी गई है, जो किसान बीमा कराना नहीं चाहते हैं या बगैर उनकी सहमति के इसमें शामिल किया जाता है"।
- किसान इस बात को लेकर काफी नाराजगी जताते हैं, कि उन्हें जबरदस्ती फसल बीमा योजना में शामिल किया जा रहा है और बिना उनकी सहमति के प्रीमियम उनके खाते से काट लिया जाता है।
- फसल नुकसान के आकलन में देरी की वजह से किसानों के दावों का भुगतान समय पर नहीं हो पाता है। प्रमुख फसलों जैसे चावल, मक्का, बाजरा, मूंगफली, गन्ना, कपास, गेहूँ, जौ, तिलहन इत्यादि की उपज का उचित और सटीक अनुमान प्राप्त करने के लिए क्रॉप कटिंग एक्सपेरिमेंट (सीसीई) कराया जाता है इस प्रक्रिया में समय लगता है।
- निर्धारित समय के अन्दर ही प्रति वर्ष करीब 70 लाख सीसीई करना बहुत मुश्किल है, इसके लिए मानव संसाधन की कमी होने के कारण दावा की गई राशि के भुगतान में देरी होती है।

सरकार का आश्वासन एवं पहल

- खाद्यान्न, दलहन एवं तिलहन फसलों के लिए एक मौसम, एक दर होगी, जिससे जिलेवार और फसलवार अलग–अलग दरों से मुक्ति मिलेगी।
- बीमा राशि पर कोई कैपिंग नहीं होगी जिसके कारण दावा राशि में किसी भी प्रकार की कटौती न हो इसके लिए पूरा संरक्षण मिलेगा।
- खेत में जल–भराव को भी स्थानीय जोखिम में शामिल कर किया गया है।
- देश भर में फसल कटाई के बाद चक्रवात एवं बेमौसम बारिस के कारण होने वाले जोखिम को शामिल कर किया गया है।

- फसलों में होने वाले नुकसान के सही आकलन व शीघ्र भुगतान के लिए मोबाइल एवं सैटेलाइट तकनीक के व्यापक उपयोग पर जोर दिया गया है।
- इस योजना से जुड़ने के लिए आसान तरीका एवं अधिकतम सुरक्षा पर जोर दिया गया है।

अधिक जानकारी के लिए सम्पर्क सूत्र

प्रधानमंत्री फसल बीमा योजना को भारतीय कृषि बीमा कम्पनी (एआईसी) क्रियान्वित करती है। फसल बीमा कराने के लिए निकटतम बैंक, पोस्ट ऑफिस, कृषि सहकारिता समिति, बीमा कम्पनी एवं उनके ऐजेंट से सम्पर्क किया जा सकता है। देश के विभिन्न प्रान्तों में प्रधानमंत्री फसल बीमा योजना में निम्नलिखित सरकारी एवं निजी कम्पनियाँ सम्मिलित है।

सरकारी कंपनियाँ

नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड, न्यू इंडिया इंश्योरेंस कंपनी, ओरिएण्टल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड एवं यूनाइटेड इंश्योरेंस कंपनी ऑफ इंडिया लिमिटेड।

निजी कंपनियाँ

बजाज आलियांज जनरल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड, भारती एक्सा जनरल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड, चोला मंडल एमएस जनरल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड, फ्यूचर जनरल इंडिया इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड, एचडीएफसी ईआरजीओ जनरल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड, आईसीआईसीआई लोम्बार्ड जनरल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड, इफको टोक्यो जनरल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड, रिलायंस जनरल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड, रॉयल सुंदरम जनरल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड, एसबीआई जनरल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड, श्रीराम जनरल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड, टाटा एआईजी जनरल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड एवं यूनिवर्सल सोम्पो जनरल इंश्योरेंस कंपनी।

निष्कर्ष

भारतीय कृषि में किसान संकटों के बीच कार्य करते हैं। कभी असमय बारिश तो कभी सूखा तो कभी बाढ़ पैदावार पर नकारात्मक प्रभाव डालते हैं। किसानों को प्राकृतिक आपदाएं झेलनी पड़ती है। इसके चलते उनकी फसलों को नुकसान होता है और कृषि आय पर भी विपरीत असर पड़ता है। कृषि एवं फसल उत्पादन से जुड़े हुए जोखिमों के प्रबंधन एवं किसानों को प्राकृतिक विपदाओं की स्थिति में होने वाली आर्थिक क्षति से निजात दिलाने के लिए फसल बीमा योजना एक सुरक्षा कवच के समान है। अतः इस योजना को अधिक से अधिक किसानों को अपनाना चाहिए।

किसानों को लाभान्वित करती विभिन्न सरकारी योजनायें

[1]दीपक, [2]कु. सुमन, [3]अनुज कुमार, [1]अभिषेक कुमार एवं [1]मोनू कुमार
[1]भाकृअनुप–भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान, करनाल
[2]वीर बहादुर सिंह विश्वविद्यालय, जौनपूर
[3]सी.सी.एस. विश्वविद्यालय, मेरठ

कृषि हमारे देश की अर्थव्यवस्था की रीढ़ की हड्डी है। लेकिन हमारे देश में किसानों की स्थिति दयनीय है। किसानों की आर्थिक स्थिति सुदृढ़ करने के लिये भारत सरकार द्वारा अनेक योजनायें चलाई जाती है। जिससे किसानों को अधिक आर्थिक लाभ प्राप्त हो सके तथा किसान सरकारी योजनाओं का लाभ लेकर अपनी और कृषि की स्थिति में सुधार कर सके। किसानों की आय का प्रमुख साधन कृषि है। सरकारी योजनाओं का लाभ लेकर किसान ऋण मुक्त हो सकते हैं और अपनी आर्थिक स्थिति को सुधारकर देश की उन्नति में योगदान दे सकते हैं। इस लेख में किसानों के लिए चलाई गई सरकारी योजनाओं की विस्तृत चर्चा की गई है जो किसान भाईयों के लिये लाभप्रद सिद्ध होगी।

प्रधानमंत्री फसल बीमा योजना

हमारे किसान भाईयों को हर वर्ष प्राकृतिक आपदाओं के चलते काफी फसल नुकसान उठाना पड़ता है। हर वर्ष बाढ़, सूखा, आंधी, ओलावृष्टि और तेज वर्षा से किसानों की फसलें नष्ट हो जाती है। कृषकों को किसी भी प्राकृतिक आपदाओं से राहत देने के लिए केन्द्र सरकार ने प्रधानमंत्री फसल बीमा योजना 13 जनवरी, 2016 में शुरु की। इसके तहत किसानों को खरीफ की फसल के लिए 2 प्रतिशत प्रीमियम और रबी की फसल के लिए 1.5 प्रतिशत प्रीमियम का भुगतान करना पड़ेगा। प्रधानमंत्री फसल बीमा–योजना वाणिज्यिक और बागवानी फसलों के लिए भी बीमा सुरक्षा प्रदान करती है। वाणिज्यिक और बागवानी में 5 प्रतिशत प्रीमियम का भुगतान करना पड़ता है।

प्रधानमंत्री फसल बीमा योजना के उद्देश्य

1. कृषि में किसानों की सतत् प्रक्रिया सुनिश्चित करने के लिए उनकी आय स्थायित्व करना।
2. प्राकृतिक आपदा (वर्षा, आंधी, सूखा, बाढ़) व कीड़े और रोग के कारण सरकार के द्वारा अधिसूचित फसलों के नुकसान की स्थिति में किसानों को बीमा कवर और वित्तीय सहायता देना।
3. किसानों की खेती में रुचि बनाये रखने का प्रयास एवं उन्हें स्थायी आमदनी उपलब्ध कराना।
4. किसानों को आधुनिक कृषि पद्धतियों को चलन में लाने के लिए प्रोत्साहित करना।
5. कृषि क्षेत्र में ऋण की उपलब्धता को सुनिश्चित करना। भारत सरकार ने एंड्रायड आधारित फसल बीमा ऐप भी शुरु किया है जो फसल बीमा, कृषि सहयोग और किसान कल्याण–विभाग (डीएसी व परिवार कल्याण) की वेबसाइट से डाउनलोड किया जा सकता है और किसान घर बैठे योजना के बारे में पूरी जानकारी प्राप्त कर सकते हैं।

किसान क्रेडिट कार्ड

किसानों को उनके ऋण की पूर्ति (कृषि सम्बन्धी खर्च) के लिये समय–समय पर ऋण की सुविधा प्रदान कराना साथ ही बड़ी संख्या में किसान को कृषि यंत्र, गैर उर्वरक, कीटनाशक आदि जैसी कृषि आगतो की खरीद की जरूरतों के लिये गैर–संस्थागत स्त्रोत पर निर्भर रहना पड़ता है। गैर–संस्थागत ऋण केवल महंगा ही नहीं बल्कि प्रति–उत्पादक भी है। इन्हीं समस्याओं को देखते हुए सरकार ने अगस्त 1998 में फसल के मौसम के दौरान किसानों की समय पर अल्पकालिक ऋण की जरुरतें पूरी करने के लिये किसान क्रेडिट कार्ड को पहली बार बजट 1998–99 में पेश किया। परिणामस्वरूप, नाबार्ड ने आर वी गुप्ता समिति के आधार पर मुख्य बैंकों के साथ परामर्श करके आदर्श किसान क्रेडिट कार्ड योजना तैयार की। किसान क्रेडिट कार्ड योजना किसानों को अपनी खेती से सम्बन्धित जरूरतों के लिये बैंकिंग प्रणाली से सही समय पर और लागत प्रभावी संस्थागत ऋण प्रदान करने के लिये शुरु की गई। किसान क्रेडिट कार्ड योजना सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों, आरआरबी और को–ऑपरेटिंव बैंकों द्वारा लागू की जाती है।

किसान क्रेडिट कार्ड के लाभ

1. किसानों को प्रत्येक फसल में ऋण के लिये आवेदन की कोई आवश्यकता नहीं पड़ती।
2. वितरण प्रक्रिया को सरल बनाता है।
3. बैंकों से नकदी (कृषि सम्बन्धी खर्च के लिये) आसानी से निकालना।

मृदा स्वास्थ्य कार्ड

किसान भाईयों को मिट्टी की उर्वरा शक्ति के बारे मे ज्यादा जानकारी नहीं होने के कारण मुनाफे से ज्यादा कभी कभी

उन्हें नुकसान झेलना पड़ता है। इसी समस्या को देखते हुए भारत सरकार ने किसानों के कल्याण के लिये मृदा स्वास्थ्य कार्ड का शुभारम्भ फरवरी 2015 में राजस्थान के श्रीगंगानगर जिले के सूरतगढ़ में किसानों के लाभ हेतू किया। मृदा स्वास्थ्य कार्ड तीन साल के लिये मान्य है और अगले तीन साल बाद फिर से किसानों को खेतों की मृदा की जाँच करानी होगी। मृदा स्वास्थ्य कार्ड के जरिये किसानों को अपनी खेत की मृदा की उर्वरकता का पता लग सकेगा साथ ही साथ किसान भाईयों को अपने खेत मे सही फसल उगाने का भी ज्ञान होगा कि किस मृदा व मौसम मे कौन सी फसल उगाई जाए जिससे किसानों को अधिकतम लाभ हो। भारत सरकार ने कुल पाँच वर्षों में 14 करोड़ किसान भाईयों को मृदा स्वास्थ्य कार्ड जारी करने का लक्ष्य रखा है। सरकार ने हाल ही में मृदा मैनेजमेंट प्रोग्राम शुरु किया है जिससे फसल की पैदावार बढ़ाने मे मदद मिलेगी। इससे मृदा के पोषक तत्वों का सही इस्तेमाल करके भूमि की उपजाऊ क्षमता में बढ़ोत्तरी की जा सकेगी। इस योजना के तहत मृदा जाँच के लिये ज्यादा से ज्यादा प्रयोगशालाएं स्थापित की जाएगी और किसानों को प्रशिक्षण के लिये 20 प्रशिक्षकों की भर्ती की जाएगी। इसी प्रयास में भारत सरकार ने कृषि विभाग के साथ मिलकर मृदा स्वास्थ्य कार्ड वेब पोर्टल की भी शुरुआत की। इस वेब आधारित एप्लीकेशन www.soilhealth.dac.gov.in से किसान भाई आसानी से जानकारी हासिल कर सकते हैं।

मृदा स्वास्थ्य कार्ड के लाभ

1. इस योजना के तहत किसान भाई के खेतो की मृदा की जाँच हर तीन साल बाद होगी जिससे मृदा मे पोषक तत्वों की कमी या अधिकता का पता चलेगा जिससे किसान भाई उचित फसल उगा सकेंगे।
2. मृदा जाँच में खेतों की लवणीयता, क्षारीयता और अम्लीयता की जाँच भी शामिल है जिससें किसान अपनी खेती की मृदा मे सुधार ला सके।
3. खेतों के निरीक्षण प्रत्येक तीन साल में होने से किसानों के पास अपनी भूमि के स्वास्थ्य का रिकॉर्ड भी सुरक्षित रहता है।
4. मृदा में उपस्थित जल और विभिन्न पोषक तत्वों का भी ज्ञान होता है।

मृदा स्वास्थ्य कार्ड योजना के अन्तर्गत किसान भाई अपनी भूमि के दोषों को दूर करके अधिकतम उपज प्राप्त करके अपनी आय मे वृद्धि से अधिकतम आर्थिक रूप से सृदृढ़ बन सकेंगे।

प्रधानमंत्री कृषि विकास योजना

इस योजना का उद्देश्य खेती मे रसायनयुक्त दवाओं के उपयोग को रोककर जैविक खेती को प्रोत्साहन देना है और किसानों के खेतों की मृदा की गुणवत्ता को बनाए रखना है। यह योजना सरकार द्वारा 2015 से आरम्भ हुई। प्रधानमंत्री कृषि विकास योजना के तहत सरकार जैविक खेती को बढ़ावा देते हुए किसानों को जैविक खेती के लिए प्रशिक्षण और सहायता प्रदान करेगी और किसानों को जैविक खेती के लिये प्रोत्साहित करेगी जिससे कृषि परम्परागत तरीके से की जा सके और मृदा रसायन मुक्त होकर जमीन की गुणवत्ता को बढ़ाया जा सके। इस योजना में अधिक से अधिक किसानों का समूह बनाकर जैविक खेती को बढ़ाकर किसानों को बड़ी सख्या में वित्तीय लाभ पहुँचाना है। हमारे देश मे सिक्किम ऐसा पहला राज्य है जहाँ पूर्ण रूप से जैविक खेती होती है। प्रधानमंत्री कृषि विकास योजना के तहत समूह दृष्टिकोण के माध्यम से एकीकृत खाद प्रबन्धन और जैविक मेले में प्रति किसान समूह को अधिकतम 36330/- रूपये की सहायता देना है।

प्रधानमंत्री कृषि सिंचाई योजना

विगत कई दशकों के प्रयासों के बावजूद कृषि योग्य भूमि का अधिकांश भाग वर्षा आधारित है। वर्षा के अभाव मे किसानों को विषम परिस्थितियों का सामना करना पड़ता है। इसी समस्या को देखते हुए 1 जुलाई, 2015 को प्रधानमंत्री कृषि सिंचाई योजना की शुरुआत की गई। इस योजना के साथ एक टैग लाइन जुडी है **'हर खेत में पानी'** इस योजना के अंतर्गत ड्रिप व स्प्रिंकलर सिचाई प्रणाली से फसलों की बढ़ोत्तरी और साथ ही पानी का कम मात्रा में उपयोग होता हैं। इस योजना के अन्तर्गत शामिल हुए किसान भाईयों को सिंचाई उपकरण (ड्रिप व स्प्रिंकलर) को इस्तेमाल करने के लिये दो दिन का प्रशिक्षण दिया जाता है।

कृषि सिंचाई योजना के लाभ

1. किसानों के लिए सिंचाई योजना तैयार करके किसानों के खेतों तक पानी को पहुँचाना।
2. कृषि योग्य भूमि को समय से तैयार करना ।
3. कृषक सुनिश्चित सिचाई का प्रबंधन जलाशय पुनर्भरण, सतत् जल संरक्षण प्रणाली प्रचलनों के साथ–साथ भूमि जल सृजन, पानी के बहाव को रोककर जल को उपयोग में लाया जा सकता है।
4. इस योजना के अन्तर्गत किसानों को सब्सिडी प्रदान की जायेगी।
5. नये सिंचाई उपकरणों से (ड्रिप व स्प्रिंकलर की प्रणाली से) 40–50 प्रतिशत पानी की बचत होगी और इसके साथ ही 35–40 प्रतिशत कृषि उत्पादन में बढ़ोत्तरी एवं उपज की गुणवत्ता में भी तेजी आएगी।

6. इस योजना से सम्बन्धित जानकारी किसान भाई टोल फ्री किसान कॉल सेंटर 1800–180–1551 से ले सकते हैं। इस योजना की और अधिक जानकारी के लिये pmksy.gov.in वेबसाइट देखे सकते हैं।

किसान कॉल सेंटर

जब किसान नयी उन्नत कृषि तकनीकी का उपयोग करता है तब उसे समस्याएं उत्पन्न होती हैं। सरकार ने 2004 में किसानों की कृषि सम्बन्धित समस्याओं के समाधान के लिये किसान कॉल सेंटर की शुरूआत की। इस योजना का मुख्य उद्देश्य किसान किसी भी समय कॉल करके फ्री में अपनी कृषि सम्बंधित समस्या का समाधान अपनी ही स्थानीय भाषा में प्राप्त कर सकता हैं। एक किसान जो देश के किसी भी हिस्से मे रहता हो किसान कॉल टोल फ्री नंबर 1551 या 1800–180–1551 पर कॉल करके अपनी कृषि सम्बन्धित समस्याओं का समाधान तुरंत पा सकता है। यदि कॉल रिसीव करने वाला व्यक्ति किसान की समस्या का समाधान करने में असर्मथ रहता है तो वह उसी समय उस कॉल को कृषि विशेषज्ञ को ट्रांसफर करता है। यह कॉल सेंटर राज्य और केंद्र शासित प्रदेशों के 14 विभिन्न स्थानों में कार्यरत है। किसानों के सवालों के जवाब 22 स्थानीय भाषाओं में दिये जाते हैं। कॉल सेंटर की सेवाएं सप्ताह के सातों दिन सुबह 6 से रात 10 तक उपलब्ध है। किसान कॉल सेन्टर कृषि या उससे सम्बन्धित (बागवानी, पशुपालन, मत्स्यपालन, कुक्कुटपालन, मधुमक्खी पालन, रेशम उत्पादन, कृषि अभियांत्रिकी, कृषि विपणन, ज़ैव प्रौद्योगिकी एवं गृह विज्ञान) जानकारी देता है।

राष्ट्रीय कृषि विकास योजना

कृषि एवं संबद्ध क्षेत्रों के अधिक समग्र एवं समेकित विकास को सुनिश्चित करने के लिये कृषि जलवायुवीय प्राकृतिक संसाधन और प्रौद्योगिकी को ध्यान में रखते हुए गहन कृषि विकास करने के लिये राज्यों को बढ़ावा देने हेतु एक विशेष अतिरिक्त केन्द्रीय सहायता योजना की शुरुआत की गई है।

राष्ट्रीय कृषि विकास योजना के उद्देश्य

1. राज्यों में कृषि एव सम्बद्ध क्षेत्रों, पशुपालन, मत्स्य पालन में निवेश को बढ़ावा देना है।
2. कृषि एवं सम्बद्ध क्षेत्रों में किसानों को अधिकतम लाभ प्रदान करना।
3. कृषि एवं सम्बद्ध क्षेत्रों के विभिन्न घटकों का समग्र प्रकार से समाधान करके उत्पादन एव उत्पादकता को बढ़ावा देना है।
4. कृषि उद्यमिता को प्रोत्साहित करना और कारोबारी मॉडलों का समर्थन करना जो किसानों की आय को अधिकतम करने में मददगार साबित होगा।

ग्रामीण भण्डारण योजना

देश के छोटे किसानों की आर्थिक स्थिति कमजोर होने के कारण किसान अपने उत्पादों को बाजार मूल्य के अनुकूल होने तक अपने पास सुरक्षित नहीं रख सकते हैं। क्योंकि कृषि उत्पादों के खराब होने की सम्भावना बनी रहती है। इस समस्या के निदान के लिये आवश्यक है कि कृषक समुदाय को भण्डारण की आधुनिक सुविधाएं दी जाए ताकि किसानों की उपज की क्षति होने से रोका जा सके और बाजार मूल्य ठीक होने तक वह अपनी उपज को सुरक्षित रख सके। इसी समस्या को ध्यान मे रखते हुए 2001–02 में ग्रामीण गोदामों के निर्माण के लिये ग्रामीण भण्डारण योजना शुरु की गई। इस योजना के अंतर्गत गोदाम बनाने के लिये सरकार किसानों को लोन देती है और साथ ही साथ सरकार द्वारा सब्सिडी भी दी जाती है।

ग्रामीण भण्डारण योजना के उद्देश्य

1. किसान भाईयों की फसल बर्बाद होने से बचाकर उनकी आय में वृद्धि अर्जित करना ।
2. सरकार ग्रामीणों को भण्डारण के लिये लोन के साथ–साथ सब्सिडी भी उपलब्ध कराएगी।
3. किसानों की कृषि उपज संसाधित कृषि उत्पादों के भण्डारण की किसानों की जरूरतें पूरी करने की लिये ग्रामीण क्षेत्रों में आधुनिक भण्डारण क्षमता का निर्माण करना ।
4. ग्रेडिंग, मानकीकरण और गुणवत्ता नियंत्रण को बढ़ावा देना ।

कुसुम योजना

भारतीय किसानों को खेत की सिचाई मे बहुत परेशानी का सामना करना पड़ता है तथा अधिकतम या कम वर्षा के कारण किसान भाईयों की फसलों को भी अधिक नुकसान होता है। इन्हीं समस्याओं को देखते हुए भारत सरकार ने 2018–19 से कुसुम योजना का शुभारम्भ किया इस योजना का पूरा नाम **'किसान ऊर्जा सुरक्षा व उत्थान महाभियान'** रखा गया है। कुसुम योजना के तहत किसान अपनी जमीन में सौर ऊर्जा उपकरण और सिंचाई पंप लगाकर अपनी खेती की सिंचाई कर सकता है। कुसुम योजना की मदद से किसान अपनी भूमि पर सोलर पैनल लगाकर इससे बनने वाली बिजली से गाँवों में बिजली की पूर्ण आपूर्ति कर सकता है। कुसुम योजना के तहत वर्ष 2022 तक देश में 3 करोड़ सिंचाई पम्प को बिजली या डीजल की जगह सौर ऊर्जा से चलाने की मुहिम है। किसान भाईयों को कुसुम योजना के तहत सोलर पम्प की

कुल लागत का सिर्फ 10 प्रतिशत खर्च ही वहन करना पड़ेगा। कुसुम योजना के लिये करीब 45 हजार करोड़ का भुगतान बैंक लोन के माध्यम से किया जायेगा। केंद्र सरकार ने कुसुम योजना की अधिक जानकारी हेतू www.kusum.online वेबसाइट शुरु की है। इससे किसान भाई अधिकतम जानकारी प्राप्त कर सकते हैं।

कुसुम योजना के फायदे

1. खेत में सिचाई हेतू मुफ्त में बिजली मिलेगी।
2. किसान अतिरिक्त बिजली बनाकर कम्पनी को बिजली बेचकर अतिरिक्त कमाई कर सकता है।
3. कुसुम योजना से गाँवों में भी 24 घण्टे बिजली उपलब्ध कराई जा सकती है।
4. यदि किसान के पास बंजर भूमि है तो वह उसका इस्तेमाल सौर ऊर्जा उत्पादन के लिये कर सकता है इससे उन्हें बंजर जमीन में भी आमदनी का साधन प्राप्त होगा।
5. अगर देश के सभी सिंचाई पंप में सौर ऊर्जा का इस्तेमाल होने लगे तो ना सिर्फ बिजली की खपत कम होगी अपितु 28 हजार मेगावाट अतिरिक्त बिजली का भी उत्पादन सम्भव है।

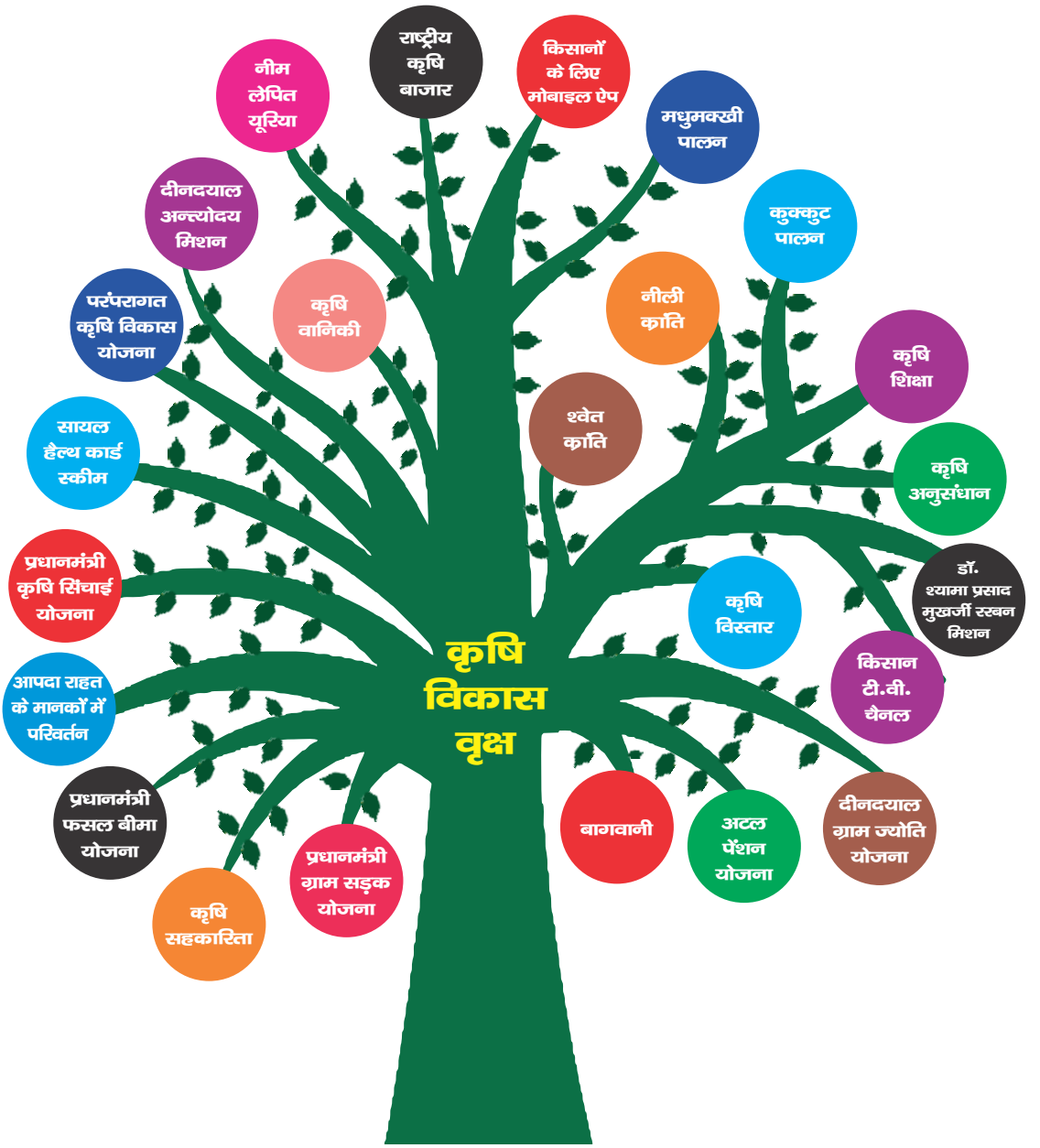

परम्परागत कृषि विकास योजना–एक जानकारी

[1]मधु पटियाल एवं [2]अंजना ठाकुर
[1]भाकृअनुप–भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान (क्षेत्रीय केंद्र, टुटीकंडी), शिमला
[2]कृषि विज्ञान केंद्र हमीरपुर, हिमाचल प्रदेश

आज़ाद भारत को कृषि उत्पादों में आत्मनिर्भर बनाने के लिए हरित क्रांति की शुरुआत हुई। इस दौरान रसायनिक खादें, उन्नत बीज, सुनिश्चित सिंचाई व्यवस्था, पौध संरक्षण रसायनों आदि का भरपूर इस्तेमाल किया गया जिस कारण कृषि उत्पादन मे भरपूर बढ़ोत्तरी दर्ज की गई। वर्तमान में हमारा देश कृषि में काफी हद तक आत्मनिर्भर होने के साथ निर्यात भी कर रहा है। परंतु लगातार होते दोहन और मिट्टी में कोई भी प्राकृतिक तत्व न डालने के कारण मिट्टी ने अपनी उर्वरा शक्ति धीरे–धीरे खो दी। इसका परिणाम नजर आ रहा है कि आज फसलों की पैदावार स्थिर हो चुकी है। अधिक रसायनों के उपयोग से वातावरण प्रदूषित हुआ है तथा मानव स्वास्थ्य पर भी विपरीत प्रभाव पड़ा है। हालत यह है कि आज जो कुछ भी पैदा हो रहा है वह रसायन युक्त है। इसका असर कृषकों की सेहत पर भी प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से हो रहा है इस बात को किसान व उपभोक्ता जान चुका है।

आज उपभोक्ता का ध्यान गुणवत्ता पर केन्द्रित होता जा रहा है। इस बात को ध्यान में रखते हुए किसान भाई उपज के साथ उत्पादों की गुणवत्ता या बाजार में जैविक उत्पादों की मांग के अनुसार कृषि करने के लिए उत्सुक हो रहा है।

परम्परागत खेती से अभिप्राय

परम्परागत खेती का साधारण तौर पर मतलब खेती करने का पुराना तरीका है जो हमारे पूर्वज करते थे, जिसमें किसी भी तरह की रसायनिक चीजों के इस्तेमाल के बिना खेती की जाती है। हमारे देश के जनजातीय, पहाड़ी, दूरस्थ क्षेत्रों व वर्षा सिंचित क्षेत्रों में इस प्रकार की खेती करने की बहुत गुंजाइश है क्योंकि ऐसे क्षेत्रों में रसायनिक चीजों का खेती में प्रयोग निम्न स्तर पर ही रहता है।

परम्परागत खेती के लाभ

- भूमि की उर्वरक क्षमता में वृद्धि।
- मिट्टी, खाद्य पदार्थ व ज़मीन में पानी के माध्यम से होने वाले पर्यावरण प्रदूषण का कम होना।
- फसलों में कीट व बिमारियाँ कम लगना।
- स्वस्थ व सुरक्षित जैविक खाद्य उत्पाद।
- शून्य या कम लागत और जैविक उत्पादों के अच्छे दाम के फलस्वरूप किसानों की अधिक आय।

परम्परागत कृषि विकास योजना क्या है ?

परम्परागत कृषि विकास योजना केंद्र सरकार द्वारा शुरू की गई एक योजना है जिसके माध्यम से किसान कम या बिना खर्च के अधिक उत्पादन कर अपनी आय बढ़ाने के साथ मिट्टी की उर्वरा शक्ति को बढ़ाने पर ध्यान दें व रसायन रहित स्वस्थ उत्पाद पैदा करें। इस योजना का उद्देश्य जैविक उत्पादों के प्रमाणीकरण और विपणन को प्रोत्साहित करना है। साथ ही समूहों के माध्यम से सांस्थानिक विकास के द्वारा किसानों को सशक्त करना भी है। इस योजना का लाभ कम और ज्यादा जोत वाले किसान उठा सकते हैं।

परम्परागत कृषि विकास योजना का क्रियान्वन

परम्परागत कृषि विकास योजना के अंतर्गत जैविक खेती को कलस्टर पद्धति और पीजीएस (पार्टिसीपेट्री गारंटी स्कीम) द्वारा प्रोत्साहित किया जाता है जिसमें किसान समूहों को प्रेरित, प्रशिक्षित व सहायता प्रदान की जाती है। योजना का लाभ उठाने के लिए परम्परागत कृषि विकास योजना के तहत प्रत्येक समूह में 50 किसान होने चाहिए और उनके पास जैविक खेती करने के लिए कम से कम 50 एकड़ का कुल क्षेत्र होना चाहिए। इस योजना में नामांकित किसान को सरकार तीन साल तक 20 हजार रुपये प्रति एकड़ प्रदान करेगी। इस राशि का उपयोग किसान जैविक बीज आदि प्राप्त करने, फसलों की कटाई और स्थानीय बाजारों में उपज ले जाने वाले परिवहन के लिए कर सकते हैं।

सरकार की इस योजना का फायदा लेने के लिए किसानों को जैविक खेती का प्रमाणपत्र लेना होगा। यह प्रमाण पत्र लेने की एक सुनिश्चित प्रक्रिया है। इसके लिए किसानों को आवेदन करना होता है व जरूरी फीस देनी होती है। इस प्रमाण पत्र को देने के लिए सरकार की ओर से 19 एजेंसियों को मान्यता प्रदान की गई है। किसानों को उन्हीं एजेंसियों से प्रमाणपत्र बनवाने होते हैं। खेती से जुड़े हर काम जैसे मिट्टी, खाद, बीज, बुआई, सिंचाई, जीवनाशकों, कटाई, पैकिंग, भण्डारण सहित सभी कामों के लिए जैविक सामग्री का ही इस्तेमाल करना पड़ता है। किसानों को रिकार्ड रखना होता है, जिसमें वे खेती की हर गतिविधि को दर्ज करते हैं। रिकॉर्ड के प्रमाणीकरण की जाँच सरकार की ओर से होती है। इन सबके बाद खेत और उपज को जैविक होने का प्रमाणपत्र मिलता है। उसके बाद उत्पाद को **'जैविक**

उत्पाद' के लेबल के साथ बेचा जा सकता है। प्रमाणिक जैविक उत्पाद को बाज़ार में अच्छी कीमत पर बेचा जा सकता है। प्रमाणीकरण पर व्यय के लिए किसानों को कोई भार या दायित्व नहीं होता है।

इस दिशा में भारत सरकार कृषि एवं सहकारिता विभाग द्वारा क्षेत्रीय परिषद के रूप में राष्ट्रीय जैविक खेती केंद्र गाजियाबाद से पंजीकरण करवाकर, पीजीएस (पार्टीसिपेट्री गारंटी स्कीम) लागू करने सम्बन्धी कार्यवाही के लिए जिला आतमा समितियों को अधिकृत किया गया है। परम्परागत कृषि विकास योजना में प्रत्येक कलस्टर को तीन वर्षों के लिए विभिन्न सुविधाएँ दी जाती है। इसमें उपलब्ध राशि को विभिन्न जैविक प्रशिक्षण, ऑनलाइन रजिस्ट्रेशन, मृदा परिक्षण, जानकारी उपलब्ध करना, परिचयात्मक दौरा, बायो फर्टिलाइज़र, जैविक कीटनाशक, वर्मीकम्पोस्ट, कृषि यंत्र आदि उपलब्ध करने के लिए इस्तेमाल किया जाता है। साथ ही जैविक खेती से पैदा होने वाले उत्पाद की पैकिंग व ढुलाई के लिए भी अनुदान दिया जाता है।

परम्परागत कृषि अपनाने की चुनौतियाँ

- परम्परागत कृषि अपनाने से उत्पादन कम होने की सम्भावना रहती है, खासकर शुरू के वर्षों में।
- भारत में जनसंख्या वृद्धि जारी है और ज़मीन घटती जा रही है, ऐसे में खाद्यान्न की जरूरत पूरी कर पाना चुनौती रहती है।
- जैविक उत्पाद अन्य उत्पादों की अपेक्षा महंगे होते हैं, गरीब वर्ग उन्हें खरीदने में संकोच करते हैं।
- शहरों में जैविक उत्पादों की मांग तो होती है, परन्तु दूर–दराज क्षेत्रों या गाँवों से शहर तक इन उत्पादों को पहुंचाने की व्यवस्था सुनिश्चित नहीं होती।

भारत में सिक्किम ऐसा प्रथम राज्य है, जिसने खुद को जनवरी 2016 में ही सौ फीसदी **'ऑर्गेनिक स्टेट'** घोषित कर दिया था। उसी राह पर चलकर अन्य राज्य भी खास कर पहाड़ी क्षेत्रों, जनजातिय, वर्षा–सिंचित और दूरस्थ क्षेत्रों में परम्परागत खेती की संभावनाओं को तलाश सकते हैं। वैसे भी ऐसे क्षेत्रों में ज़्यादातर किसान अपने लिए बिना रसायनों वाले उत्पाद ही तैयार करते हैं, तो क्यों न उन्हें प्रेरित कर इस क्षेत्रफल को धीरे–धीरे बढ़ाया जाये। परम्परागत खेती अपनाने से उत्पाद लागत में तत्काल कमी तो हो सकती है लेकिन लागत की कमी के कारण किसानों की आमदनी में बढ़ोत्तरी भी दर्ज की गई है। ऐसी खेती में चुनौतियाँ तो हैं पर किसान को समझना होगा कि इसे अंततः अपनाना ही पड़ेगा। उन्हें सही मार्गदर्शन और अन्य परम्परागत खेती करने वाले किसानों की सफल कहानियों द्वारा प्रोत्साहित करना पड़ेगा। भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद, नई दिल्ली हलधर पुरस्कार द्वारा जैविक खेती करने वाले किसानों को प्रोत्साहित किया जाता है। परम्परागत कृषि विकास योजना के माध्यम से सरकार भी किसानों को परम्परागत खेती की ओर लौटने की अपील कर रही है और उन्हें आर्थिक मदद भी दे रही है।

ड्रिप सिंचाई के बारे में अक्सर पूछे जाने वाले प्रश्न

राजपाल मीना, कर्णम वेंकटेश एवं सूरज गोस्वामी
भाकृअनुप–भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान, करनाल

1.सूक्ष्म सिंचाई प्रणाली क्यों अपनानी चाहिए ?

हम सब यह जानते हैं कि स्वच्छ जल के संसाधन दिन–प्रतिदिन कम होते जा रहे हैं। संसार में कोई भी देश, राज्य, जिला या स्थान ऐसा नहीं है जहाँ पानी की कमी ना हो। हमारे देश में भी पानी की बहुत कमी है, और जहाँ तक हरियाणा का प्रश्न है यहाँ का भू–जल स्तर तेजी से गिरता जा रहा है, हाल ही में जारी आंकड़ों के अनुसार हर साल 1 से 2 मीटर भू–जल स्तर गिरता जा रहा है, इससे हम अंदाजा लगा सकते है कि पानी की बचत कितनी महत्वपूर्ण है। आज के समय में हमारे देश में प्रति व्यक्ति जल की उपलब्धता 1400 घन मीटर के आस–पास है जो निश्चित तौर पर भविष्य में कम होने की सम्भावना है। इसलिए चाहे कृषि हो, घरेलू उपयोग, उद्योग हमें हर जगह पानी बचाने की हर सम्भव कोशिश करनी चाहिए।

2.सूक्ष्म सिंचाई प्रणाली के क्या–क्या फायदे हैं ?

यह सिंचाई प्रणाली पानी की बचत करती है। पानी की बचत फसल एवं मिट्टी के प्रकार पर निर्भर करती है, जहाँ तक गेहूँ एवं धान की सीधी बिजाई (डायरेक्ट सीडेड धान) की बात है, कम से कम 25 से 30 प्रतिशत पानी की बचत होती है, यह इस प्रणाली का सबसे बड़ा लाभ है। ड्रिप सिस्टम में पानी सीधा पौधों के जड़ क्षेत्र के पास दिया जाता है, जिससे पानी का अपव्यय नहीं होता है, और पानी बचता है। पानी इधर–उधर नहीं बहता और वाष्पीकरण (इवेपोरेशन) के द्वारा भी पानी का अधिक नुकसान नहीं होता। दूसरा बड़ा लाभ यह है कि खेत में सिंचाई करने के लिए क्यारी, बंड, चैनल बनाने की आवश्यकता नहीं होती है जिसके कारण मेहनत और पैसा बचता है साथ ही साथ फसल के अंतर्गत आने वाला क्षेत्र (एरिया) भी बढ़ता है, जिससे अधिक पैदावार भी होती है (चित्र 1)।

इस प्रणाली से सिंचाई करने पर खेत में खरपतवारों का प्रकोप कम होता है क्योंकि जहाँ फसल या पौधे नहीं होते वहाँ की मृदा सूखी होती है जिससे या तो खरपतवार उगते नहीं है या जो उगते है उनकी वृद्धि पानी के अभाव में कम हो पाती है, जिसके परिणामस्वरुप खरपतवार नियंत्रण पर कम लेबर और कम पैसा खर्च होता है।

3. ड्रिप लाइन्स की दूरी क्या रखनी चाहिए ?

ड्रिप सिंचाई प्रणाली में लेटरल से लेटरल की दूरी खेत में उगाई जाने वाली फसल पर निर्भर करेगी, जहाँ तक गेहूँ, जौ एवं सीधी बीजाई धान का प्रश्न है यह 60 सेमी पर उपयुक्त रहती है। दूसरी फसलें जैसे कि गन्ना, कपास, सब्जियों इत्यादि में यह दूरी अधिक रहेगी और जो किसान भाई इसे (सबसरफेस) यानि कि मृदा में नीचे दबाना चाहते हैं वे 20 से.मी. नीचे दबा सकते हैं। ऐसा करने से इसे बार–बार समेटना और बिछाना नहीं पड़ेगा साथ ही कृषि कार्य भी आसान हो जाते हैं। यह कार्य ट्रैक्टर माउंटेड मशीन द्वारा आसानी से हो जाता है ।

4. ड्रिप सिंचाई का रख–रखाव किस तरह से करना चाहिए ?

सीजन शुरु होने से पहले एक बार एसिड से पूरे सिस्टम को साफ (फ्लश) कर लेते हैं, जिससे पाइप, लेटरल, फिल्टर, ड्रिपर इत्यादि में कोई रुकावट या मिट्टी या साल्ट इत्यादि जमा हो तो साफ हो जाते हैं ।

फिल्टर को चेक करते रहना चाहिए, पाइप लाइन को देख लेना चाहिए यदि कहीं से रिसाव (लीकेज) हो तो उसकी भी मरम्मत कर लेनी चाहिए ।

लेटरल्स में कृषि कार्यों के चलते कई बार कट लग जाते हैं उसे जोइनर (चित्र 2) लगाकर आसानी से रिपेयर कर सकते हैं।

चित्र 1 ड्रिप द्वारा सीधा पौधों की जड़ों में सिंचाई (बून्द–बून्द सिचांई)

(अ)

चित्र 1: (अ) ड्रिप द्वारा सिंचित भूमि

(ब)

(ब) पारम्परिक तरीके सिंचित भूमि

5. उर्वरकों का उपयोग कैसे करे ?

ड्रिप सिस्टम में एक वेंचुरी लगी होती है उसके माध्यम से घुलनशील उर्वरकों को आसानी से पानी के साथ मिलाकर दिया जा सकता है। जहाँ तक गेहूँ, जौ एवं धान का प्रश्न है फास्फोरस एवं पोटेशियम उर्वरकों को बुवाई के समय (बेसल डोज) में देना चाहिए और नाइट्रोजन उर्वरक को दो या तीन भागों में बांटकर वेंचुरी के द्वारा सिंचाई जल के साथ बुवाई के 25, 45 एवं 60–65 दिन बाद फसल में दिया जा सकता है।

6. क्या ड्रिप सिंचाई प्रणाली लगाना कठिन कार्य है ?

ड्रिप सिस्टम लगाना (इनस्टॉल करना) बिल्कुल भी मुश्किल नहीं है, यह एक आसन कार्य है। जिस डीलर या एजेंसी से किसान भाई यह कार्य करवाना चाहता है, उनका इंजिनियर या सुपरवाइजर खेत का सर्वे कर आपके खेत अनुसार विभिन्न मापदंड़ों का प्रयोग कर इसको स्थापित करते हैं। इसी तरह सबसरफेस के लिए भी ट्रैक्टर माउंटेड मशीन उपलब्ध है।

7. ड्रिप सिंचाई प्रणाली की लागत क्या है ?

जहाँ तक प्रति एकड़ खर्चे का प्रश्न है यह पानी के स्त्रोत, खेत से जल स्त्रोत दूरी, फसल का प्रकार इत्यादि पर निर्भर करता है। लेकिन मोटे तौर पर ड्रिप सिंचाई प्रणाली की लागत 55–60 हजार प्रति एकड़ के लगभग आती है। जिसपर सरकार की तरफ से 50–60 प्रतिशत या इससे अधिक अनुदान मिलता है। इसके बारे में सम्पूर्ण जानकारी कृषि विभाग के अधिकारी उपलब्ध करवाते है एवं मदद करते हैं। इसलिए अधिक से अधिक कृषकों को पानी की बचत करने वाली इस ड्रिप प्रणाली से सिंचाई करनी चाहिए ताकि हमारा भविष्य सुरक्षित एवं खुशहाल रहे और हम आने वाली पीढ़ियों के लिए भी जल संरक्षित कर पाए।

(अ) (ब)

चित्र 2: ड्रिप में उपयोग होने वाले विभिन्न जोड़ (बैंड) (अ) एल जोड़ (ब) टी जोड़

चित्र 3: ड्रिप सिस्टम के विभिन्न भाग

अच्छी गुणवता के गेहूँ की खेती द्वारा किसानों की आय में वृद्धि

[1]वनिता पाण्डेय, [1]ओम प्रकाश गुप्ता, [2]स्नेह नारवाल, [1]अंकुश चौधरी एवं [1]सेवा राम
[1]भाकृअनुप–भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान, करनाल
[2]भाकृअनुप–भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली

गेहूँ भारत का मुख्य खाद्यान्न है तथा अधिकांश भारतीय आबादी की ऊर्जा और प्रोटीन की आवश्यकता पूरी करने के लिए गेहूँ मुख्य स्रोत है। औद्योगिक खाद्य उत्पादन क्षेत्र भी गेहूँ पर कच्चे माल व पोषक तत्वों के लिए आश्रित है। गेहूँ की उपयोगिता तथा व्यवसायिक मूल्य, गेहूँ तथा उससे निर्मित खाद्य उत्पादों की गुणवत्ता के द्वारा तय की जाती है। गेहूँ की गुणवत्ता उसकी प्रजाति की आनुवंशिकी व पर्यावरण के प्रभाव की अभिव्यक्ति होती है। इसलिए गेहूँ की गुणवत्ता का विश्लेषण न केवल खाद्य उत्पाद की विशिष्ट किस्मों के चयन के लिए आवश्यक है, बल्कि घरेलू तथा अंतर्राष्ट्रीय बाजारों की व्यापार आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए भी आवश्यक हैं। औद्योगिक क्रान्ति की वजह से विकासशील देशों की शहरी आबादी में वृद्धि हुई है, जिस कारण प्रसंस्करित खाद्य उत्पाद जैसे कि खाने के लिए तैयार, जमे हुये, माइक्रोवेव किये जाने वाले तथा जल्द बनने वाले उत्पादों की मांग बढ़ने लगी है। गेहूँ के आटे में लचीलापन व ताकत होती है जिस कारण वह इन उत्पादों के लिए अत्यधिक अनुकूल है व इसलिए ही गेहूँ आधारित उत्पादों की मांग भी अधिक है। गेहूँ आधारित खाद्य उत्पाद विभिन्न प्रकार के होते हैं तथा हर एक उत्पाद के लिए उपयुक्त गेहूँ की गुणवत्ता के मापदण्ड भी भिन्न है। अतः हर एक उत्पाद के लिए विशिष्ट किस्म का प्रयोग करना ही उचित होता है। इन्हीं महत्वपूर्ण वैश्विक, आर्थिक और सामाजिक रुझानों की वजह से अनाज के व्यापार में गेहूँ की गुणवत्ता का महत्व और अत्यधिक हो जाता है।

गेहूँ की विभिन्न वर्गों की खाद्य उत्पादों के लिए उपयोगिता

भारत में मुख्यतः गेहूँ की तीन प्रजातियों–*ट्रिटिकम एस्टीवम* (चपाती गेहूँ), *ट्रीटिकम ड्यूरम* (कठिया गेहूँ) तथा *ट्रिटिकम डाईकोकम* (खपली गेहूँ) की खेती की जाती है। इन तीनों प्रजातियों के अनाज की संरचना भिन्न है जिस कारण इनका उपयोग अलग–अलग प्रकार के खाद्य उत्पादों को तैयार करने में किया जाता है (तालिका 1)। चपाती, ब्रेड, बिस्कुट, पास्ता जैसे विभिन्न उत्पाद बनाने के लिए गेहूँ की विशिष्ट प्रजाति का ही उपयोग किया जा सकता है (तालिका 2)। गेहूँ की यह प्रजातियाँ न केवल आनुवंशिक संरचना में भिन्न है बल्कि अनाज संरचना में विभिन्नता के कारण खाद्य उत्पाद के लिए उपयुक्ता में भी भिन्न है। औद्योगिक खाद्य प्रसंस्करण के लिए विशिष्ट गुणवत्तायुक्त गेहूँ आवश्यक होता है जिसकी आपूर्ति पारंपरिक तकनीक से उगाये गये गेहूँ से नहीं हो पाती है। इसलिये अब कई विकासशील देशों में गेहूँ प्रजनन कार्यक्रमों की मुख्य प्राथमिकता गेहूँ की गुणवत्ता में सुधार है ताकि औद्योगिक आवश्यकताओं को पूरा किया जा सके। भारत में गेहूँ के अतिरिक्त उत्पादन को ही निर्यात किया जाता है। भारतीय गेहूँ को अंतर्राष्ट्रीय बाजार में प्रतिस्पर्धा करने के लिए गुणवत्ता मापदंडों को सख्ती से पालन करने की आवश्यकता है।

गुणवत्ता गेहूँ के जरिये किसानों की आय में वृद्धि

उत्पाद विशिष्ट किस्मों की अनुबंध खेती को प्रोत्साहित करना

भारत में ज्यादातर निर्यात तथा सुपर मार्केट आपूर्ति अनुबंधित/संगठित कृषि से पूरी की जाती है। जिसमें व्यापार संघ विशिष्ट उत्पाद के लिए उपयुक्त गुणवत्ता वाले गेहूँ की किस्मों के बीज, रसायन, उवर्रक, निवेश प्रदान करते है तथा अन्य जानकारी देने के साथ फसल की खेती के दौरान निगरानी भी करते हैं। फसल पकने के उपरांत यह व्यापार संघ उत्पादित गेहूँ को किसानों से सही दाम में खरीद भी लेते हैं। इन संगठनों के हस्तक्षेप से किसान नवीन तकनीकों और ज्ञान को लागू करके एकीकृत आपूर्ति श्रृंखला में सम्मिलित हो सकते हैं जिससे गेहूँ के उत्पाद और गुणवत्ता में वृद्धि तो होती ही है तथा किसान भी साथ में लाभान्वित होते हैं। इस प्रकार के निगमों और किसानों के बीच सीधा सम्बंध प्रोत्साहित करने से विशिष्ट गुणवता गेहूँ की आपूर्ति पूरी होती है साथ ही किसानों को विभिन्न प्रजातियों के उत्पादन के लिये उच्च मूल्य आश्वासन भी मिलता है। अखिल भारतीय समन्वित गेहूँ एवं जौ सुधार परियोजना के अंतर्गत वैज्ञानिकों ने गेहूँ की खाद्य उत्पाद विशिष्ट किस्मों को कई वर्षों की अनुसंधान के द्वारा विकसित किया है, जिनकी खेती करके किसान लाभान्वित हो सकते हैं (तालिका 3)।

विशिष्ट गुणवत्ता गेहूँ की खेती के लिये उर्वरकों का उपयोग

गेहूँ की फसल पर नाइट्रोजन उर्वरक के उपयोग से गुणवता में सुधार देखा गया है जिसमें मुख्यत प्रोटीन की मात्रा में

वृद्धि पायी गई है। पिछले अध्ययनों से ज्ञात हुआ है कि अगर नत्रजन उर्वरक का पत्ते पर निषेचन फूल बनने से पहले या फूल बनने के तुरन्त बाद किया जाये तो प्रोटीन की मात्रा मे सर्वाधिक वृद्धि होती है। किसान पौधों की विशिष्ट अवस्था पर नत्रजन उर्वरक का उपयोग करके गेहूँ की प्रोटीन तथा गुणवता को बढ़ा सकते हैं। नत्रजन के उपयोग से प्रोटीन के साथ–साथ सूक्ष्म पोषक तत्व जैसे लोहा, जिंक, मैग्नीज, तांबा की भी मात्रा मे वृद्धि होती है अतः एनपीके उर्वरक तथा वर्मीकम्पोस्ट के उपयोग से गेहूँ मे प्रोटीन तथा सूक्ष्म पोषक तत्वों को बढ़ाकर गुणवत्ता मे वृद्धि ला सकते हैं, जिससे बाजार में गेहूँ का अच्छा मूल्य प्राप्त हो सकता है।

पोषक तत्वों में सम्पन्न/बायोफोर्टिफाइड गेहूँ की खेती

भारतीय ब्रेड एवं कठिया गेहूँ मे लौह एवं जस्ते की मात्रा क्रमशः 25 से 55 (पीपीएम) तथा 20 से 45 (पीपीएम) पाई जाती है। गेहूँ मे इन पोषक तत्वों की जैव–उपलब्धता बढ़ाने से इनसे निर्मित अंत उत्पादों के पोषक महत्त्व में भी इजाफा होगा। हाल मे ही संस्थान द्वारा गेहूँ की जस्ता समृद्ध किस्म डब्ल्यूबी 2 तथा पंजाब कृषि विश्वविद्यालय, लुधियाना द्वारा एचपीडीडब्ल्यू 1 को विकसित किया गया है। किसान ऐसी जैव संपूरित प्रजातियों की खेती करके बाजार मे उसका अच्छा मूल्य प्राप्त कर सकते हैं।

तालिका 1. विभिन्न प्रकार के गेहूँ से बनने वाले खाद्य पदार्थ

गेहूँ के प्रकार	खाद्य पदार्थ
चपाती/सामान्य गेहूँ	चपाती/रोटी/फुलका, तन्दूरी रोटी, रूमाली रोटी, नान, कुलचा, भटूरा, पिज्जा, पूरी, कचौरी, समोसा, पाव, रस्क, सेवईयाँ, मठ्ठी, नमक पारा, पापड़, पराठा, पायसम, बालूसाई, जलेबी, घेवर, सत्तू, नूडल्स, लड्डू, ब्रेड, बिस्कुट, केक, बन, पेस्ट्री इत्यादि।
कठिया गेहूँ	चपाती, पराठा, डेबरा, भाखरी, रवा, इडली, उपमा, पट्टू, खिचड़ी, दलिया, पोंगल, रस्क, नूडल्स और पास्ता पदार्थ जैसे मैक्रोनी, स्पाघेटी और वर्मीसेली इत्यादि।
खपली गेहूँ	कुलाडी के लड्डू, गोदी हग्गी, स्वीट पैन केक और पास्ता इत्यादि।

तालिका 2. गेहूँ के विभिन्न उत्पादों के लिए दानों की गुणवत्ता के मापदंड

उत्पाद	दाने की संरचना	प्रोटीन की मात्रा	ग्लूटेन स्ट्रेन्थ
चपाती/सामान्य गेहूँ			
चपाती	सख्त	10–13 प्रतिशत	मध्यम एवं फैलने वाली
बिस्कुट, केक	मुलायम	8–10 प्रतिशत	कमजोर एवं फैलने वाली
ब्रेड	सख्त	>13 प्रतिशत	मजबूत एवं फैलने वाली
सफेद नूडल	मुलायम	10–12 प्रतिशत	मध्यम
पीली–नूडल	सख्त	10–13 प्रतिशत	मध्यम
कठिया गेहूँ			
पास्ता	अधिक सख्त	>13 प्रतिशत	मजबूत

तालिका 3. गेहूँ से बनने वाले विभिन्न खाद्य पदार्थों के लिए उपयुक्त किस्में

उत्पाद	किस्में
चपाती	**उत्तर पश्चिमी मैदानी क्षेत्रः** सी 306, राज 3765, एचडी 2864, एचडी 2285, पीबीडब्ल्यू 226, पीबीडब्ल्यू 175, एचडी 3237, डब्ल्यूएच 1124, पीबीडब्ल्यू 57, डीबीडब्ल्यू 71, एचडी 3347, एचडी 3086, एचडी 2967 **उत्तर पूर्वी मैदानी क्षेत्रः** सी 306, के 0307, के 8027, के 9107, एमएसीएस 6145, यूपी 262, एनडब्ल्यू 1014, एचयूडब्ल्यू 234, एचडी 2888, एचयूडब्ल्यू 533, डीबीडब्ल्यू 39, के 1317, एचआई 1563, पीबीडब्ल्यू 57, डीबीडब्ल्यू 71, एचआई 1612 **मध्य क्षेत्रः** लोक 1, सी 306, सुजाता, एचआई 1500, एचआई 1531, एचआई 1563, एचडब्ल्यू 2004, डीएल 788–2, जीडब्ल्यू 173, जीडब्ल्यू 273, जीडब्ल्यू 322, राज 4238, राज 3077, एमपी 3336, एचडी 2864, एचडी 2932, डीबीडब्ल्यू 110, एमपी 3288, एमपी 3336 **प्रायद्वीपीय क्षेत्रः** लोक 1, एचडी 2987, एचडी 2833, जीडब्ल्यू 496, एमपी 3336, 34, एनआईएडब्ल्यू 1415, एमएसीएस 6478, एचडी 2932, एमएसीएस 6222, डीबीडब्ल्यू 168, राज 4083, एचआई 1605, डीबीडब्ल्यू 93, एनआई 5439
ब्रेड	**उत्तरी पर्वतीय क्षेत्रः** डब्ल्यूएच 1021, डब्ल्यूएच 1080, एनडब्ल्यू 2036, **उत्तर पश्चिमी मैदानी क्षेत्रः** एचडी 2285, पीबीडब्ल्यू 396, एचडी 2967, एचडी 3226, पीबीडब्ल्यू 752, एचडी 3059, डब्ल्यूएच 1080, डब्ल्यूएच 1105, एचडी 3086, डीबीडब्ल्यू 621–50 **उत्तर पूर्वी मैदानी क्षेत्रः** एचडी 277, एचडी 2733, एनडब्ल्यू 2036, एचडी 2967 **मध्य क्षेत्रः** लोक 1, एचडी 2864, एचडी 2932, जीडब्ल्यू 120, जीडब्ल्यू 173, जीडब्ल्यू 190, जीडब्ल्यू 496 **प्रायद्वीपीय क्षेत्रः** एचआई 977, राज 4083, एचडी 2189, एचडी 2501, एचडी 2781, डीडब्ल्यूआर 162, डीडब्ल्यूआर 195, एमएसीएस 6222, एमएसीएस 6273, एमएसीएस 2496, एमएसीएस 6478, यूएएस 304, एकेएडब्ल्यू 4627, एनआईएडब्ल्यू 34, एनआईएडब्ल्यू 1415, एनआईएडब्ल्यू 917, एनआई 5439, एचडी 2932, डीबीडब्ल्यू 93, एनआई 5439, एचआई 1605, यूएएस 375
बिस्कुट	**उत्तरी पर्वतीय क्षेत्रः** एचएस 490 **प्रायद्वीपीय क्षेत्रः** डीबीडब्ल्यू 168
पास्ता उत्पाद	**उत्तर पश्चिमी मैदानी क्षेत्रः** पीडीडब्ल्यू 233, डब्ल्यूएच 896, डब्ल्यूएचडी 943, पीडीडब्ल्यू 291, पीडीडब्ल्यू 314 **मध्य क्षेत्रः** एचआई 8627, एचआई 8663, एचआई 8498, एचआई 8713, एचडी 4672, एमपीओ 1215, एचआई 8737 **प्रायद्वीपीय क्षेत्रः** एमएसीएस 2846, डीडीके 1009, एनपी 200, एचआई 8663, यूएएस 446, एमएसीएस 3949, यूएएस 428, एचआई 8777

जीरो बजट खेती

रिंकी, ममृथा एचएम, अंकिता पाण्डेय, राकेश कुमार, जीनत वधवा एवं योगेश कुमार
भाकृअनुप– भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान, करनाल

जीरो बजट एक प्राकृतिक खेती है जो देसी गाय के गोबर, गोमूत्र व अन्य प्राकृतिक संसाधनों पर आधारित है इसमें रासायनिक खाद, कीटनाशक और संकर बीज जैसे किसी भी आधुनिक उपाय का इस्तेमाल किए बिना फसलों को उगाया जाता है जीरो बजट खेती के अंतर्गत किसान केवल उनके द्वारा बनाई गई खाद तथा अन्य चीजें ही खेती करने के लिए उपयोग में लाते हैं। इस खेती में किसी भी प्रकार के रासायनिक उर्वरक या कीटनाशक का इस्तेमाल करने की जरूरत नहीं पड़ती। हमारे देश में बहुत से किसानों ने जीरो बजट खेती को अपनाया है। कृषि आधारित अर्थव्यवस्था वाले हमारे देश में रासायनिक खेती के बाद अब जीरो बजट खेती ज्यादा मुनाफा देने वाली एक सस्ती, सरल एवं ग्लोबल वार्मिंग को मात देने वाली आधुनिक कृषि पद्धति है। इस खेती की शुरुआत कर्नाटक के किसानों ने की और धीरे–धीरे यह खेती भारत के अन्य राज्यों में भी लोकप्रिय होने लगी, सुभाष पालेकर इस पद्धति के जनक हैं। उन्होंने स्टेट फार्मर एसोसिएशन तथा स्टेट फार्मर्स ऑफ ला वाया कम्पेसिना के साथ मिलकर इसकी शुरुआत की, सुभाष पालेकर ने पारंपरिक कृषि पद्धतियों पर काफी रिसर्च की है तथा इसी परिणामस्वरूप उन्होंने जीरो बजट खेती का प्रारूप तैयार किया।

क्यों रखा गया नाम

इस पद्धति के तहत खेती करने के लिए किसानों को बाजार से किसी भी प्रकार के रसायनों को खरीदने की जरूरत नहीं पड़ती, जिसके कारण इस खेती को करने में जीरो रुपए का खर्च आता है। इसीलिए इसे जीरो बजट खेती का नाम दिया गया। हालांकि खाद बनाने में थोड़ा बहुत खर्चा आता है किन्तु वह बहुत मामूली ही होता है।

जीरो बजट खेती के फायदे

स्वास्थ्यवर्धक उत्पाद– जीरो बजट खेती के तहत उगाई गई फसलें सेहत के लिए काफी फायदेमंद होती है क्योंकि उन्हें बिना किसी रासायनिक पदार्थ के प्रयोग के उगाया जाता है।

कम लागत– जीरो बजट खेती करने वाले किसानों को यूरिया, कीटनाशक तथा अन्य किसी भी रसायनिक वस्तु के लिए खर्च नहीं करना पड़ता तथा वह स्वयं बनाई गई खाद तथा अन्य प्राकृतिक वस्तुओं का इस्तेमाल करते हैं जिससे लागत कम आती है।

मृदा के लिए फायदेमंद– जीरो बजट खेती भूमि के उपजाऊपन को बढ़ाकर मृदा को भी स्वस्थ रखने में सहायक हैं। किसी भी प्रकार के रसायन का उपयोग न होने के कारण यह भूमि को कोई नुकसान नहीं पहुँचाती है।

ज्यादा लाभ– जीरो बजट प्राकृतिक खेती के अंतर्गत केवल खुद से बनाई गई खाद का इस्तेमाल किया जाता है और ऐसा होने से किसानों को किसी भी फसल को उगाने में कम खर्चा आता है और कम लागत होने के कारण उस फसल पर किसानों को अधिक लाभ होता है।

अच्छी पैदावार– जीरो बजट प्राकृतिक खेती के तहत जो फसल उगाई जाती है, उपजाऊपन बढ़ने के कारण उसकी पैदावार काफी अच्छी होती है।

जीरो बजट खेती के चार स्तंभ

जीरो बजट प्राकृतिक खेती करने के लिए नीचे बताई गई तकनीकों का प्रयोग किया जाता है।

- जीवामृत छिडकाव
- बीजामृत (बीज उपचार)
- आच्छादन / मल्चिंग
- वहपाशा (मृदा नमी)

जीवामृत छिडकाव

जीवामृत की मदद से जमीन को पोषक तत्व मिलते हैं और यह एक उत्प्रेरक एजेंट के रूप में कार्य करता है जिसकी वजह से मिट्टी में सूक्ष्म जीवों की गतिविधि बढ़ जाती है और फसलों की पैदावार अच्छी होती है। इसके साथ जीवामृत की मदद से पेड़ों और पौधों को कवक व जीवाणु द्वारा रोग होने से भी बचाया जा सकता है।

जीवामृत बनाने की विधि

1 बैरल में 200 लीटर पानी डालें और उसमें 10 किलो ग्राम ताजा गाय का गोबर, 5 से 10 लीटर दूध, गाय का मूत्र, दो दालों का आटा, दो किलो ब्राउन शुगर और मिट्टी को मिला दें। यह सब चीजें मिलाने के बाद आप इस मिश्रण को 48 घंटों के लिए छाया में रख दें। 48 घंटों तक छाया में रखने के बाद आपका यह मिश्रण इस्तेमाल करने के लिए तैयार हो जाएगा।

बीजामृत (बीज उपचार)

इस उपचार का इस्तेमाल नए पौधों के बीज रोपण के दौरान किया जाता है। बीजामृत की मदद से नए पौधों की जड़ों को कवक, मिट्टी से पैदा होने वाले बीमारी और बीजों की बीमारी

से बचाया जाता है। बीजामृत को बनाने के लिए गाय का गोबर (एक शक्तिशाली प्राकृतिक कवकनाशी), गाय मूत्र (एंटी–बैक्टीरिया तरल), नींबू और मिट्टी का इस्तेमाल किया जाता है।

किसी भी फसल के बीजों को बोने के पहले उन बीजों में बीजामृत अच्छे से लगा दें और यह लगाने के बाद उन बीजों को कुछ देर सूखने के लिए छोड़ दें। इन बीजों पर लगा बीजामृत का मिश्रण सूख जाने के बाद आप इनको मिट्टी में मिला सकते हैं।

आच्छादन / मल्चिंग

इसमें जुताई के स्थान पर फसल के अवशेषों को भूमि पर आच्छादित कर दिया जाता है। मिट्टी की नमी का संरक्षण करने के लिए और उसकी प्रजनन क्षमता को बनाए रखने के लिए मल्चिंग का सहारा लिया जाता है। इस प्रक्रिया के अंदर मिट्टी की सतह पर कई तरह की सामग्री लगाई जाती हैं। ताकि खेती के दौरान मिट्टी की गुणवत्ता को नुकसान ना पहुँचे। यह कई प्रकार की होती है।

स्ट्रा मल्च (पुआल पलवार)

इसके दौरान मिट्टी की ऊपरी सतह को कोई नुकसान ना पहुंचे इसीलिए बिछावन का प्रयोग किया जाता है। मिट्टी के आस–पास पराली को इकट्ठा करके रखा जाता है ताकि मिट्टी की जल प्रतिधारण क्षमता को और अच्छा बनाया जा सके।

लाइव मल्चिंग

लाइव मल्चिंग प्रक्रिया के अंदर एक खेत में एक साथ कई तरह के पौधे लगाए जाते हैं। यह सभी पौधे एक दूसरे पौधों की बढ़ने में मदद करते हैं। लाइव मल्चिंग प्रक्रिया में ऐसे दो पौधे एक साथ लगाये जाते हैं जिनमें से कुछ पौधे ऐसे होते हैं जोकि कम धूप लेने वाले पौधों को अपनी छाया प्रदान करते है। ऐसा होने से पौधों का विकास अच्छे से हो जाता है। लाइव मल्चिंग के द्वारा मृदा का तापमान भी नियंत्रित रहता है तथा खरपतवार को कम करने में भी सहायता मिलती है।

वहपाशा (मृदा नमी)

इसमें सिंचाई के स्थान पर मृदा में उपस्थित नमी को महत्व दिया जाता है। सुभाष पालेकर द्वारा लिखी गई किताबों में कहा गया है कि पौधों को बढ़ने के लिए अधिक पानी की जरूरत नहीं होती है और पौधे वहपाशा यानी भाप / नमी की मदद से भी बढ़ सकते हैं। वहपाशा में हवा और पानी दोनों के अणु उपस्थित होते हैं और इन दोनों की वजह से पौधे का उपयुक्त विकास हो जाता है।

माननीय प्रधानमंत्री श्री नरेंद्र मोदी ने संयुक्त राष्ट्र मरुस्थलीकरण प्रतिरोधी कन्वेंशन के 14वें सम्मेलन में भारत में जीरो बजट खेती को अपनाने की बात कही है, **"वापस मूल की ओर"** के सिद्धांत पर आधारित इस प्राचीन कृषि पद्धति की घोषणा इस साल आम बजट में भी की गई। इसके अंतर्गत सरकार किसानों को जीरो बजट फार्मिंग की तरफ ले जाने के लिए कई तरह की सहायता देगी। इस तरह की खेती को पूरी तरह से प्राकृतिक संसाधनों के साथ किया जाता है। इससे किसानों को किसी भी फसल को उगाने के लिए किसी तरह का कर्ज नहीं लेना पड़ेगा। जिससे किसान न केवल कर्ज मुक्त होगा बल्कि वो आत्मनिर्भर भी बनेगा।

किंतु वैज्ञानिक वर्ग इस पद्धति को लेकर न तो उत्साहित हैं न ही इसको अपनाने के पक्ष में हैं क्योंकि इस विधि के लिए न तो कोई प्रमाणिक आंकड़े इकट्ठे किए गए हैं और ना ही इसको वैज्ञानिकों द्वारा करके देखा गया है। यह योजना पूरी तरह प्राकृतिक चीजों पर आधारित है। पौधों को प्रकाश संश्लेषण के लिए नाइट्रोजन, कार्बन डाइऑक्साइड, पानी तथा सूर्य के प्रकाश की जरूरत होती है। यह सब प्रकृति बिना किसी खर्च के प्रदान करती है। मृदा में उपस्थित जीवाणु इसके पोषक तत्व को पौधों की जड़ों तक पहुँचाने में सहायक बन जाते हैं जब उनको गाय के मूत्र, गोबर, गुड़ तथा दाल आदि के घोल का छिड़काव मिलता है। माना कि यह सब वस्तुएं प्राकृतिक है, लेकिन इसका वैज्ञानिक पक्ष यह कहता है कि प्रकृति में उपलब्ध नाइट्रोजन को पौधा तब तक ग्रहण नहीं कर सकता जब तक उसे यूरिया, अमोनिया न दी जाए। दूसरा तर्क जो इस खेती को बड़े पैमाने पर आने से रोकने वाला है वह है इसमें उपयोग होने वाला गाय का गोबर तथा मूत्र। माना गया है कि छिड़काव के लिए उपयोग किया जाने वाला गोबर तथा मूत्र केवल काली कपिला गाय का ही होना चाहिए। यह सब सीमाएं इस पद्धति को भारत की कृषि व्यवस्था में सम्मिलित होने में बड़ा व्यवधान है। अतः सरकार को भी सभी पहलुओं पर गौर करके व्यापक चर्चा के बाद ही "जीरो बजट" खेती को भारतीय किसानों को सौंपना चाहिए।

देश में पशुपालन, दुग्ध उत्पादन व दुग्ध प्रसंस्करण तकनीक

चित्रनायक, प्रशांत मिंज, सुनील कुमार, अमिता वैराट, खुशबू कुमारी एवं जितेन्द्र डबास
भाकृअनुप–राष्ट्रीय डेरी अनुसंधान संस्थान, करनाल

भारत दुनिया में दुग्ध उत्पादन में प्रथम स्थान पर लगातार कई वर्षों से विराजमान है। देश में कुल दुग्ध उत्पादन वर्ष 2016–17 की अवधि के दौरान 165.4 मिलियन टन हुआ एवं ये उत्पादन लगभग 6.6 प्रतिशत तक बढ़कर वर्ष 2017–2018 की अवधि के दौरान 176.35 मिलियन टन तक पहुँच गया (पशुपालन, डेयरी और मत्स्य पालन विभाग, कृषि मंत्रालय, भारत सरकार की रिपोर्ट)। देश में दुग्ध का उत्पादन वर्ष 1991–1992 के दौरान सिर्फ 55.6 मिलियन टन था, जिसमें उत्तम तकनीकों का विकास, पशुओं की उचित देखभाल, सही रख–रखाव व डेरी कृषकों की मेहनत के कारण तीन दशकों से कम अवधि में ही तिगुनी से अधिक की वृद्धि देखने को मिली व यह वृद्धि लगातार होती गयी, जिससे भारत पूरे विश्व में दुग्ध उत्पादन में प्रथम स्थान पर पहुँच गया। इसी प्रकार देश में प्रति व्यक्ति दुग्ध की उपलब्धता जो वर्ष 1991–1992 की अवधि के दौरान 178 ग्राम/दिन थी वो लगभग दोगुनी बढ़कर वर्ष 2016–17 की अवधि के दौरान 355 ग्राम/दिन हो गयी। देश के बढ़ते दुग्ध उत्पादन व प्रति व्यक्ति दुग्ध की उपलब्धता में देश के सभी वर्गों, छोटे से छोटे किसान से लेकर वृहत वर्ग के कृषकों ने मिलकर योगदान दिया है। देश में अधिकतर किसान खेती के साथ–साथ पशुपालन भी करते हैं व गायों, भैसों, बकरियों, ऊँटों आदि को पालकर दुग्ध उत्पादन भी करते हैं। किसानों द्वारा टिकाऊ कृषि प्रणाली सुनिश्चित करने व इसे और भी अधिक समावेशी बनाने हेतु पशुधन क्षेत्र काफी महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। राष्ट्रीय प्रतिदर्ष सर्वेक्षण कार्यालय की रिपोर्ट से पता चला है कि देश में कम जमीन (0.01 हैक्टर से कम) वाले कृषि परिवारों की कुल लगभग 23 फीसदी से अधिक आय का मुख्य स्रोत पशुधन है। पशुधन अतिरिक्त आय के स्त्रोत्र होने के साथ–साथ कृषकों के लिए खेती के भी कई कार्यों में मददगार साबित होते हैं और यह भी पाया गया है कि मवेशियों वाले कृषकों के घर विपरीत मौसम की स्थिति के कारण आने वाले संकट का सामना करने में बेहतर होते हैं। देश की तेजी से बढ़ती आबादी, हर पल बदलती जीवन शैली, शहरीकरण का अनियमित विस्तार और त्वरित जलवायु परिवर्तन आदि गौवंशीय प्रजनन प्रणाली में नई चुनौतियाँ पैदा कर रहे हैं। आरम्भ में चुनौती देश में बड़े पशु समुदाय हेतु पर्याप्त दाने, खली व उचित चारे की व्यवस्था के लिए ही थी, लेकिन अब पशु के स्वास्थ्य को बढ़ावा देने के लिए उन्हें चारे के साथ–साथ आवश्यक पोषक तत्व भी प्रदान करना एक बड़ी जिम्मेदारी है। विशेष रूप से उनके प्रजनन के समय देश में कृषि व पशु वैज्ञानिकों के समक्ष भविष्य में पशुओं के आनुवंशिक विकास व सुधार हेतु पशु की आनुवंशिक रूपरेखा और उत्पादकता के आधार पर चारे के साथ–साथ इष्टतम पोषक तत्व प्रदान करने की बड़ी चुनौती है। देश की बड़ी आबादी हेतु हर पल उत्तम गुणवत्ता के दूध व दुग्ध उत्पादों की लगातार बढ़ती मांग की पूर्ति हेतु यह अति आवश्यक है कि हम अपने पशुधन का पूरा–पूरा ध्यान रखें। इसके अलावा बदलते जलवायु के कारण पशुधन की जैव विविधता भी मुश्किल में है, जो दुग्ध व अन्य उत्पादों की दीर्घकालिक उत्पादकता को बनाए रखने के लिए बहुत महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। वर्तमान समय में देश में बड़ी पशुओं की संख्या आनुवंशिक रूप से समान प्रणाली, चरम मौसम की स्थिति, उभरते रोगों और रोगजनकों के तहत बाह्य खतरे की चपेट में हैं। पशुधन क्षेत्र में, विदेशी जननद्रव्य आधारित संकरण पर निरंतर ध्यान देने के कारण, बेहतर अनुकूलनशीलता, रोग–प्रतिरोध और फ़ीड दक्षता अनुपात में निश्चित रूप से काफी सुधार व विकास हुआ, परन्तु इसके साथ–साथ देश में स्वदेशी नस्लों की संख्या में कमी आ रही है। स्वदेशी नस्लों में रोग प्रतिरोधक क्षमता संकर पशुओं की तुलना में अच्छी होती है एवं वे भारतीय मौसम में बिना किसी अतिरिक्त रख–रखाव के खर्च के बिना अच्छा उत्पादन भी करती हैं। अंधाधुंध तरीके से दूध की पैदावार बढ़ाने की कोशिशों में क्रॉसबर्न में अनियंत्रित रक्त के स्तर से स्थिति और खराब हो जाती है। इसलिए भारतीय देशी नस्लों की उत्पादकता को संरक्षित और बेहतर बनाना समय की जरूरत है। इस कार्य को पूरा करने के लिए भारत सरकार अधीनस्थ पशुपालन, डेयरी और मत्स्यपालन विभाग अब 100 प्रतिशत कृत्रिम गर्भाधान आच्छादन पर ध्यान केंद्रित कर रहा है, साथ ही उन्नत अत्याधुनिक प्रजनन तकनीक के विकास पर भी ध्यान दिया जा रहा है।

डेरी प्रसंस्करण : मूल्य संवर्धन

दूध एक मूल्यवान पौष्टिक भोजन है जिसकी भंडारण आयु अल्प होती है और इसे सावधानीपूर्वक संभालने की आवश्यकता होती है। दूध को उपयोग करने योग्य व उत्तम गुणवत्ता के साथ कई दिनों तक संरक्षित करने हेतु ठंडा करने जैसी तकनीकों तथा किण्वन तकनीक का उपयोग किया जा सकता है, क्योंकि कच्चे दूध की गुणवत्ता को

प्रभावित करने की सबसे अधिक संभावना है। पाश्चुरीकरण एक ऊष्म उपचार प्रक्रिया है जो दूध के उपयोग करने योग्य जीवन का विस्तार करती है और संभावित रोगजनक सूक्ष्मजीवों की संख्या को उन स्तरों तक कम कर देती है, जहाँ वे एक महत्वपूर्ण स्वास्थ्य खतरे का प्रतिनिधित्व नहीं करते हैं। मक्खन, पनीर, चीज़, घी जैसे लंबे शेल्फ लाइफ के साथ–साथ संवर्धित मूल्य, केंद्रित और आसानी से परिवहनीय डेयरी उत्पादों में बदलने के लिए दूध को आगे संसाधित किया जा सकता है। दूध प्रसंस्करण के निम्नलिखित फायदे हैं: इससे कृषकों को नियमित आय प्राप्त होती है, पोषण में सुधार होता है साथ ही साथ प्रसंस्करित दूध उत्पादों को बेचना ताजा दूध बेचने की तुलना में अधिक लाभदायक है। प्रसंस्करण पद्धति रोजगार उत्पन्न करता है एवं दुग्ध उत्पादों की गुणवत्ता और सुरक्षा में सुधार करता है।

पाश्चुरीकरण पद्धति द्वारा दुग्ध प्रसंस्करण

उष्मीय विधि द्वारा दूध के प्रसंस्करण में पाश्चुरीकरण पद्धति पहला कदम है। पाश्चुरीकरण का मतलब है कि दूध व दूध उत्पाद के प्रत्येक कण को एक विशिष्ट तापमान पर निर्दिष्ट अवधि, उदाहरणार्थ: अल्ट्रा हाई तापक्रम–विधि में 135–140 डिग्री सेल्सियस पर 1 से 3 सेकेण्ड तक, निम्न तापक्रम अधिक समय–पद्धति में 63 डिग्री सेल्सियस पर 30 मिनट तक दुग्ध अथवा दुग्ध उत्पादों को गर्म करना होता है। इससे दुग्ध में उपस्थित हानिकारक बैक्टीरिया और अन्य सूक्ष्म जीव नष्ट हो जाते हैं जो उपभोक्ताओं के स्वास्थ्य को प्रभावित कर सकते हैं। यह तरीका दूध को सुरक्षित बनाता है और इसकी गुणवत्ता को भी बेहतर बनाता है, ताकि दूध और दुग्ध उत्पादों को खराब हुए बिना लंबे समय तक संरक्षित व सुरक्षित रखा जा सके।

पाश्चुरीकरण की सरल विधि

किसान अपने दूध को सीधे उबालकर पेस्ट करते हैं। हालांकि प्रत्यक्ष उबलना अस्वाभाविक है, क्योंकि यह बाहरी कणों या जीवाणुओं से संदूषण का कारण बन सकता है। प्रत्यक्ष उबलना भी अकुशल है क्योकि इस विधि में अधिक ऊर्जा (अधिक ईंधन या जलाऊ लकड़ी) की खपत होती है। अप्रत्यक्ष रूप से दूध को गर्म करना एक प्राचीन व बेहतर तरीका है। इस पद्धति में दूध को एक बड़े धातु के बर्तन कोन–टेनिंग पानी के अंदर रख सकते हैं ताकि पानी दूध के चारों ओर एक जैकेट बना सके। खुली आग या गैस स्टोव या बिजली के गर्म प्लेट का उपयोग करके बड़े बाहरी बर्तन को गर्म करें।

पाश्चुरीकरण के अन्य तरीके

बैच पाश्चुराइजेशन: कम से कम 30 मिनट के लिए 63 डिग्री सेल्सियस। यह छोटे पैमाने पर उत्पादकों और उत्पादक सहकारी समितियों के लिए उपयुक्त है।

उच्च तापमान कम समय पाश्चुराइजेशन

कम से कम 15 मिनट के लिए 72 डिग्री सेल्सियस यह दूध की बड़ी मात्रा के लिए उपयुक्त है।

उदाहरण : एक बार में 250 लीटर से अधिक।

अल्ट्रा उच्च तापमान 135 डिग्री सेल्सियस

इसका उपयोग बड़े कारखानों द्वारा किया जाता है। इसके लिए विशेष मशीनरी की आवश्यकता होती है। बिना प्रशीतन के भी यूएचटी दूध को 6 महीने तक संग्रहित किया जा सकता है।

मक्खन बनाने की पद्धति

मक्खन का उत्पादन करने के लिए मक्खन वसा को अधिक केंद्रित करना होता है। मक्खन में 80 प्रतिशत वसा, 16 प्रतिशत नमी और 2 प्रतिशत दूध ठोस वसा होना चाहिए। इसमें भण्डार आयु और स्वाद को बेहतर बनाने के लिए थोड़ी मात्रा में नमक (2 प्रतिशत) मिलाई जा सकती है।

चित्र 1: ओपन पैन अस्वास्थ्यकर और अक्षम है

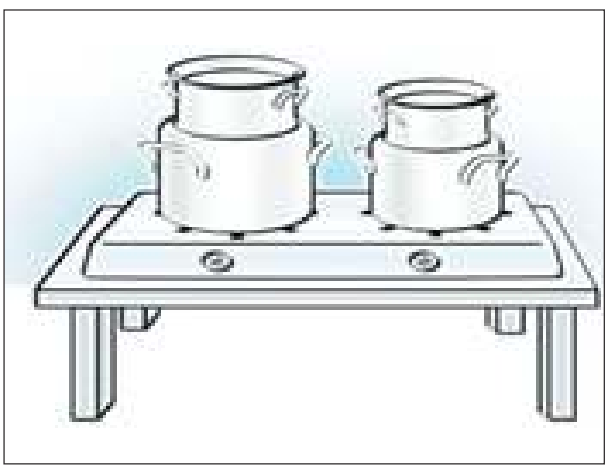

चित्र 2: डबल जैकेट बॉयलर स्वच्छ और कुशल है

मक्खन में उपस्थित अतिरिक्त नमी (अधिक से अधिक 20 प्रतिशत) मक्खन की गुणवत्ता को कम करती है।

मक्खन मथने के लिए आवश्यक उपकरण

- हीटर
- स्टिरर
- मक्खन मंथन (मैनुअल या इलेक्ट्रिकल)
- बटर वर्किंग टेबल
- तेल रोधक कागज
- चिलर या रेफ्रिजरेटर

प्रक्रिया व बनाने की विस्तृत विधि

मलाई से भरी हुई एक तिहाई से आधी मलाई भरें।

- जब तक मक्खन के दाने गेहूँ के दानों के आकार तक नहीं पहुँच जाते तब तक मथते रहें। कणिकाओं को दृढ़ होना चाहिए लेकिन बहुत कठोर नहीं।
- इस बिंदू से परे मंथन न करें, अन्यथा छाछ को धोना असंभव होगा।
- मथने के दौरान क्रीम गर्म नहीं होनी चाहिए एवं मंथन के दौरान तापमान को जितना संभव हो उतना कम रखें (12–15 डिग्री सेल्सियस)।

मक्खन से घी तैयार करने की विधि

घी निर्जल (सूखा) मक्खन है। इसमें 99.9 प्रतिशत बटर फैट होता है। वाष्पीकरण द्वारा नमीयुक्त क्रीम या मक्खन को हटाकर घी बनाया जाता है एवं घी का उपयोग खाना व विभिन्न प्रकार के व्यंजन व पकवान बनाने के लिए किया जाता है। घी को क्रीम या मक्खन से बनाया जा सकता है। मक्खन से इसे बनाने के लिए कम ऊर्जा की आवश्यकता होती है। मक्खन को धीमी आग पर तब तक गर्म किया जाता है जब तक कि सारी नमी वाष्पित न हो जाए और

चित्र 3: डेयरी थर्मामीटर

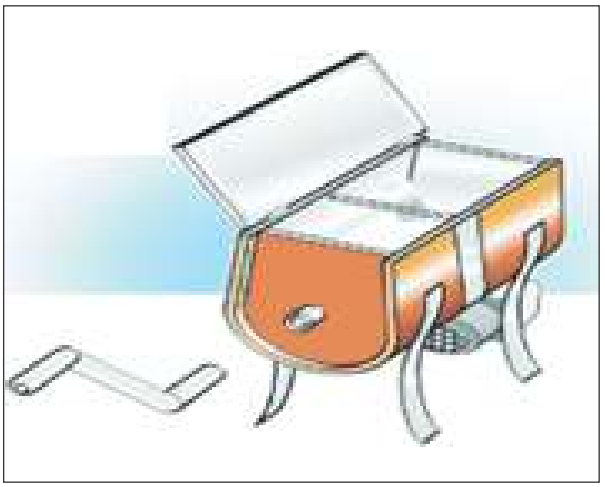

चित्र 4: केन्द्राप्रसारक विभाजक (मैनुअल या इलेक्ट्रिकल)

चित्र 5: पारंपरिक मक्खन मंथन

चित्र 6: बेहतर मैनुअल मक्खन मंथन

तापमान 120–125 डिग्री सेल्सियस तक ना बढ़ जाए।

दही बनाने की विधि

दही किण्वन विधि द्वारा निर्मित एक बहुत ही उत्तम उत्पाद है, जिसे दुग्ध में कल्चर मिलाकर लगभग चार–पांच घंटे तक बिना हिलाए–डुलाये रखकर बनाया जाता है। भारत में शायद ही कोई घर हो, जहाँ दही जमाया व खाया न जाता हो। भारत में दही एक बहुत ही उपयोगी व आहार का महत्वपूर्ण अंग होने के साथ–साथ बहुत ही स्वास्थ्यवर्धक उत्पाद है। उत्तर भारत हो या दक्षिण भारत, दही नाश्ते से लेकर रात्रि के भोजन तक भारतीय आहार का मुख्य अंग है। देश के कुल दुग्ध उत्पादन का लगभग सात प्रतिशत दुग्ध दही, योगर्ट व अन्य किण्वन विधि द्वारा निर्मित उत्पादों में खपत होता है। लस्सी, कढ़ी, मिस्टी दही व अन्य कई उत्पादों के रूप में दही भारतीय बाजार में उपलब्ध हो रहे हैं। किन्वित विधि द्वारा बने उत्पादों में पीएच मान बढ़ने पर उनके स्वाद में खट्टापन आ जाता है और वे जल्दी ख़राब हो जाते हैं। इन उत्पादों को अधिक हिलाने–डुलाने पर इनमें जलस्राव (व्हेय–ऑफ़) होने लगता है और इनका पीएच मान भी बढ़ जाता है, जिससे इनका संरचना व स्वाद काफी ख़राब हो जाता है।

दही एक अर्द्ध ठोस किण्वित दूध उत्पाद है। दही के कई प्रकार हैं एवं दही बनाने के लिए प्रतिजैविकों और गोशाला प्रक्षलकों से मुक्त अच्छे जीवाणुवीय गुणवत्ता वाले ताजे दूध का उपयोग किया जाना चाहिए एवं ये भी ध्यान रखा जाना चाहिए कि दही बनाने के लिए खीस और मस्तिक दूध का उपयोग न किया जाए।

सारांश

भारतीय कृषकों को देश में मौसम की अनियमितताओं के कारण कई बार बड़ी मुश्किलों का सामना करना पड़ता है, जिसका हल वे पूर्णतः कृषि आधारित उपज पर ही निर्भर ना होकर डेरी व पशुपालन से जुड़े कार्यों द्वारा कर सकते हैं। डेरी कृषकों के उचित मुनाफे हेतु यह पाया गया है कि डेयरी उत्पादों के प्रसंस्करण से छोटे पैमाने पर डेयरी उत्पादकों को कच्चा दूध बेचने की तुलना में अधिक नकदी प्राप्त होती है और क्षेत्रीय और शहरी बाजारों तक पहुंचने के बेहतर अवसर मिलते हैं। दूध की उपलब्धता भी दूध की उचित मात्रा में आपूर्ति व बदलते मौसम के उतार–चढ़ाव से निपटने में मदद कर सकती है। प्रसंस्करित दूध और उत्पादों में कच्चे दूध का परिवर्तन दूध संग्रह, परिवहन, प्रसंस्करण और विपणन में फार्म से बाहर की नौकरियाँ पैदा करके पूरे समुदायों को लाभान्वित कर सकता है व इस प्रकार भारतीय कृषक उचित मुनाफा प्राप्त कर अपनी आर्थिक स्थिति बेहतर बना सकता है।

धान्य फसलों के मुख्य बीज जनित रोग एवं उनकी रोकथाम

रविन्द्र कुमार, सुधीर कुमार, प्रेम लाल कश्यप, पूनम जसरोटिया एवं ज्ञानेन्द्र प्रताप सिंह
भाकृअनुप–भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान, करनाल

पादप संरचना व कार्यिकी में किसी कारणवश आये परिवर्तन जो उनको नुकसान पहुंचाकर उनका आर्थिक महत्व एवं उपज घटा देते हैं उनको पादप रोग, बीमारी अथवा पादप व्याधि कहते हैं। अध्ययन की सुविधा के लिए, पौधों के रोगों अथवा बिमारियों को सामान्यतः तीन श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है;

1. बीज जनित रोग
2. मृदा जनित रोग
3. वायु जनित रोग।

इन तीनों श्रेणियों के बीच अन्तर करने वाली कोई स्पष्ट विभाजक रेखा नहीं है और एक रोगज़नक़ अपने अस्तित्व के लिए एक या एक से ज्यादा तरीकों को अपना सकता है। उदाहरण के लिए, गेहूँ के अनावृत कंड रोग का रोगजनक *अस्टीलैगो सेगेटम* प्रजाति *ट्रिटीसी* एक विशेष रूप से अंतः बीज–जनित और बीज संचारित रोग है, क्योंकि रोगज़नक़ का निष्क्रिय कवकजाल बीज के भ्रूण में स्थित होता है। जब इन संक्रमित बीजों को बोया जाता है, तो कवकजाल (माइसेलियम) सक्रिय हो जाता है और बिना किसी लक्षण के प्रकट किए, पोषक पौधे के साथ बढ़ता है। जब पुष्पन के बाद बालियाँ बनती हैं तो रोगज़नक़ खुद को व्यक्त करता है और स्वस्थ बालियों के स्थान पर कंड रोग ग्रसित बालियाँ लाखों टीलियो बीजाणु युक्त दिखाई देती हैं। कुछ समय पश्चात् इन टीलियोबीजाणुओं को वायु द्वारा उड़ा दिया जाता है ताकि ये दूसरे पौधों को संक्रमित कर सके। इस प्रकार, हम देखते हैं कि यद्यपि रोग बीज जनित है, फिर भी यह अपने जीवन–चक्र को पूरा करने के लिए वायु की सहायता लेता है। रोग के संक्रमण की प्राथमिक शुरूआत ही रोग की प्रकृति को तय करती है। कुछ रोग ऐसे भी हैं जिनमें संक्रमण की प्राथमिक शुरूआत अलग–अलग माध्यम से हो सकती है उदाहरण हेतू धान का बकानी रोग। इस रोग का रोगजनक *फ्यूजेरियम मोनिलीफॉर्मी* मुख्यतः बीज जनित माना गया है परन्तु मृदा में उपस्थित *फ्यूजेरियम मोनिलीफॉर्मी* का निवेशद्रव्य (इनोकुलम) भी धान के पौधों में बकानी रोग के प्राथमिक संक्रमण को स्थापित करने में सक्षम होता है।

बीज–जनित बिमारियों व उनके रोगजनकों का महत्व

- बीज–जनित रोगजनक खेत में अंकुर स्थापना के लिए एक गंभीर खतरा है। इसलिए फसल की विफलता में संभावित कारक के रूप में योगदान कर सकते हैं।
- बीज न केवल इन रोगजनकों के दीर्घकालिक अस्तित्व को सुरक्षित बनाते हैं, बल्कि नए क्षेत्रों में उनके आगमन और उनके व्यापक प्रसार के लिए वाहन के रूप में भी कार्य कर सकते हैं।
- बीज–जनित फफूंद, जीवाणु, विषाणु, सूत्रकृमि आदि रोगजनक अनाज वाली फसलों में विनाशकारी नुकसान का कारण बन सकते हैं और इसलिए सीधे खाद्य सुरक्षा को प्रभावित करते हैं।
- पौधों के संक्रमित वायवीय भागों के विपरीत, संक्रमित बीज लक्षण–रहित हो सकते हैं, जिससे उनकी पहचान असंभव हो जाती है।

धान्य फसलों के बीज जनित रोग व उनकी रोकथाम

धान्य फसलों के अन्तर्गत गेहूँ, धान, जौ, जई, बाजरा, ज्वार आदि की फसलें आती हैं। इन फसलों में अनेक प्रकार के रोगजनक बीज जनित बिमारियाँ उत्पन्न करते हैं (तालिका 1)। इन बिमारियों में कुछ प्रमुख बीज जनित रोग और उनकी रोकथाम इस प्रकार है;

गेहूँ का करनाल बंट (अधूरा बंट)

यह रोग अपेक्षाकृत उपज में कम हानि करता है परन्तु अनेक देशों की संगरोध सूची में शामिल होने के कारण यह अति महत्वपूर्ण है।

रोग लक्षण

करनाल बण्ट प्राय कुछ दानें प्रति बाली तक ही संक्रमण करता है। इसलिये इस रोग की फसल की कटाई से पहले पहचान करना आसान नही है। फसल की कटाई के पश्चात रोग को आसानी से दृष्टि परीक्षण द्वारा पहचाना जा सकता है। काले रंग के टीलियोबीजाणु बीज के कुछ भाग का स्थान ले लेते है। इसमें बाहरी परत फट जाती है अथवा यह जुड़ी हुई भी रह सकती है। रोगी दानों को कुचलने पर ये सड़ी हुई मछली की दुर्गन्ध देते हैं।

चित्र 1: गेहूँ का करनाल बण्ट

रोग का विकास एवं फैलाव

यह रोग मुख्य रूप से दूषित बीज या खेत उपकरण के माध्यम से फैलता है, हालांकि इसे हवा द्वारा कम दूरी पर भी ले जाया जा सकता है। कवक बीजाणु कई वर्षों तक जीवित रह सकते हैं। अनुकूल मौसम में इनका अंकुरण होता है। एक बार बीजाणु अंकुरित होने के बाद, वे गेहूँ के फूलों को संक्रमित करते हैं और कर्नल के भ्रूण के छोर पर बीजाणुओं के बड़े समूह को विकसित करते हैं (संपूर्ण कर्नेल कभी–कभी ही प्रभावित होता है)। आपेक्षिक आर्द्रता 70 प्रतिशत से अधिक होना टीलियोबीजाणुओं के विकास के अनुकूल है। इसके अलावा, दिन का तापमान 18–24 डिग्री सेल्सियस और मिट्टी के तापमान का 17–21 डिग्री सेल्सियस की सीमा में होना करनाल बंट की गंभीरता बढ़ाता है।

रोग की रोकथाम

- स्वस्थ एवं रोगमुक्त बीज की बुवाई करनी चाहिए।
- फसल–चक्र को अपनाएं।
- खेत के आस–पास खरपतवारों एवं कोलेट्रल पोषक पौधों को नहीं उगने देना चाहिए।
- क्षेत्र विशेष के लिए संस्तुत रोग प्रतिरोधी किस्मों की बुआई करें।
- पुष्पन के समय 0.1 प्रतिशत प्रोपिकॉनाजोल 25 प्रतिशत ई. सी. का छिड़काव करें।

गेहूँ का अनावृत कंड (लूज स्मट) रोग

रोग लक्षण

यह रोग अंतः बीज जनित रोग है। इसका रोगकारक *अस्टीलैगो सेगेटम* प्रजाति *ट्रिटीसी* कवक है। इस रोग के लक्षण केवल बालियाँ निकलने पर दृष्टिगत होते हैं। इस रोग में पूरा पुष्पक्रम (रैचिस को छोडकर) स्मट बीजाणुओं के काले चूर्णी समूह में परिवर्तित हो जाता है। यह चूर्णी समूह प्रारम्भ में पतली कोमल धूसर झिल्ली से ढका होता है जो शीघ्र ही फट जाती है और बड़ी संख्या में बीजाणु वातावरण में फैल जाते हैं। ये काले बीजाणु हवा द्वारा दूर स्वस्थ पौधों तक पहुँच जाते हैं जहाँ ये अपना नया संक्रमण कर सकते हैं।

रोग का विकास एवं फैलाव

अनावृत कंड के रोगजनक के टीलियोबीजाणुओं को हवा द्वारा खुले पुष्पों पास उड़ाकर पहुंचाया जाता है और ये अंडाशय को स्टिग्मा या सीधे अंडाशय की दीवार के माध्यम से संक्रमित करते हैं। एक खुले पुष्पक (फ्लोरेट) में पहुंचने के बाद, टीलियोबीजाणु बेसिडियोबीजाणु को जन्म देते हैं। बेसिडियोबीजाणु वहीं अंकुरण करते हैं। दो संगत बेसिडियोबीजाणु के हाइपे फिर एक द्विकेंद्रकीय चरण को स्थापित करने के लिए संलयन (फ्यूज) करते हैं। अंडाशय के अंदर अंकुरण के बाद, कवक जाल बीज में विकासशील भ्रूण पर आक्रमण करता है। कवक बीज में अगले बुवाई मौसम तक जीवित रहता है। बुवाई के बाद जैसे–जैसे नया पौधा बढ़ता है, इसके साथ कवक बढ़ता है। एक बार जब

चित्र 2: गेहूँ का अनावृत कन्डुवा

फूलों के बनने का समय होता है, तो फूलों के स्थान पर टीलियोबीजाणु उत्पन्न होते हैं और विकसित होते हैं जहाँ कि बीज अथवा दानों को बनना था। रोगी पौधे गेहूँ के स्वस्थ पौधों की तुलना में लंबे होते हैं और उनमें पहले बालियाँ निकल आती हैं। इससे संक्रमित पौधों को यह फायदा होता है कि असंक्रमित पौधों के फूल संक्रमण के लिए शारीरिक और रूपात्मक रूप से अतिसंवेदनशील होते हैं। हवा और मध्यम बारिश, साथ ही साथ ठंडे तापमान (16–22 डिग्री सेल्सियस) बीजाणुओं के फैलाव के लिए आदर्श होते हैं। रोगी बालियों से टीलियोबीजाणु स्वस्थ पौधों के खुले पुष्पों पर पहुँचाता है और इस प्रकार रोग विकास चलता रहता है।

रोग की रोकथाम

- स्वस्थ एवं प्रमाणित बीज ही बोना चाहिए।
- बुआई पूर्व बीज को 2.0–2.5 ग्राम की दर से कार्बोक्सीन (75 प्रतिशत) या कार्बोक्सीन (37.5 प्रतिशत) + थीरम (37.5 प्रतिशत) या कार्बेन्डाजिम 50 प्रतिशत घुलनशील पाउडर से उपचारित कर ले।
- मई–जून माह में बीज को पानी में 4 घंटे भिगोने के बाद कड़ी धूप में अच्छी तरह सुखाकर सुरक्षित भंडार किया जा सकता है। पानी में भिगोने से बीज में पड़ा रोगजनक सक्रिय हो जाता है, जो कड़ी धूप में सुखाने पर मर जाता है। ऐसे बीज को अगले मौसम में बोने से रोग नहीं पनपता है।
- यदि फसल बीज हेतू बोई गई है तो बाली निकलते समय उसका निरीक्षण करते रहना चाहिए। यदि कंडुआ ग्रस्त बालियाँ दिखाई दें, तो उन्हें किसी कागज की थैली से ढककर पौधे को उखाड़ कर जला दें या मिट्टी में दबा दें।

गेहूँ का झौंका, बदरा या ब्लास्ट रोग

अभी तक यह रोग भारत में नहीं पाया जाता है। सर्वप्रथम यह रोग ब्राजील में 1985 में देखा गया था और इसका फैलाव बोलीविया, अर्जेन्टीना, पैराग्वे, उरुग्वे तथा संयुक्त राज्य अमेरिका तक सीमित था। सन् 2016 में यह रोग हमारे पड़ोसी देश बंगलादेश की सीमा में पाया गया था। चूंकि बंगलादेश की सीमा का लगभग 4096 किलोमीटर क्षेत्र भारत की सीमा से लगता है तथा पश्चिम बंगाल आदि राज्यों की करीब 11 मिलियन हैक्टर क्षेत्र की जलवायु भी ब्लास्ट के संक्रमण तथा फैलाव के लिए उपयुक्त है। इसलिए आशंका जताई जा रही है कि यह व्याधि भारत के उत्तर–पूर्व मैदानी जलवायु क्षेत्रफल में फैलकर गेहूँ की फसल को हानि पहुँचा सकती है।

रोग लक्षण

यह रोग पत्तियों, बालियों तथा दानों को संक्रमित करता है। पत्तियों पर शुरू में पानी में भीगे हुए जैसे गहरे हरे रंग के धब्बे बनते हैं जो बाद मे भूरे रंग के नाव के आकार के हो जाते हैं। सक्रंमित पत्तियाँ जल्दी सूख जाती हैं। बालियों पर रोग काफी स्पष्ट एवं भयंकर रूप में आता है। संक्रमित बालियाँ समय से पहले ही सूख जाती हैं। दाने हल्के बदरंग तथा पतले हो जाते हैं या इनमें दाने नहीं पड़ते हैं।

रोग का विकास एवं फैलाव

यह रोग *मैग्नोपॉर्थे ओराइजी* पैथोवार *ट्रिटीकम* नामक कवक से होता है। रोग के फैलने के लिए 18–30 डिग्री सेल्सियस का तापमान व 80 प्रतिशत से अधिक आपेक्षिक आर्द्रता सबसे अधिक अनुकूल वातावरणीय दशाएं हैं। कई दिनों तक औसत तापमान 18–25 डिग्री सेल्सियस और बारिश के बाद धूप तथा आर्द्र मौसम महामारी फैलने के लिए अनुकूल होता है। रोग का द्वितीय प्रसार कोनिडिया के माध्यम से होता है। वायु की उपस्थिति में अधिकाशतः कोनिडिया 700 मी. से 1000 मी. तक यात्रा कर सकते हैं। ज्यादा लम्बी दूरी तक रोग के प्रसार के लिए रोगजनक से संक्रमित बीज ही एकमात्र साधन है।

रोग की रोकथाम

- सदैव प्रमाणित और रोगमुक्त बीज का प्रयोग करें।
- प्रतिरोधी गेहूँ की किस्मों का उपयोग करें। प्रतिरोधी किस्मों से अतिसंवेदनशील किस्मों को बदलें।
- कवकनाशी जैसे कार्बोक्सीन या कार्बेन्डाजिम के साथ 2.5 ग्राम/कि.ग्रा. या टेबूकोनाजोल 1.0 ग्राम/कि.ग्रा. बीज की दर से बीज को उपचारित करें।
- पत्तियों और स्पाइक पर रोग के लक्षणों की उपस्थिति

के लिए नियमित रूप से फसल की निगरानी करें।

- गेहूँ के खेत में और आस–पास घास विशेषकर मंडुआ, भरटा, सांवक, तकड़ा, कनकी और लीर्सिया घास को नियमित रूप से हटा दें और नष्ट करें।
- रोग का संक्रमण होने पर कवकनाशी (ट्राइफ्लोक्सीस्ट्रोबीन 50 प्रतिशत+टेबूकोनाजोल 25 प्रतिशत डब्ल्यू.जी.) का 120 ग्राम/200 लीटर पानी प्रति एकड़ के साथ फसल पर छिड़काव करें।

गेहूँ का ध्वज कंड (फ्लैग स्मट) रोग

रोग लक्षण

यह रोग *यूरोसिस्टिस एग्रोपाइरी* नामक कवक से होता है। इस रोग में पत्तियों पर चाँदी के रंग के धब्बें बीजाणुधानी पुंजों के रूप में दिखाई पडते हैं, जो कवक के गहरे भूरे रंग के बीजाणुधानियों से भरे होते हैं। पत्तियों पर लम्बी काली धारियां शिराओं के समानान्तर बनती हैं। पत्तियां ऐंठ जाती हैं और ध्वज कंड ग्रसित पत्ती काली होकर सूख जाती हैं। प्रायः रोगग्रस्त पौधों की बालियों में दानें विकसित नहीं होते और वे समय से पहले ही मर जाते हैं।

रोग का विकास एवं फैलाव

रोगजनक टीलियोबीजाणु उत्पन्न करता है, जो हवा, कृषि यंत्रों या पशुओं के द्वारा मिट्टी से वितरित किया जा सकता है। मृदा में एक द्विकेंद्रकीय टीलियोबीजाणु चार बेसिडियोबीजाणुओं को उत्पन्न करता है। बेसिडियोबीजाणु नये पौधों के ऊपर पर अंकुरण करता है और प्रत्येक कवकतंतु एक संगत कवकतंतु के साथ कोशिकाद्रव्य लयन (प्लास्मोगैमी) करके कवक के द्विकेंद्रकीय (डाइकैरियोटिक) स्थिति को फिर से स्थापित करता है। कवकतंतु एप्रेसोरिया बनाता है जो एपिडर्मल ऊतक के माध्यम से उगते हुए बीज के अंकुर के कोलियोप्टाइल में प्रवेश करता है, फिर पत्तियों के संवहनी बंडलों के बीच कवकतंतु बढ़ता है। कुछ कवकतंतु कोशिकाएँ कंड सोरई को जन्म देती हैं, जिसमें टीलियोस्पोर्स होते हैं, जो हवा द्वारा पत्ती ऊतक से बाहर निकलते हैं। टीलियोस्पोर मिट्टी में विश्राम करने के लिए आते हैं, और जब स्थिति सही होती है, तो वे अधिक बेसिडियोस्पोर को जन्म देते हैं, जिससे संक्रमण फैलता है।

वैकल्पिक रूप से, टेलियोबीजाणु बीज में तब बन सकते हैं जब माइसिलिया पूरे पौधे में उगता है, उस स्थिति में वे बीज के भीतर अंकुरित होकर फिर से बेसिडियोस्पोर उत्पन्न करके नए संक्रमण को जन्म देते हैं। टिलियोस्पोर्स मिट्टी में, मृत पौधे के ऊतकों और बीज में उत्तरजीवी होते हैं। ये बीजाणु 3–7 वर्षों तक अंकुरण जीवटता बनाए रखते हैं।

रोग की रोकथाम

- देरी से बिजाई न करें। गैर–पोषक फसलों के साथ फसल–चक्र अपनाएं।
- बीज को कार्बोक्सीन (75 प्रतिशत डब्ल्यूपी) या कार्बोक्सीन (37.5 प्रतिशत) + थीरम (37.5 प्रतिशत) या थीरम 75 प्रतिशत घुलनशील पाउडर से 2.0–2.5 ग्राम प्रति किग्रा बीज की दर से उपचारित करें।
- रोगग्रस्त पौधों को खेत से सावधानीपूर्वक उखाड़कर नष्ट कर दें।
- क्षेत्र विशेष के लिए संस्तुत रोगरोधी किस्मों की बुआई करें।

गेहूँ का फ्यूजेरियम हेड स्कैब रोग

रोग लक्षण

प्रारंभिक लक्षणों में छोटे, जलासिक्त धब्बे बालियों के आधार पर या स्पाईक्स के बीच में या फ्लोरेट पर बनते हैं और धीरे–धीरे पूरी बाली पर फैल जाते हैं, जिसे समय से पहले बालियों को 'सफेद' या 'विरंजन' के रूप में देखा जा सकता है। गर्म और नम हालत में रोगज़नकों के गुलाबी स्पोर्स को

चित्र 3: गेहूँ का ध्वज कंड रोग

चित्र 4(अ): गेहूँ का ध्वज व्यंड रोग

स्पाईक्स के बीच में या आधार पर देखा जा सकता है। बीमारी की प्रगति पर, दाने सूखे, सिकुड़े हुए, खुरदरी सतह के, फीके सफेद से हल्के–भूरे रंग के बनते हैं। ऐसे हल्के वजन के संक्रमित कर्नेल को आमतौर पर 'टॉम्बस्टोन' कहा जाता है।

रोग विकास एवं फैलाव

गर्म और नम जलवायु बीमारी के अनुकूल है। यद्यपि वर्तमान में यह रोग भारत में मामूली महत्व का है और पंजाब और हिमाचल प्रदेश के कुछ क्षेत्रों में पाया जाता है।

रोग की रोकथाम

- खेत स्वच्छता के सिद्धांत का पालन करें। पूर्व की फसल के अवशेषों को खेत से निकाल कर नष्ट कर दें।
- फसल बुवाई के लिए प्रमाणित और बीमारी मुक्त बीज का प्रयोग करें।
- क्षेत्र विशेष के लिए संस्तुत की गई रोग प्रतिरोधी किस्मों की बुवाई करें।
- बीजों को कार्बोक्सीन या कार्बेन्डाजिम के साथ 2.5 ग्राम/किग्रा. या टेबूकोनाजोल 1.25 ग्राम/कि.ग्रा. बीज की दर से उपचारित करें।

धान का भूरा पत्ती धब्बा (ब्राउन स्पॉट) रोग

रोग लक्षण

यह रोग *हेल्मिन्थोस्पोरियम ओराइजी* नामक कवक द्वारा होता है। इस रोग में संक्रमित पौधों के प्रांकुर–चोल (कॉलियोप्टाइल्स), पत्ती का फलक (लीफ ब्लेड) पत्ती आवरण (लीफ शीथ) व तुष (ग्लूम्स) पर महीन छोटे, गोल या अण्डाकार, भूरे विक्षत या धब्बे बनते हैं परन्तु सबसे

चित्र 5: धान का भूरा पत्ती धब्बा रोग

अधिक धब्बें लीफ ब्लेड और ग्लूम्स पर बनते है। इन धब्बों के केन्द्र हल्के भूरे रंग से धूसर रंग के व किनारे लाल भूरे होते है। गंभीर रोग संक्रमण में ये विक्षत मिलकर प्रभावित पत्तियों के बड़े भाग को मार देते हैं। संक्रमित पौधें बौने रह जाते हैं और मर जाते हैं। रोगग्रस्त नर्सरी प्रायः दूर से ही भूरे जले हुए आभास के साथ पहचानी जा सकती है। पुरानी पत्तियों पर असंख्य, छोटे–गोल, गहरे भूरे अथवा बैंगनी भूरे या नीललोहित भूरे रंग के नये अथवा कम विकसित धब्बें दिखाई देते हैं। संक्रमित दानों में भूरा या काला विवर्णन दिखाई देता है।

रोग विकास एवं फैलाव

इस रोग का रोगकारक बीज में 4 वर्ष से भी अधिक समय तक उत्तरजीवी रह सकता है। संक्रमित बीज, धान के स्वयंसेवी पौधे, संक्रमित धान के अवशेष एवं अनेक खरपतवार खेत मे निवेशद्रव्य के प्रमुख स्रोत हैं। कवक पौधे से पौधे एवं एक खेत से दूसरे खेत वायुजनित बीजाणु (कोनिडिया) द्वारा फैल सकता है। पोषक तत्वों की कमी वाली मृदा एवं उचित प्रकार से सिंचित न होने वाली मृदा में यह रोग सामान्यतः होता है। उच्च आपेक्षिक आर्द्रता (86–100 प्रतिशत) एवं 16–36 डिग्री सेल्सियस तापमान रोग लिए अनुकूलतम होता है।

रोग की रोकथाम

- गर्म पानी में 53–54 डिग्री सेल्सियस तापमान पर 10–12 मिनट तक बीज का उपचार प्रभावशाली रहता है। बीज उपचार करने से पहले बीज को 8 घण्टे तक ठण्डे पानी में डुबोने से इस उपचार का प्रभाव बढ़ जाता है।
- थीरम अथवा कार्बेन्डाजिम से 2.5 ग्राम प्रति किलोग्राम की दर से बीज का उपचार करने पर पौधों के संक्रमण में काफी कमी पायी गयी है।
- नत्रजन उर्वरकों का तीन भागों में प्रयोग एवं भूमि की पोटाश, मैंगनीज और जिंक की कमी को दूर करने से रोग का प्रसार कम होता है।
- पोषक खरपतवारों एवं संक्रमित पौधों के अवशेषों को निकालकर नष्ट कर देना चाहिये।
- रोग के लक्षण दिखाई देने पर इडिफेन्फॉस 50 प्रतिशत ईसी या मेंकोजेब 75 प्रतिशत घुलनशील चूर्ण या जिनेब 75 प्रतिशत घुलनशील चूर्ण अथवा कार्बेन्डाजिम का 2.5 ग्राम प्रति लीटर की दर से 10–12 दिन के अन्तराल पर तुरन्त छिड़काव करना चाहिये।

धान का बकानी रोग/पद गलन रोग

रोग लक्षण

यह बासमती धान में लगने वाला प्रमुख रोग है जो *फ्यूजेरियम फ्यूजीकुरई* (पर्याय–*फ्यूजेरियम मोनीलिफॉर्मी*) कवक से होता है। संक्रमित पौधे पतले, असामान्य रूप से लम्बे (सामान्य पौधों से कई इन्च लम्बे) एवं पीले–हरे होते हैं। इस रोग में गांठों का लम्बापन एवं भूमि के ऊपर की गांठ में अपस्थानिक जड़ों का बनना भी देखा गया है। देर से संक्रमण होने पर पौधों में कल्ले कम फूटते हैं और पत्तियाँ सूख जाती है। जीवित संक्रमित पौधों में आंशिक रूप से भरे हुये दाने बनते हैं। बंध्य अथवा खाली दानें भी परिपक्व होने के समय बन सकते हैं। रोग से संक्रमित पौधों में जड़े काली पड़ जाती है एवं उन पर विक्षत बनते है जो बाद में भूरे रंग के हो जाते हैं। गंभीर रोगी पौधें नर्सरी में अथवा रोपाई के बाद मर जाते हैं।

रोग विकास एवं फैलाव

यह रोग बीज एवं मृदा जनित है एवं पुष्पन की अवस्था में संक्रमण होता है। रोगकारक गैर–मौसम में मृदा, भूसे अथवा पुआल के ठूंठ पर उत्तरजीवी रह सकता है। उच्च तापमान पर रोग सबसे अधिक गंभीर होता है एवं अधिकतम रोग घटना 35 डिग्री सेल्सियस पर होती है। मृदा नमी रोगकारक के उत्तरजीवन एवं फैलाव को प्रभावित करती है।

रोग की रोकथाम

- रोग रहित बीज का बुआई के लिये प्रयोग करना चाहिये।
- नमक का घोल बनाकर हल्के एवं संक्रमित दानों को स्वस्थ बीजों से अलग करना चाहिये। इस घोल से बीज को निकालकर 2–3 बार साफ पानी से धोना चाहिये।
- नत्रजन उर्वरकों के अधिक प्रयोग से बचना चाहिये क्योंकि यह रोग के विकास के लिये अनुकूल होता है।
- बीज को थीरम 75 प्रतिशत या कार्बेन्डाजिम 50 प्रतिशत घुलनशील चूर्ण 20 ग्राम से 8–10 किग्रा बीज का 10 लीटर पानी में 10–15 घण्टे तक भिगोकर उपचार करना चाहिये।
- पौध को खड़े पानी में सावधानी पूर्वक उखाड़ना चाहिये जिससे जड़ों पर घाव न हो सके।
- कार्बेन्डाजिम 50 प्रतिशत घुलनशील चूर्ण कवकनाशी से 2.5 ग्राम/लीटर जल का पर्णीय छिड़काव भी रोग की रोकथाम में सहायता करता है।

चित्र 6: धान का बकानी रोग

- *स्यूडोमोनास फ्लोरेसेंस* नामक जैव नियंत्रक को 1.0 किलोग्राम प्रति एकड़ की दर से रोपाई के 8–10 दिन बाद प्रयोग करने से रोपाई के बाद होने वाले रोग संक्रमण को रोकने मे सहायता करता है।

धान का झौंका या बदरा (राइस ब्लास्ट) रोग

रोग लक्षण

यह रोग *पाइरिकुलेरिया ओराइजी* (पूर्णावस्था–*मैग्नाफोर्थे ओरायज़े*) कवक के द्वारा होता है। यह धान का एक प्रमुख रोग है जो नये अंकुर, पत्तियों, पुष्पगुच्छों (पेनिकल्स), पोरियों, पोरियों की गांठ (कल्म नॉड्स) और पुष्पगुच्छों की गर्दन (पेनिकल नैक नॉड) को ग्रसित करता है। यह रोग गर्दन तोड़ या गर्दन सड़न के नाम से भी जाना जाता है। इस रोग के लक्षणों में पत्तियों पर पिन के सिर के आकार के भूरे विक्षत बनते है जो भूरे पत्ती धब्बा रोग के लक्षण से भ्रमित हो सकते हैं। इन विक्षतों के किनारें भूरे होते है तथा केन्द्र राख जैसे रंग के होते है। ये नुकीले सिरे वाले होते हैं। पुराने विक्षत अथवा धब्बें दीर्घवृत्तक (इलीप्टिकल) अर्थात मध्य में चौड़े और दोनों सिरों की ओर नुकीले होते हैं ये आँख जैसी आकृति वाले प्रतीत होते हैं। गंभीर संक्रमण में ये धब्बें बढ़कर मिल जाते हैं और सम्पूर्ण पत्तियों को मार देते हैं। इस रोग में कल्म के इन्टरनोडल संक्रमण एक के बाद एक 3 सेमी काले उत्तकक्षयी कल्म एवं 3 सेमी स्वस्थ उत्तक के साथ पट्टे की शैली में आता है। नोडल संक्रमण में नोड्स काली हो जाती है और कल्म संक्रमित नोड पर टूट जाती है। जब गर्दन संक्रमित हो जाती अथवा गल जाती है तब कुछ दानें बनते हैं या बालियाँ खाली रह जाती हैं। पुष्पगुच्छ (पेनिकल्स) भी कमजोर स्थान से टूट जाते हैं और इस प्रकार भारी क्षति होती है।

चित्र 7: धान का झौंका (ब्लास्ट रोग)

रोग विकास एवं फैलाव

ब्लास्ट रोग का रोगकारक गैर–मौसम में बीज अथवा ठूंठ (पुआल/भूसे) पर उत्तरजीवी रह सकता है। वायु जनित बीजाणु (कोनिडिया) कवक के संचरण का सबसे महत्वपूर्ण साधन है। फसल की संवेदनशील अवस्था पर निम्नतम तापमान 22–26 डिग्री सेल्सियस एवं 90 प्रतिशत आपेक्षिक आर्द्रता का सुबह के समय 2–4 दिन या अधिक समय तक साथ–साथ होने पर ब्लास्ट रोग के विकास एवं फैलाव को बढाता है। बूंदा–बांदी वाली वर्षा का अधिक समय, वर्षा के अधिक दिन, ओस जमाव की लम्बी अवधि और उच्च उर्वरता दशाएं गंभीर ब्लास्ट प्रकोप में सहायता करते हैं।

रोग की रोकथाम

- रोपाई व बुवाई के समय में बदलाव, रोग के विस्तार को कम करने के लिये पछेती फसल की तुलना में वर्षा ऋतु के आगमन पर बीज की अगेती बुवाई अधिक सुझायी जाती है।
- उर्वरकों का अत्याधिक प्रयोग न करें क्योंकि इससे धान के झौंका रोग की घटना बढ़ती है। नत्रजन को थोड़ी थोड़ी किस्तों में देना चाहिये।
- वर्षा आधारित क्षेत्रों में जल प्रबन्धन क्रियायें जल की कमी में तनाव के आने की संभावना को कम करती है जोकि झौंका के रोग प्रबन्धन में सहायक है।
- बीज को थीरम 75 प्रतिशत घुलनशील चूर्ण 2.5 ग्राम प्रति किग्रा बीज अथवा ट्राईसाइक्लाजॉल 75 प्रतिशत घुलनशील चूर्ण का 1.5 ग्राम प्रति किग्रा बीज की दर से उपचार करना चाहिये।
- रोग दिखाई देने पर फसल पर 0.2 प्रतिशत इडिफेन्फॉस या हेक्साकोनाजॉल या कार्बेन्डाज़िम 50 प्रतिशत डब्ल्यूपी, या कैसुगामाइसिन 3 प्रतिशत एसएल या मैंकोजेब 75 प्रतिशत डब्ल्यूपी का छिड़काव करें। रोग की रोकथाम में 0.1 प्रतिशत पिकोक्सीस्ट्राबिन 22.52 प्रतिशत एस.सी, या टेबूकोनाजॉल 25 प्रतिशत डब्ल्यूजी अथवा पिकोक्सीस्ट्राबिन 6.78 प्रतिशत + ट्राईसाइक्लाजॉल 20.33 प्रतिशत का छिड़काव भी उपयोगी हैं। रोग के सम्पूर्ण नियन्त्रण के लिये 10–15 दिनों के अन्तराल पर 3–4 छिड़काव आवश्यक हो सकते है।

धान का आभासी कण्डुवा (फाल्स स्मट) रोग

रोग लक्षण

यह रोग *अस्टिलैजिनॉइडिया वाइरेन्स* कवक से होता है। इस रोग के लक्षण पुष्पन के पश्चात् ही स्पष्ट दिखाई देते है। इसमें कवक धान के रोगी दानें को पीले–हरे मखमली बीजाणु के झुण्ड या गेंद (स्मट बॉल्स) में परिवर्तित कर देता है। प्रारम्भ में ये स्मट बॉल्स छोटी होती है और तुष (ग्लूम्स) के बीच में ही सीमित रहती है। यें धीरे–धीरे बढ़ती जाती है और पुष्प भाग को घेर लेती है।

परिपक्व बीजाणु नारंगी रंग के होते हैं जो बाद की अवस्था में पीले हरे अथवा काले हरे रंग में बदल जाते हैं। स्मट बॉल्स एक झिल्ली से ढके होते हैं जो बाद में कवक वृद्धि के परिणामस्वरूप फट जाती है और बीजाणु हवा में तैर जाते हैं। प्रायः एक पुष्पगुच्छ (पेनिकल) में कुछ दानें ही सामान्यतः संक्रमित होते है और बाकी दानें स्वस्थ रहते हैं।

रोग विकास एवं फैलाव

आभासी कण्डुवा रोग का संक्रमण पुष्पन की अवस्था में होता है और बाद में स्कलेरोशिया बनती है जो या तो फसल कटाई के समय दानों मे मिल जाती है या भूमि पर गिर जाती है। भूमि पर गिरे हुए स्कलेरोशिया अगले फसल

चित्र 8: धान का आभासी कण्डुवा रोग

चित्र 8 (अ): धान का आभासी कण्डुवा रोग

मौसम में निवेशद्रव्य का कार्य करती हैं। उच्च आपेक्षिक आर्द्रता (90 प्रतिशत या अधिक) कम निम्नतम और अधिकतम तापमान और पुष्पन की अवस्था में बूंदा–बांदी के साथ बादल वाले अधिक दिन रोग के विकास के लिए अनुकूल दशाएं हैं।

रोग की रोकथाम

- रोग रहित क्षेत्र से रोग मुक्त चयनित पौधों से बीज लेकर प्रयोग करना चाहिये।
- अगेती बुवाई/रोपाई रोग के भारी संक्रमण से बचाव करने में सहायक होती है।
- रोगी दानों एवं संक्रमित फसल अवशेषों को नष्ट कर देना चाहिये। इससे रोग का विस्तार कम होता है।
- कल्ले फूटने/दौजी निकलने की अवस्था (टिलरिंग) पुष्पन पूर्व अवस्था पर कार्बेन्डाजिम 50 प्रतिशत घुलनशील पाउडर अथवा ताम्रयुक्त कवकनाशी जैसे कॉपर ऑक्सीक्लोराइड 50 प्रतिशत घुलनशील पाउडर का 2.0–3.0 ग्राम प्रति लीटर पानी व ट्राइफ्लोक्सीस्ट्रोबीन 50 प्रतिशत+टेबूकोनाजोल 25 प्रतिशत डब्ल्यू.जी. का 1.0–1.25 ग्राम प्रति लीटर पानी की दर से छिड़काव रोग के प्रसार को कम करता है।
- बीज बनने से पूर्व प्रोपिकोनाजॉल 25 प्रतिशत ईसी का 200 मिलीलीटर या हेक्साकोनाजोल 5 प्रतिशत एससी का 500 मिलीलीटर प्रति एकड़ दर से छिडकाव भी रोग प्रसार को कम करता है।

धान का जीवाणुज पत्ती झुलसा (बैक्टेरियल लीफ ब्लाइट) रोग

रोग लक्षण

यह *जैन्थोमोनास ओरायजी* पैथोवार ओरायजी नामक जीवाणु से होने वाला एक महत्वपूर्ण रोग है। इस रोग के लक्षण दो अवस्थाओं में आते है जैसे अंकुर झुलसा अथवा क्रेसेक फेज एवं पत्ती झुलसा अवस्था।

पौध म्लानि अथवा क्रेसैक फेज

यह अवस्था प्रायः कम आती है परन्तु अधिक नुकसान करने वाली है। क्रेसैक फेज रोपाई के 1–3 सप्ताह बाद देखी जाती है। इस अवस्था में पत्तियों में म्लानि आ जाती है और वे ऊपर की ओर ऐंठ जाती है। ऐसी पत्तियां धूसर हरी से पीली हो जाती है। बाद में पूरा पौधा पूरी तरह सूख जाता है। क्रेसैक संक्रमित कल्लें तना छेदक की हानि से भ्रमित कर सकता है परन्तु तना छेदक की वजह से कल्ले आसानी से बाहर खींचे जा सकते है जबकि क्रेसैक संक्रमित कल्लें में ऐसा नही होता है।

पत्ती झुलसा अवस्था

रोग के लक्षण पत्ती के फलक (लीफ ब्लेड) पर अथवा पत्ती के चोटी पर जलासिक्त विक्षत से पीली धारियों के बनने से शुरू होते हैं। बाद में ये विक्षत बढ़कर पीले से तिनके जैसे भूरे रंग की धारियों व लहरदार किनारों के साथ बड़ा आकार बना लेते हैं। ये विक्षत या धारियां पत्तियों के एक अथवा दोनों किनारों पर मध्य शिरा के साथ–साथ बनती है। सुबह के समय नये विक्षतों पर जीवाणुज निपंक (बैक्टीरियल ऊज) की दूध जैसी अथवा धूंधली बूंद दिखाई देती है। रोग के बढ़ने पर ये विक्षत पीले से सफेद रंग में बदल जाते हैं। गंभीर रूप से ग्रसित पौधों की पत्तियाँ जल्दी सूखने लगती हैं। विक्षत बाद में अनेक वैकल्पिक मृतोपजीवी कवकों की वृद्धि के कारण धूसर हो जाते है।

रोग विकास एवं फैलाव

जीवाणुज पत्ती झुलसा रोग का रोगकारक गैर–मौसम में धान के पौध अवशेषों, मृदा एवं खरपतवार पोषक पौधों पर उत्तरजीवी रहता है। यह रोग बीज जनित है। उर्वरकों का अंधाधूंध प्रयोग रोग के विकास के लिए उपयुक्त कारक हैं। वर्षा की छींटों, वर्षा युक्त आंधी, तेज हवाओं एवं कृषि क्रियाओं द्वारा धान की पत्तियों में किये गये घाव रोग के विकास एवं प्रसार में सहायक होते हैं। जीवाणुज झुलसा के लिए गर्म मौसम (28–35 डिग्री सेल्सियस) एवं उच्च आपेक्षिक आर्द्रता (90 प्रतिशत से अधिक) अनुकूल होता है।

रोग की रोकथाम

- बीज को कार्बेन्डाजिम 50 प्रतिशत घुलनशील चूर्ण (20 ग्राम)+स्ट्रेप्टोसाइक्लिन (1 ग्राम) से 8–10 किग्रा बीज का 10 लीटर पानी में 10–15 घण्टे तक भिगोकर उपचार करना चाहिये।
- खेत की स्वच्छता अपनाना जैसे खरपतवार पोषक पौधों, धान के भूसे, पूर्व की फसल पौंधे, और स्वयं उगे

चित्र 9(अ): धान का जीवाणु झुलसा रोग ग्रसित खेत

चित्र 9(ब): पत्तियों पर जीवाणु झुलसा रोग

अंकुर को नष्ट करना इस बीमारी से होने वाले संक्रमण से बचने के लिए महत्वपूर्ण है।

- धान की नर्सरी में उथले पानी को बनाए रखना व समुचित जल निकासी अच्छी नर्सरी प्रबंधन की क्रियायें हैं।
- बैक्टीरियल लीफ ब्लाइट के प्रबंधन के लिए उर्वरक, विशेष रूप से नाइट्रोजन उर्वरकों का संतुलित प्रयोग पौधे से पौधे की उचित दूरी अनुप्रयोग की सिफारिश की जाती है।
- क्षेत्र विशेष हेतू संस्तुत प्रतिरोधी किस्मों का उपयोग सबसे प्रभावी और सबसे आम रोग प्रबंधन पद्धति है।
- फसल पर कॉपरआक्सीक्लोराइड (500 ग्राम) + स्ट्रेप्टोमाइसिन अथवा एग्रीमाइसिन (10–12 ग्राम) के मिश्रण 200 लीटर पानी में घोल बनाकर प्रति एकड़ की दर से छिड़काव करना चाहिये। रोग दबाव यदि ज्यादा संभावित हो तो इस छिड़काव को 2–3 बार 15 दिनों के अन्तराल पर दोहराना चाहिये।

धान का शीथ गलन (शीथ रॉट) रोग

रोग लक्षण

यह एक कवकजनित रोग है जो सैरोक्लैडियम ओराइजी द्वारा होता है। इस रोग में संक्रमण सबसे ऊपरी लीफ शीथ पर होता है। यह लीफ शीथ देर से बूटिंग पर नये पुष्पगुच्छ (पैनिकल) को घेरे रहता है। इस रोग की शुरुआत में लम्बे गोल कुछ अनियमित से धब्बें अथवा विक्षत बनते हैं। यें धब्बें 0.5–1.5 सेमी लम्बे, गहरे लाल भूरे किनारों वाले एवं धूसर केन्द्र के होते हैं। शीथ पर विक्षत के द्वारा हल्का लाल भूरा विवर्णन भी बन सकता है। ये विक्षत बढ़कर प्रायः मिल जाते है और पूरी पत्ती–आवरण (लीफ शीथ) को ढक लेते हैं। गंभीर संक्रमण में पूरा पुष्पगुच्छ (पेनिकल) अथवा उसका कुछ भाग शीथ में ही रह जाता है। बाहर न निकले हुये पैनिकल्स गलने लगते हैं और पुष्पक (फ्लोरेट्स) लाल भूरे से गहरे भूरे रंग में बदल जाते हैं। संक्रमित शीथ और नये पेनिकल्स में स्पष्ट रूप से दिखाई देने वाले सफेद चूर्णी वृद्धि दिखाई देती है। यदि रोगजनक पुष्पगुच्छ (पैनिकल) निकलने के बाद आक्रमण करता है तो संक्रमित पैनिकल रंगहीन, नपुंसक (बंध्य), झुर्री पड़े हुये अथवा आंशिक रूप से भरे हुये दानों के साथ होते हैं।

रोग विकास एवं फैलाव

इस रोग का रोगकारक धान के अवशेषों पर उत्तरजीवी रह सकता है। यह रोग उच्च नत्रजन के प्रयोग से तीव्रता से फैलता है। धान की फसल में कीट द्वारा पहुंचायी गयी क्षति रोग बढ़ाने में सहायक होती है। उच्च आपेक्षिक आर्द्रता एवं उच्च फसल घनत्व इस रोग के अनुकूल होते हैं। धान में बालियाँ निकलने से फसल परिपक्वता की अवस्था पर 20 से 28 डिग्री सेल्सियस तक तापमान कवक सबसे अधिक वृद्धि करता है।

रोग की रोकथाम

- पौधे से पौधे की इष्टतम दूरी रखना व कटाई के बाद रोगी फसल अवशेषों को हटाना रोग को कम करते हैं।
- टिलरिंग स्टेज पर पोटाश उर्वरक के अनुप्रयोग की भी सिफारिश की जाती है। शीथ रॉट को नियंत्रित करने के लिए कैल्शियम सल्फेट और जिंक सल्फेट का पर्णीय छिड़काव उपयोगी पाया गया।
- कार्बेन्डाजिम 50 प्रतिशत घुलनशील चूर्ण, एडिफेन्फॉस या मैन्कोज़ेब 75 प्रतिशत घुलनशील चूर्ण का 2.5 ग्राम प्रति किग्रा की दर से बीज उपचार शीथ की सड़न को कम करने के लिए प्रभावी पाया गया।
- बूटिंग अवस्था पर कार्बेन्डाजिम, कॉपर ऑक्सीक्लोराइड

चित्र 10: धान का शीथ गलन (शीथ रॉट) रोग

अथवा मैन्कोजेब का पर्णीय छिड़काव शीथ रोट को कम करता है।

- प्रोपिकोनाजॉल 25 प्रतिशत ईसी 0.1 प्रतिशत और हेक्जाकोनाजोल 75 प्रतिशत डब्ल्यूजी 0.2 प्रतिशत का छिडकाव शीथ रॉट के विरूद्ध अच्छे परिणाम देता है।

धान का बंट रोग या कर्नल स्मट रोग

रोग लक्षण

यह एक कवक जनित रोग है जो *टिलेशिया बार्केलियाना* (*पर्याय निवोसिया बार्केलियाना*) नामक कवक से होता है। आमतौर पर पैनिकल्स में केवल कुछ दानें आंशिक या पूर्ण रूप से संक्रमित होते हैं। लक्षण प्रारम्भ में फसल परिपक्वन के समय ग्लूम्स के माध्यम से फटने वाली छोटी काली धारियों के रूप में दिखाई देते हैं। संक्रमित दाने को उंगलियों के बीच कुचलने पर बीजाणुओं का काला पाउडर जैसा समूह निकलता है। बीजाणु संक्रमित दाने से झड़कर खेत में और पत्तियों पर गिरकर एक विशेष काला आवरण बना लेता है। कभी–कभार आंशिक रूप से स्मट होने के कारण अप्रभावित कर्नेल का एक हिस्सा मुड़ जाता है। यदि बीज बहुत अधिक क्षतिग्रस्त नहीं होते हैं, तो वे अंकुरित हो सकते हैं, लेकिन उनसे उत्पन्न अंकुर कमजोर और बौने होते हैं।

रोग का विकास एवं फैलाव

रोग मृदा जनित और बाह्य रूप से बीज जनित है। फफूंद के टीलियोबीजाणु (टेलूटोस्पोर्स) मिट्टी पर गिर जाते हैं और उसमें उत्तरजीवी रहते हैं, या वे बीजों के तुष अथवा आंशिक रूप से संक्रमित अनाज पर मिल सकते हैं। टीलियोबीजाणु दो या अधिक वर्षों के लिए जीवित रह सकते हैं। बाली निकलने के समय 25–30 डिग्री सेल्सियस की एक तापमान सीमा और उच्च आपेक्षिक आर्द्रता 85 प्रतिशत या रुक–रुककर हल्की वर्षा संक्रमण के लिए अनुकूल होती है। मिट्टी में टीलियोबीजाणु पर बने स्पोरिडिया बाली में पुष्पन (एंथेसिस) के समय फूलों के खुलने पर हवा से उड़ाकर पहुंचाया जाता है। इस प्रकार रोग का प्राथमिक संक्रमण होता है। नत्रजन उर्वरकों की उच्च खुराक, विशेष रूप से विकास के देर के चरण में, पौधे को रोग के आक्रमण के लिए अतिसंवेदनशील बनाती है। धान की जल्दी पकने वाली किस्में इस रोग के प्रति अधिक संवेदनशील होती हैं।

चित्र 11(अ): खड़ी फसल में धान का बंट रोग

चित्र 11(ब): स्वस्थ एवं बन्ट रोग ग्रसित धान के बीज

रोग की रोकथाम

- इस बीमारी की रोकथाम के लिए के लिए की खेत स्वच्छता का ध्यान रखना चाहिए।
- रोगजनक के निवेशद्रव्य को नष्ट करने में फसल–चक्र सहायक होता है।
- बुआई हेतू संस्तुत रोग प्रतिरोधी किस्मों का उपयोग किया जाना चाहिए।
- फसल पर 0.1 प्रतिशत प्रोपिकोनाजॉल 25 प्रतिशत ईसी या 0.3 प्रतिशत कॉपर ऑक्सीक्लोराइड 50 प्रतिशत डब्ल्यूपी का पर्णीय छिड़काव रोग को आगे फैलने से रोकने में सहायक होता हैं।

बाजरे का अर्गट रोग

यह रोग *क्लेवीसेप्स परप्यूरिया* नामक कवक से होता है।

रोग लक्षण

यह रोग बालियों के केवल कुछ ही दानों पर दिखाई देता है। सबसे पहले अर्गट का रोगजनक कवक पुष्पक (फ्लोरेट्स) को संक्रमित करता है और अंडाशय में विकसित हो जाता है। यह रोगजनक शुरू में प्रचुर क्रीमी, गुलाबी या लाल रंग का मीठा चिपचिपा शहद–जैसे तरल पदार्थ (हनीड्यू) का उत्पादन करता है। इसके बाद काले रंग की कठोर संरचनाएं, स्केलेरोशिया संक्रमित पुष्पक से विकसित होती हैं। पहले यें गहरे रंग की होती है और बाद में पूरी तरह से काली हो जाती है।

रोग का विकास एवं फैलाव

पुष्पन के समय यह रोगजनक ठण्डे एवं नम वातावरण की उपस्थिति में पर्याप्त बढ़वार करता है जिससे रोग अधिक व्यापक रुप धारण कर लेता है। बीज में अर्गट स्कलेरोशिया का मिश्रण रोग को बढ़ावा देता है।

रोग की रोकथाम

- उपलब्ध प्रतिरोधी किस्मों की बुवाई करें।
- संक्रमित पुष्पगुच्छों से बीज ना लें। 20 प्रतिशत नमक के घोल (ब्राइन सॉलूशन) में बीज में से स्केलेरोशिया अलग कर देना चाहिये। इसके बाद बीज को 4–5 बार साफ पानी से धोकर सुखाने के बाद ही बीज की बुवाई करनी चाहिए।
- रोगी पुष्पगुच्छों को निकालकर नष्ट कर देना चाहिये। गहरी जुताई करनी चाहिये।
- कम से कम तीन–वर्षीय फसल–चक्र अपनाएं। गैर–अनाज के साथ प्रमुखतः दालों के साथ फसल–चक्र अपनाएं।
- पुष्पन से पूर्व 0.1 प्रतिशत प्रोपिकॉनाजोल या टेबूकॉनाजोल का छिड़काव करने से रोग प्रसार में कमी आती है।

बाजरे की मृदुरोमिल आसिता या हरित बाली रोग

रोग लक्षण

दोनों सर्वांगी और स्थानीय संक्रमण होते हैं। मिट्टी जनित बीजाणु युवा पौध में सर्वांगी संक्रमण करते हैं। रोग के विशिष्ट लक्षण पत्तियों पर पीलापन, हरिमाहीनता, और आधार से सिरे तक चौड़ी धारियाँ बनना है। संक्रमित हरिमाहीन पत्ती क्षेत्रों की निचली सतह पर प्रचुर मात्रा

चित्र 12: बाजरे का हरित बाली रोग

चित्र 13: बाजरे का अर्गट रोग

तालिका 1: प्रमुख धान्य फसलों के कुछ महत्वपूर्ण बीज जनित रोग व उनके विभिन्न रोगजनक

क्र.सं.	धान्य फसल	रोग का नाम	रोगजनक
1	गेहूँ	आल्टर्नेरिआ लीफ झुलसा	*आल्टर्नेरिआ ट्रिटिसिना*
	(*ट्रिटिकम ऐस्टिवम*)	अर्गट	*क्लैविसेप्स परप्युरिया*
		जड़ सड़न, अंकुर झुलसा, स्पॉट ब्लॉच	*बाइपोलैरिस सोरोकिनियाना*
		हेड ब्लाइट, स्कैब	*फ्यूजेरियम ग्रैमिनिएरम*
		ग्लूम ब्लॉच, पत्ती धब्बा	*स्टैग्नोस्पोरा नोडोरम*
		पीला पत्ती धब्बा	*ड्रेसलैरा ट्रिटीसी रेपेंटिस*
		झौंका, बदरा या ब्लास्ट रोग	*पाइरीकुलेरिया ग्रैसिया*
		करनाल बंट	*टिलेसिया इंडिका*
		पहाड़ी बंट (हिल बंट)	*टिलेसिया ट्रिटीसी, टिलेसिया लैविस*
		ड्वार्फ बंट	*टिलेसिया कोंट्रोवर्सा*
		अनावृत कंड (लूज स्मट)	*अस्टीलैगो सेगेटम प्रजाति ट्रिटीसी*
		ध्वज कंड (फ्लैग स्मट)	*यूरोसिसटिस एग्रोपाइरी*
		टुंडु, पीत बाली सड़न	*रैथायीबैक्टर ट्रिटिसी*
		ब्लैक चैफ	*जैंथोमोनास ट्रांसलुसेंस पैथोवार ट्रांसलुसेंस*
		ईयर कॉकल	*एंगुइना ट्रिटीसी*
2	धान	पत्ती धब्बा, गुलाबी कर्नल, स्टैक बर्न	*आल्टर्नेरिआ पैडविकी*
	(*ओराइजा सेटाइवा*)	काला शीथ रॉट, अंकुर झुलसा	*बाइपोलैरिस ओराइजी*
		काला दाना (ब्लैक कर्नल)	*कर्वुलैरिया प्रजाति*
		बकानी रोग, पद गलन	*फ्यूजेरियम मोनिलिफोर्मी*
		झौंका या बदरा, गर्दन सड़न	*पाइरीकुलेरिया ग्रैसिया*
		धान का बंट (कर्नल स्मट)	*टिलैशिया बर्केलियाना*
		शीथ गलन (शीथ रॉट)	*सैरोक्लोडियम ओराइजी*
		हल्दी गाँठ (फाल्स स्मट)	*अस्टीलैगिनओइडा वाइरेंस*
		उड़बट्टा रोग	*इफेलिस ओराइजी*
		जीवाणुज दाना सड़न	*बुर्कहोल्डेरिआ ग्लूमी*
		जीवाणुज पत्ती झुलसा	*जैंथोमोनास ओराइजी पैथोवार ओराइजी*
		जीवाणुज पत्ती धारी रोग	*जैंथोमोनास ओराइजी पैथोवार ओराइजीकोला*
		सफेद चोटी (व्हाइट टिप)	*अफेलेंकोइड्स बेसेयी*
3	जौ	अर्गट	*क्लेविसेप्स परप्यूरिया*
	(*होर्डियम वल्गेअर*)	अंकुर झुलसा, जड़ सड़न	*बाइपोलैरिस सोरोकिनिआना*
		स्कैब, अंकुर झुलसा	*फ्यूजेरियम ग्रैमिनेरियम*
		ग्लूम ब्लॉच	*स्टैगनोस्पोरा नोडोरम*
		आवृत कंड	*अस्टिलैगो होर्डा*
		अनावृत कंड	*अस्टिलैगो सेगेटम प्रजाति नुडा*
		कर्नल झुलसा	*स्यूडोमोनास सिलरजिऐ पैथोवार सिलरजिऐ*
		पत्ती झुलसा	*जैंथोमोनास ट्रांसलुसेंस पैथोवार ट्रांसलुसेंस*
		पर्ण झुलसा	*बाइपोलैरिस विक्टोरिआ*
		स्कैब	*फ्यूजेरियम ग्रैमिनिएरम*
4	जई	कर्नल झुलसा, पत्ती ब्लॉच	*बाइपोलैरिस सोरोकिनियाना*
	(*एविना सेटाइवा*)	पाद गलन, पद झुलसा	*स्टैग्नोस्पोरा ऐविनी*
		पर्ण धब्बा	*ड्रेस्लैरा ऐविनी*
		अनावृत कंड (लूज स्मट)	*अस्टिलैगो सेगेटम प्रजाति ऐविनी*

5	बाजरा (*पेनिसेटम ग्लाउकम*)	अर्गट	*क्लैविसेप्स फ्यूजिफोर्मिस*
		डाउनी मिल्ड्यू, हरित बाली रोग	*स्कैरोलोस्पोरा ग्रैमिनिकोला*
		कंड (स्मट)	*टोलिपोस्पोरियम पेनिसिलैरीआई*
6	ज्वार (*सोर्घम बाइकलर*)	पत्ती धब्बा	*कर्वुलेरिया ल्युनाटा*
		लाल पत्ती, तना सड़न	*कोलेटोट्राइकम ग्रैमिनिकोला*
		बीज सड़न, तना सड़न	*फ्यूजेरियम मोनिलीफोर्मी*
		मृदुरोमिल आसिता	*पेरोनोस्क्लेरोस्पोरा सोर्घाई*
		अर्गट	*क्लैवीसेप्स सोर्घाई*
		अनावृत कंड (लूज स्मट)	*स्पोरीसोरियम क्रुएन्टम*
		शीर्ष कंड (हेड स्मट)	*स्फैसेलोथेका रेइलियाना*
		दाना कंड (ग्रेन स्मट)	*स्पोरीसोरियम सोर्घाई*
		लम्बा कंड (लौंग स्मट)	*टोलिपोस्पोरियम इहरेन्बर्ग*

में एक भूरी–सफेद कोमल कवक वृद्धि विकसित होती है जिससे अलैंगिक बीजाणुजनन होता हैं। इसमें विकसित बीजाणुधानीधर आगे स्थानीय संक्रमण उत्पन्न कर सकते हैं।

गम्भीर संक्रमण में इन्टरनोड्स एवं टिलर के जरूरत से ज्यादा छोटा रह जाने की वजह से रोग ग्रस्त पौधे बौने रह जाते हैं और वे पुष्पगुच्छों का उत्पादन नहीं करते। हरे पुष्प भागों के पूर्णतः या आंशिक रूप से पत्तीदार संरचनाओं में परिवर्तन के परिणामस्वरूप हरित बाली लक्षण बनते हैं।

रोग का विकास एवं फैलाव

यह मृदा जनित व बाह्य बीज जनित रोग है। इसका रोगकारक *स्क्लेरोस्पोरा ग्रैमिनिकोला* नामक कवक है। ओस वाली रातों तथा 20 डिग्री सेल्सियस के आस–पास तापमान इस कवक के चल बीजाणुओं के बनने एवं बाहर निकलने के लिए अनुकूल होते हैं। निषिक्तांड अंकुरण के लिए कम नमी तथा 20 डिग्री सेल्सियस तापमान अनुकूल होता है। संक्रमण के लिए शुष्क मृदा एवं 20 डिग्री सेल्सियस तापक्रम अनुकूल वातावरण बनाते हैं।

रोग की रोकथाम

- प्रमाणित और स्वस्थ बीज ही बोना चाहिये।
- रोग प्रतिरोधी किस्मों को ही बोना चाहिये।
- रोगी पौधों को नष्ट कर देना चाहिये और फसल चक्र का प्रयोग करना चाहिये।
- मेटालैक्सिल या कैप्टान (2.0 ग्राम प्रति किग्रा बीज) के साथ बीज उपचार करें और बूट पत्ती चरण में जिनेब 75 प्रतिशत या कार्बेन्डाजिम अथवा मैन्कोजेब 64 प्रतिशत+मेटालैक्सिल–एम 4 प्रतिशत युक्त कवकनाशी का 2–2.5 ग्राम प्रति लीटर जल की दर से फसल पर छिड़काव करें।

सारांश : उच्च गुणवत्ता वाला स्वस्थ रोग रहित बीज प्राथमिक स्तर के रोग प्रबंधन के लिए अति आवश्यक है। अच्छे फसल उत्पादन में सबसे महत्वपूर्ण व सबसे पहली शर्त गुणवत्ता युक्त रोग रहित बीज की उपलब्धता है। बीज जनित रोग तीन प्रकार के होते हैं: अंतः बीज जनित रोग, बाह्य बीज जनित रोग एवं अपमिश्रण; और रोग प्रबंधन की रणनीति रोगजनक के निवेशद्रव्य की बीज पर उपस्थिति के स्थान के ऊपर निर्भर करती है। बीज जनित रोगों के द्वारा किए गये प्रत्यक्ष नुकसान उपज में कमी, अंकुरण क्षति, ओज में कमी और पादप रोगों की स्थापना, बीज के सिकुड़ने, बदरंग होने एवं बीज के अंदर जैव–रासायनिक परिवर्तन के रूप में नापा जा सकता है। इन बीज जनित रोगों ने विशेषतः अनाज वाली फसलों में अलग–अलग समय अन्तरालों के अन्दर अनेकों महामारी के रूप में समाज को प्रभावित किया है। परन्तु साथ ही साथ आधुनिक कृषि में नई तकनीकों के अंगीकरण व रोग प्रबंधन के नये नये बेहतर विकल्पों के उपलब्ध होने के कारण इन फसल महामारियों की घटना में काफी कमी आई है।

गेहूँ का पीला रतुआ रोग के लक्षण, रोग प्रसार व नियंत्रण करने के उपाय

[1]आशीष ओझा, [1]भूदेव सिंह त्यागी, [1]ज्ञानेद्र सिंह, [2]चन्द्र मौली बग्गा,
[1]सोनू सिंह यादव, [1]सुमित संधू एवं [1]गीता संधू
[1]भाकृअनुप–भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान, करनाल
[2]आनुवंशिकी और पादप प्रजनन विभाग, महात्मा ज्योति राव फूले विश्वविद्यालय, जयपुर

भारत की सबसे मुख्य खाद्यान्न फसलों में गेहूँ का प्रथम स्थान है। वर्ष 2018–19 में अब तक का भारत का सर्वाधिक रिकॉर्ड उत्पादन 101.2 मिलियन टन उत्पादन हुआ है। जितनी तेज़ी से देश की जनसंख्या बढ़ रही है, उसको देखते हुए लगातार गेहूँ की पैदावार को साल–दर–साल बढ़ाने की जरुरत होगी। उत्पादन बढ़ाने के साथ–साथ गेहूँ की पैदावार को विभिन्न प्रकार के जैविक और अजैविक तनाव से बचाने की जरुरत है। मुख्य रूप से कवक, जीवाणु, विषाणु, व अन्य जैविक घटक गेहूँ की पैदावार को बहुत ज्यादा नुकसान पहुंचाते हैं। गेहूँ की बिमारियों का सबसे महत्वपूर्ण समूह रतुआ हैं। धारीदार रतुआ (*पक्सीनिया स्ट्राइफोर्मिस*) गेहूँ की एक महत्वपूर्ण बीमारी है। उत्तर भारत और गंगा तटीय मैदानी इलाकों में धारीदार रतुआ एक गंभीर बीमारी है और यह 2018–19 से देश के पूर्वी व दक्षिणी हिस्से में भी अधिक फैल गयी है। हर साल दुनिया भर में 5 बिलियन डॉलर से ज्यादा का अनाज रतुआ की बिमारियों (पत्ती रतुआ, तना रतुआ और धारीदार रतुआ) से नष्ट हो जाता है। धारीदार रतुआ, तीन प्रकार के रतुआ में से एक है जो गेहूँ पर हमला करती है। इसके आलावा दो और रतुआ (तना रतुआ और पत्ती रतुआ) गेहूँ को संक्रमित करती हैं। रतुआ को उनकी विशेषता से अपना नाम प्राप्त हैं ये धूल जैसे पीले, नारंगी या भूरे रंग के जैसा दिखते हैं। आमतौर पर इनके रोगजनक गेहूँ तक ही सीमित रहते हैं लेकिन इनके अन्य अनाज पर और कुछ हद तक घास पर भी हो सकते हैं। पीला धारीदार रतुआ गेहूँ पर साल भर जीवित रहता है। कुछ अन्य अनाज और घास इसके अस्तित्व में एक छोटी भूमिका निभा सकते हैं। हवा के द्वारा यह लंबी दूरी तक फैलती है। पीला रतुआ के विकास की दर नमी और तापमान पर निर्भर करती है। यह गेहूँ उगाने वाले क्षेत्रों में शरद ऋतु और वसंत ऋतु में सबसे अधिक सक्रिय होती है। पीला रतुआ में जटिल जीवन–चक्र होता है जिसमें वैकल्पिक पोषक और कई बीजाणु चरण शामिल होते हैं।

रोगजनक और पोषक

गेहूँ का धारीदार रतुआ बेसिडिओमाइसीटे कवक *पक्सीनिया स्ट्राइफोर्मिस* के कारण होती है। गेहूँ का रतुआ, कवक वंश की *पक्सीनिया* की तीन प्रजातियों के कारण होते हैं।

1. *स्ट्राइफोर्मिस* : द्वारा स्ट्राइप धारीदार रतुआ 2. *पक्सीनिया ट्रिटीसिना* द्वारा पत्ती रतुआ और *पक्सीनिया ग्रामिनिस* द्वारा तना रतुआ। यह एक परजीवी है। कवक 20 से 30 माइक्रो मीटर व्यास तक नारंगी से चमकीले पीले रंग यूरिडिनियो बीजाणुओं का उत्पादन करता है। इन बीजाणुओं में मोटी और खुरदरी भित्तियाँ होती हैं और पौधे पर सोराई या पस्चुल्स में निहित होती हैं। बीजाणु उत्पादन उच्च आर्द्रता और विकास के अन्य चरणों के समान तापमान पर सर्वाधिक होता है। रोगकारक गेहूँ में शीतल जलवायु में निष्क्रिय कवकजाल के रूप में पूरे साल जीवित रहता है।

लक्षण

पीला रतुआ, या धारीदार रतुआ, प्रत्येक पत्ती के फलक के स्थानों के साथ समानांतर रूप से उत्पादित पीले रंग की धारियों की उपस्थिति से इसका नाम पीला रतुआ रखा गया है। धारीदार या पीला रतुआ का पहला संकेत गेहूँ की पत्तियों पर पीले रंग की धारियाँ (प्री–पाश्च्यूल्स) का दिखाई देना है। गेहूँ के पीले रतुआ के प्राथमिक पोषक *ट्रिटिकम एस्टीवियम* (ब्रेड गेहूँ), ट्रिटिकम टर्गिडम (ड्यूरम गेहूँ), ट्रिटिकेल और कुछ *हॉर्डियम वल्गेर* (जौ) हैं। छोटे चमकीले पीले रंग के पाश्च्यूल्स के बाद, लम्बी युरेडिल पाश्यूल्स, पत्तियों, लीफ शीथ, ग्लूम्स व तुश पर विशिष्ट पंक्तियों में व्यवस्थित होते है। परिपक्व पाश्च्यूल्स फटकर खुल जाते हैं और पीले एवं नारंगी युरिडीनियो बीजाणु पतियों पर बिखर जाते हैं। कुछ किस्मों में, पत्तियों पर लंबी, संकीर्ण पीली धारियां विकसित हो जाती है। परिपक्व पौधे पर संक्रमित ऊतक भूरे और सूखे हो सकते हैं। अनाज के रतुआ कवक में दीर्धवृत्तीय, विषम जीवन चक्र होते हैं, जिनमें पांच बीजाणु चरण और दो आनुवंशिक रूप से असंबंधित पोषक शामिल होते हैं। शुरुआती गंभीर संक्रमण के परिणामस्वरूप पौधे बौने रह सकते हैं।

रोग का प्रसार एवं अनुकूल परिस्थितियाँ

पीला रतुआ अधिक ऊँचाई वाले क्षेत्र और ठंडी जलवायु में सबसे जल्दी संकमण करता है। रात के समय तापमान 60 डिग्री फारेनहाइट से कम होने पर रोगज़नक़ सबसे तेज़ व प्रभावी होता है। धारीदार या पीला रतुआ अन्य रतुओं (भूरा व

तना) की तुलना में कम तापमान पर गेहूँ पर जल्द विकसित हो जाती है। इष्टतम यूरेडियल पस्च्यूल्स अंकुरण 7 डिग्री से. से 15 डिग्री से. पर होता है। 10 डिग्री से. से 16 डिग्री से. के बीच संक्रमण और बीमारी का विकास सबसे तेजी से होता है। पीले रतुआ को दूर तक फ़ैलाने के लिए हवा मुख्य कारक है। पत्तियों की ऊपरी सतह पर पक्च्युल्स में बड़ी संख्या में बीजाणु पैदा होते हैं। एक बार बीजाणु हवा में उड़ जाते हैं उनका प्रसार शुरु हो जाता है। युरिडीनियो बीजाणु हवा के झोंको के माध्यम से स्वस्थ पौधों/फसल में फैलते हैं जहां वे नए संक्रमण को शुरू कर देते हैं। ज्यादा ओस या रुक–रुक कर हो रही बारिश बीमारी को फैलने से बचा सकती है। जब तापमान लगातार बढ़ता जाये और 24 डिग्री से. से अधिक हो जाए तो संक्रमण रुक जाता है। हालांकि, वे इतनी अधिक संख्या में उत्पन्न होते हैं कि कुछ फिर भी गेहूँ के पौधों पर जीवित रह जाते हैं और संक्रमण शुरु कर देते हैं। भारत में, सर्दियों में गेहूँ पर धारीदार या पीला रतुआ देर से सर्दियों अर्थात् जनवरी से मार्च में आना शुरु होता है। (चित्र 1 एवं 2)। सर्दियों में उच्च आर्द्रता के दौरान, अधिकांश बीजाणु छोटे गुच्छों के रूप में होते हैं एवं ये अपेक्षाकृत भारी होते हैं और हवा से जल्दी गिर जाते हैं। इसलिए उनका प्रसार ज्यादातर बहुत कम दूरी पर होता है। देर से सर्दियों और शुरुआती बसंत में फसलों पर बहुत ज्यादा दूरी तक संक्रमण होता है।

नियंत्रण

खेत निगरानी

खेत निगरानी करने से पीले रतुआ के लक्षणों की पहचान की जा सकती है और बीमारी के लिए अनुकूल पर्यावरण की स्थिति का अनुमान लगाया जा सकता है जिससे सही समय पर रतुआ का नियंत्रण संभव हो सकता है। सर्दियों के मौसम में समय–समय पर और जल्दी खेतों की जाँच करते रहें। खेत निगरानी करते हुए पौधे के सभी हिस्सों पर लक्षणों को देखे एवं हाथ लेंस का उपयोग करें। पूरे फसल क्षेत्र में कई पौधों की जाँच करें। पत्तियों के ब्लेड पर अपनी उंगलियों को रगड़ें और पीले पाउडर अवशेषों की तलाश करें अगर पत्तियाँ संक्रमित होगी तो पीला, नारंगी रंग आपकी उंगलियों पर लग जायेगा (चित्र–3)। फसल क्षेत्र में बीमारी के लक्षण की पहचान करने के लिए यही काफी नहीं है कई बार संक्रमण की पहचान के लिए पौधों के नमूने की आवश्यकता भी हो सकती है।

आनुवंशिक नियंत्रण

गेहूँ के पीला रतुआ द्वारा उपज नुकसान को रोकने करने के लिए प्रतिरोधी किस्मों का चयन/उपयोग सबसे अच्छा तरीका है (तालिका–01)। पीले रतुआ के लिए दो प्रकार के आनुवंशिक प्रतिरोध ज्ञात हैं: 1) अंकुर प्रतिरोध और 2)

तालिका 1: भारत के विभिन्न कृषि जलवायु क्षेत्रों के लिए पिछले 5 वर्षों में विमोचन पीला रतुआ रोधी किस्में

किस्मों के नाम	कृषि जलवायु क्षेत्र	उत्पादन स्थिति	(उपज कु./है.)	प्रतिरोधकता स्तर
पीबीडब्ल्यू 752	उत्तर पश्चिमी मैदानी क्षेत्र	देर से बुवाई/सिंचित	49.1	प्रतिरोधी
पीबीडब्ल्यू 757	उत्तर पश्चिमी मैदानी क्षेत्र	बहुत देर से बुवाई/सिंचित	36.7	प्रतिरोधी
एचडी 3226	उत्तर पश्चिमी मैदानी क्षेत्र	समय से बुवाई/सिंचित	57.5	उच्च स्तर
एचडी 3237	उत्तर पश्चिमी मैदानी क्षेत्र	समय से बुवाई/प्रतिबंधित सिंचाई	48.4	उच्च स्तर
एचआई 1620	उत्तर पश्चिमी मैदानी क्षेत्र	समय से बुवाई/सीमित सिंचाई	49.1	उच्च स्तर
डीबीडब्ल्यू 187	उत्तर पूर्वी मैदानी क्षेत्र	समय से बुवाई/सिंचित	48.8	उच्च स्तर
एचएस 562	उत्तरी पर्वतीय क्षेत्र	समय से बुवाई/वर्षा आधारित	52.7	उच्च स्तर
एचडी 3171	उत्तर पूर्वी मैदानी क्षेत्र	समय से बुवाई/सीमित सिंचाई	28.0	उच्च स्तर
डब्ल्यूबी 02	उत्तर पश्चिमी मैदानी क्षेत्र	समय से बुवाई/सिंचित	51.6	उच्च स्तर
पीबीडब्ल्यू 723	उत्तर पश्चिमी मैदानी क्षेत्र	समय से बुवाई/सिंचित	49.2	उच्च स्तर
पीबीडब्ल्यू 677	उत्तर पश्चिमी मैदानी क्षेत्र	समय से बुवाई/सिंचित	59.9	उच्च स्तर
पीबीडब्ल्यू 725	उत्तर पश्चिमी मैदानी क्षेत्र	समय से बुवाई/सिंचित	61.7	उच्च स्तर
डीबीडब्ल्यू 173	उत्तर पश्चिमी मैदानी क्षेत्र	देर से बुवाई/ सिंचित	47.2	उच्च स्तर
एचआई 1612	उत्तर पश्चिमी मैदानी क्षेत्र	समय से बुवाई/सीमित सिंचाई	37.6	उच्च स्तर
डीबीडब्ल्यू 46	उत्तर पूर्वी मैदानी क्षेत्र	समय से बुवाई/सिंचित	64.5	प्रतिरोधी
डब्ल्यूएच 1105	उत्तर पश्चिमी मैदानी क्षेत्र	समय से बुवाई/सिंचित	51.5	उच्च स्तर
पीबीडब्ल्यू 644	उत्तर पश्चिमी मैदानी क्षेत्र	समय से बुवाई/सीमित सिंचाई	31.4	उच्च स्तर
डीपीडब्ल्यू 621–50	उत्तर पश्चिमी मैदानी क्षेत्र	समय से बुवाई/सिंचित	51.5	उच्च स्तर
एचडी 3059	उत्तर पूर्वी मैदानी क्षेत्र	समय से बुवाई/सिंचित	39.5	उच्च स्तर
एचडी 3086	उत्तर पश्चिमी मैदानी क्षेत्र	समय से बुवाई/सिंचित	54.5	उच्च स्तर

चित्र 1 व 2: गेहूँ की पत्ती पर पीले रतुआ रोग के लक्षण

चित्र 3: गेहूँ की रतुआ रोधी व रतुआ संक्रमित प्रजातियों का खेत में प्रदर्शन

वयस्क पौधे प्रतिरोध। अंकुर प्रतिरोध, जो एक जीन द्वारा नियंत्रित होता है, अत्यधिक प्रभावी होता है और पूरे गेहूँ जीवन चक्र में प्रभावी रहता है। *पक्सीनिया स्ट्राइफोर्मिस* एक अत्यधिक परिवर्तनशील रोगज़नक़ है और इसके नए पैथोटाइप लगातार खोजे जा रहे हैं। पीले रतुआ के लिए प्रतिरोधी जीन को वाई आर कहते है। वयस्क पौधे का प्रतिरोध पौधों के परिपक्व होने के साथ–साथ विकसित होता है। जीन की अभिव्यक्ति विभिन्न विकास चरणों में पौधों के प्रारंभिक उद्भव कल्ले बनाने से लेकर बूट तक हो सकती है, जो की किस्मों के ऊपर निर्भर करती है। चूंकि कवक की नई प्रभेद विकसित हो सकती हैं, इसलिए किसी दी गई गेहूँ की प्रजाति की संवेदनशीलता को जानना महत्वपूर्ण है।

रासायनिक नियंत्रण

कवकनाशी पौधों की रक्षा की पहली जरुरत है जब उनको अतिसंवेदनशील खेतों में उगाया जाता है एवं जब प्रतिरोधी किस्में रोग कारको की नई प्रभेदों के आगे अपनी प्रतिरोधक क्षमता खो देती हैं। रासायनिक हस्तक्षेप पीला रतुआ का प्रबंधन करने के लिए तेजी से प्रतिक्रिया करके एक व्यवहारिक समाधान प्रदान करता हैं। उच्च उत्पादकता वाले क्षेत्रों में किसान कम उपज वाले क्षेत्रों में छोटे खेतों की तुलना में अधिक बार कवकनाशी का उपयोग करते हैं। हालाँकि, विकासशील देशों में जहाँ गेहूँ राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा का एक प्रमुख स्रोत है फफूंदनाशक का प्रयोग अधिक से अधिक आम हो गया है। वर्तमान में, नियंत्रण के लिए कई फफूंदनाशी संस्तुत किए जाते हैं, जिसमें टेबुकोनाजोल, क्वाड्रिसो, प्रोपीकोनाज़ोल + ट्राइफ़्लोक्सिस्ट्रोबिन, स्ट्रोबिल्यूरिन, एज़ोक्सिस्ट्रोबिन + प्रोपिकोनाजाल, फॉलिकुर, आदि शामिल हैं। हालांकि पीला रतुआ के नियंत्रण में फफूंदनाशक प्रभावकारी है, लेकिन फफूंदनाशकों के इस्तेमाल से पर्यावरण और मानव स्वास्थ्य पर विपरीत प्रभाव पड़ता है। इसके अलावा, कवकनाशी के निरंतर उपयोग से रोगज़नक़ के संभावित कवकनाशी के प्रति प्रतिरोधक होने का खतरा बना रहता है। उपरोक्त सभी नियंत्रण करने की तकनीकों व सावधानियाँ अपनाने से हम गेहूँ की फसल को पीले रतुआ से बचा सकते हैं।

विभिन्न कृषि उद्यमों में उद्यमशीलता की सफल गाथाएं

राजा यादव, खुशबू राज एवं नेहा सिंह
भाकृअनुप–राष्ट्रीय डेरी अनुसंधान संस्थान, करनाल

परिचय

भारत एक कृषि प्रधान देश है। जिसकी लगभग 60–65 प्रतिशत जनसंख्या प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप से जीवन निर्वाह के लिए कृषि पर आधारित है। परन्तु फसल उत्पादन की दिनों–दिन बढ़ती लागते, केवल 6–8 प्रतिशत देश के किसानों को न्यूनतम समर्थन मूल्य (एम.एस.पी.) का मिल पाना इसके अतिरिक्त जैसे वातावरण की प्रतिकूल परिस्थितियों जैसे सूखा–बाढ़, बढ़ता हुआ तापमान, मानसून की देरी इत्यादि से होता हुआ भारी नुकसान हमारे देश के किसानों के लिए चिंता एवं चुनौती का विषय बन चुका है। जिसके फलस्वरूप किसानों (मुख्य रूप से युवा–वर्ग) की कृषि व्यवसाय में अरूचि स्वाभाविक तौर पर देखी जा सकती है। बहुत से किसान भाई गाँवों से शहरों की तरफ रोजगार की तलाश में पलायन करते जा रहें है, जिसके कारण शहरी प्रशासन पर बढ़ती हुई जनसंख्या का दवाब महसूस किया जा सकता है।

इसलिए आज हमारे किसान भाईयों को जरूरत है कि, कृषि व्यवसाय को उद्यमशीलता के नये अवसर उपलब्ध करायें जायें जिससे कि कृषि व्यवसाय को जोखिम से मुक्त एवं सतत् आमदनी का स्रोत बनाया जा सकें।

कृषि उद्यमशीलता के क्षेत्र में कार्यरत विभिन्न संस्थान

विभिन्न कृषि विज्ञान केन्द्र (के.वी.के.), जिला स्तर पर कार्यरत कृषि प्रौद्योगिकी एवं प्रबंधन ऐजेंसी (आत्मा), विभिन्न संस्थानों में स्थित व्यापार योजना एवं विकास इकाईयाँ (वीपीडी यूनिट्स) एवं भारत सरकार द्वारा क्रियान्वित परियोजनाएं जैसे डेयरी उद्यमशीलता विकास परियोजना तथा भारत सरकार के सूक्ष्म लघु एवं मध्यम उद्यम मंत्रालय द्वारा संचालित विभिन्न योजनाएं एवं कार्यक्रम।

कृषि उद्यमशीलता विकास में विभिन्न तकनीकें

यदि हम कृषि क्षेत्र में तकनीकों की बात करें तो यहाँ पर पारम्परिक कृषि पद्धति के अलावा बहुत सारी ऐसी तकनीकें उपलब्ध है जिसको किसान भाई अपनाकर कृषि व्यवसाय को लाभप्रद एवं कम जोखिम वाला बना सकते हैं। इसमें से कुछ निम्न प्रकार हैं।

दुग्ध प्रसंस्करण

यह तकनीक विशेषकर दुधारू पशुपालकों के लिए है। इसमें किसान भाई सीधा दूध बाजार में न बेचकर उससे विभिन्न दुग्ध उत्पाद जैसे पनीर, दही, घी, खोया, लस्सी एवं मिठाईयाँ बनाकर बेचे तो कई गुना अधिक लाभ कमा सकते हैं।

प्रस्तुत है, एन.डी.आर.आई., कृषि विज्ञान केन्द्र, करनाल के प्रशिक्षुक श्री पुष्पेन्द्र चौहान का वर्णनः श्री चौहान ग्राम कलायत, तहसील कलायत, जिला कैथल के निवासी हैं। यह भी अन्य किसान भाई की तरह सामान्य पशुपालक थे। उन्होंने यह कार्य लगभग सात वर्षों तक किया परन्तु पशुओं में आने वाली बिमारियाँ, पशुओं के रख–रखाव एवं चारा–दाना का बढ़ता हुआ खर्च इनकी समस्याओं का कारण बनता जा रहा था। जब वह बहुत अधिक कठिनाईयों में घिर गये तब उन्होंने लगभग एक वर्ष तक विभिन्न कृषि उद्यमों का गहराई से अध्ययन किया। फलस्वरूप दुग्ध प्रंसस्करण इकाई स्थपित करने का निर्णय लिया। शुरूआत उन्होंने लगभग 100 लीटर दूध से कार्य प्रारम्भ किया जो आज लगभग 5000 लीटर दूध का प्रसंस्करण करके पनीर एवं घी तैयार कर रहे हैं एवं वह दोनों दुग्ध उत्पादों को थोक भाव में बेच रहे हैं। साथ ही एक मिष्ठान भंडार भी चलाते हैं। वर्तमान में उनकी शुद्ध आय 35,000 रूपये प्रतिदिन है और लगभग आठ लागों को रोजगार उपलब्ध करा रहे हैं।

मछली पालन

यह तकनीक उन सभी किसान भाईयों के लिए अधिक

उपयुक्त है। जिनके पास भरपूर मात्रा में 12 महीने पानी उपलब्ध रहता है। इसमें कृत्रिम रूप से तालाब बनाकर अथवा प्राकृतिक तालाब (यदि उपलब्ध हो तो) में मछलियों के बीज को तालाब में छोड़कर विकसित किया जा सकता है। मछलियाँ लगभग 8–10 महीनों में तैयार होकर बाजार में बेचने लायक हो जाती है।

एनडीआरआई, कृषि विज्ञान केन्द्र, करनाल के प्रशिक्षुक श्री ऋशिपाल सिंह का वर्णनः श्री ऋशिपाल सिंह ग्राम सग्गा, तहसील नीलोखेड़ी, जिला करनाल के निवासी है। श्री सिंह लगभग 28 वर्ष पहले बीए द्वितीय वर्ष की परीक्षा पास करके एक छोटी सी सरकारी नौकरी की तलाश में भटकते रहे। नौकरी की तलाश के पीछे मुख्य एक कारण घर परिवार में जमीन का न होना भी था। उसी दौरान उनके कुछ मित्र एक संस्था द्वारा सहायता प्राप्त कर मछलीपालन विभाग में कार्य कर रहे थे। उन्हीं मित्रों से प्ररेणा लेकर अपनी जीविका उपार्जन के लिए श्री सिंह ने मछलीपालन का कार्य पंचायती तालाब किराये पर लेकर छोटे रूप में शुरू किया जैसे–जैसे इनकी आमदनी बढ़ती गई वैसे–वैसे ये तालाब की संख्या भी बढ़ाते गये। आज यें लगभग 30–32 एकड़ के पंचायती तालाब किराये पर लेकर मछलीपालन का कार्य सफलतापूर्वक कर रहे हैं। इनका सफल अनुभव कहता है कि मछलीपालन एक सरल एवं कम जोखिम वाला व्यवसाय है। जिसे किसान भाई आसानी से अपना सकते हैं। परंतु इसमें कुछ मौसम संबधी बातों का ज्ञान होना जरूरी है। जैसे अधिक समय तक बादल छाये रहने की स्थिति में तालाब में ऑक्सीजन की कमी स्वभाविक है। जिससे बचने के लिए प्रायः कुछ दवाईयों का भी प्रयोग किया जा सकता है। वर्तमान में इनकी शुद्व आय लगभग 30–35 लाख रूपये प्रतिवर्ष है और लगभग 8–10 लोगों को रोजगार उपलबध करा रहे हैं।

मधुमक्खी पालन

मधुमक्खी पालन एक ऐसा व्यवसाय है जिससें मधुमक्खियाँ प्रत्यक्ष एवं परोक्ष दोनों रूप में किसान को लाभ पहुँचाती हैं। प्रत्यक्ष रूप से तात्पर्य है कि हम मधुमक्खी से प्राप्त शहद एवं मोम बेचकर लाभ कमा सकते हैं एवं परोक्ष रूप से मधुमक्खियाँ परागण की क्रिया में भाग लेकर किसान को फायदा पहुंचाती है। मधुमक्खी पालन से बहुत कम समय में आय प्राप्त होने लगती है तथा इनकी कालोनियों की संख्या भी दिन प्रतिदिन बढ़ती जाती है। परन्तु इस प्रकार का लाभ प्राप्त करने के लिए आवश्यक वनस्पति (फूलों) का वर्ष भर उपलब्ध होना अति आवश्यक है। इसके लिए किसान भाई मधुमक्खियों को एक स्थान से दूसरे स्थान पर स्थांनातरित भी कर सकते हैं।

प्रस्तुत है, एन.डी.आर.आई., कृषि विज्ञान केन्द्र, करनाल के प्रशिक्षुक श्री संदीप चौधरी का वर्णनः श्री संदीप चौधरी ग्राम खानपुरा, तहसील इन्द्री, जिला करनाल के निवासी है मधुमक्खी पालन का कार्य लगभग 27 वर्ष पहले इनके पिता श्री रणधीर चौधरी द्वारा आरंभ किया गया था। शुरूआती दौर में कई परेशानियाँ का भी सामना करना पड़ा जैसे, मधुमक्खी पालन का अधूरा ज्ञान, अकुशल मजदूर, बाजार सम्बन्धी सीमाएं इत्यादि फिर कई समस्याएं आने के बावजूद भी इस कार्य को आगे बढ़ाते चले गये। धीरे–धीरे इनकी आमदनी भी बढ़ती चली गई ओर मधुमक्खियों की कालोनी संख्या भी बढ़ती चली गई। श्री संदीप विगत 3–4 वर्षों से इस कार्य को संभाल रहे हैं।

प्रिय किसान मित्रों पुराना अनुभव और नई सोच का मेल भी क्या खूब रंग लाता है ऐसा ही कुछ संदीप और इनके पिता के बीच हुआ। संदीप बीएससी (गणित) होने के बावजूद भी व्यवसाय को नई सोच के साथ आगे बढ़ा रहे हैं। अब यह अपने उत्पादन की स्वंय पैकिंग कर **जतिन हनी** के नाम से बाजार में बेचते हैं। समय–समय पर वनस्पतियों (फूलों) की कमी होने पर इनका पलायन हिमाचल प्रदेश, राजस्थान एवं जम्मू–कश्मीर तक भी होता है। वर्तमान में इनके पास 2400 बक्से हैं। जिससे लगभग 700 कुंतल शहद एवं लगभग 25 कुंतल मोम प्राप्त होता है। इसमें से लगभग आधी मात्रा प्रंसस्कृत कर जतिन प्राकृतिक हनी के नाम से बाजार में बेची जाती है जिससे लगभग उन्हें 50 से 60 लाख तक की प्रतिवर्ष शुद्व आय प्राप्त होती है और लगभग 20–25 लोगों को रोजगार उपलब्ध कराने का भी कार्य कर रहे हैं।

बीज उत्पादन

किसान भाईयों बीज उत्पादन एक ऐसी तकनीक है जिसमें हम फसल उत्पादन से सीधा जुड़कर भी ज्यादा लाभ कमा सकते है। स्वस्थ एवं उन्नत बीज कृषि जगत की एक ऐसी वस्तु है जिसकी आवश्यकता भारतवर्ष के प्रत्येक किसान को है। क्योंकि एक स्वस्थ एवं उन्नत बीज ही फसल के सफल जीवन–चक्र की आधारशिला है। आज बाजारों में कई प्रकार के बीज उपलबध हैं। जैसे प्रजनक बीज, पंजीकृत बीज, सत्यापित बीज इत्यादि। यदि हमारे किसान भाई जागरूक नहीं है, तो कई बार विभिन्न निजी कंपनियों द्वारा ज्यादा मुनाफा कमाने के लालच में अस्वस्थ एवं बेकार किस्मों के बीज ऊँचे दामों पर किसान भाईयों को बेच दिए जाते हैं। जिसका नुकसान हमारे किसान मित्रों को पूरे वर्ष

भर भी उठाना पड़ सकता है। इस समस्या से निजात पाने के लिए यदि हमारे बीच से ही किसान भाई बीज उत्पादन का कार्य शुरू कर दे तो विश्वसनीय बीज हमारे अन्य किसान मित्रों को उचित दाम पर उपलब्ध हो सकता है।

प्रस्तुत है एन.डी.आर.आई., कृषि विज्ञान केन्द्र, करनाल के प्रशिक्षुक श्री विकास कुमार चौधरी का वर्णनः श्री विकास कुमार चौधरी, ग्राम तरावड़ी, तहसील निलोखेड़ी जिला करनाल के निवासी है जोकि विगत 5–6 वर्षों से बीज उत्पादन एवं सीमिट मैक्सिको सरकार द्वारा प्रयोजित परियोजना **''संरक्षण कृषि''** के कार्य में संलग्न हैं। इनके द्वारा मुख्य रूप से धान और गेहूँ की कुछ उन्नत किस्में बीजोत्पादन की दृष्टि से उगाई जाती है। जिसमें धान की मात्रा लगभग 600–700 कुंतल, गेहूँ की मात्रा 700–750 कुंतल है तैयार बीज की कुछ मात्रा आवश्यकतानुसार भाकृअनुप–भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली के क्षेत्रीय स्टेशन, करनाल (कृषक सहभागिता बीजोत्पादन परियोजना) द्वारा खरीद ली जाती है तथा कुछ मात्रा स्थानीय किसान भाईयों द्वारा खरीद ली जाती है तथा शेष मात्रा अनाज मंण्डी में सामान्य मूल्य पर बेच दी जाती है। इससे लगभग उन्हें 25 लाख रूपये प्रतिवर्ष शुद्ध आय के रूप में प्राप्त होते हैं।

गेहूँ एवं जौ में मोल्या रोग के लक्षण व उनका प्रबंधन

अंशुल छाछिया एवं चुनी लाल
भाकृअनुप–भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान, करनाल

गेहूँ एवं जौ रबी मौसम की भारत में बहुत ही महत्वपूर्ण अनाज वाली फसलें हैं। नयी किस्में, खाद, पानी और आधुनिक यंत्रों के समुचित प्रयोग से इन फसलों की पैदावार प्रति एकड़ बढ़ रही है परन्तु इसके साथ–साथ रोगों की समस्या भी बढ़ गयी है। बिमारियों के कारण फसल की उत्पादन क्षमता कम हो जाती है और कभी–कभी तो फसल पूरी तरह चौपट भी हो जाती है। गेहूँ एवं जौ के हानिकारक रोगों में पीला रतुआ, भूरा रतुआ, काला रतुआ, पर्ण झुलसा, चूर्णिल आसिता आदि प्रमुख हैं। इन रोगों के अतिरिक्त सूत्रकृमि भी काफी नुकसान पहुँचाते है। गेहूँ एवं जौ में विभिन्न प्रकार के सूत्रकृमियों से भिन्न–भिन्न प्रकार के रोग होते है जिनमें गेहूँ एवं जौ का मोल्या रोग एक बहुत महत्वपूर्ण रोग है। यह रोग एक विशेष क्षेत्र में ही समस्या है।

निमेटोड अथवा पादप सूत्रकृमि छोटे व अति सूक्ष्म, गोल शरीर वाले, खंड रहित धागों की तरह साँप जैसे जीव होते हैं। ये रंगहीन होते हैं जो मिट्टी में रहकर जड़ों को नुकसान पहुँचाते हैं। इन्हें इनके सूक्ष्म आकार, अर्द्ध पारदर्शी शरीर के कारण सामान्य नग्न आँखों से खेंतो मे नहीं देखा जा सकता। ये सूक्ष्मदर्शी यंत्र से ही दिखाई देते हैं। ये ग्रीष्म व शरद् ऋतु में सर्वाधिक संख्या में पाये जाते हैं। इन्हीं पादप परजीवी सूत्रकृमियों में से एक अहम् सूत्रकृमि *'हेटेरोडेरा एविनी'* है जो गेहूँ व जौ में मोल्या रोग उत्पन करता है और इसका आक्रमण प्रायः वर्षा आधारित शुष्क क्षेत्रों व रेतीली भूमि में देखा गया है।

गेहूँ एवं ज़ौ की फसल में मोल्या रोग का प्रभाव मुख्य रूप से राजस्थान, हरियाणा, पंजाब, दिल्ली, जम्मू–कश्मीर, हिमाचल प्रदेश, उत्तर प्रदेश, और मध्य प्रदेश आदि क्षेत्रों में पाया जाता है। हमारे देश में मोल्या रोग से गेहूँ व ज़ौ की फसल को औसतन 15 से 20 प्रतिशत हानि होती है जिससे किसान को काफी आर्थिक नुकसान उठाना पड़ता है। फसल में हानि सूत्रकृमि के कम व ज्यादा प्रकोप के अनुसार होती है। इस लेख में गेहूँ एवं जौ के मोल्या रोग की पहचान और उनके प्रबंधन विधियों का वर्णन किया गया है।

सूत्रकृमि का जीवन–चक्र

धान्यपुटिका सूत्रकृमि (*हेटेरोडेरा एविनी*) अपना जीवन–चक्र गेहूँ व ज़ौ की फसल पर अधिक से अधिक 120 दिनों मे पूरा कर लेता है और फसल में ही एक जीवन–चक्र पूरा कर लेता है। यह सूत्रकृमि शुकिका के माध्यम से जड़ों के अंदर घुस जाता है व अपने जीवन–चक्र की चार अवस्थाओं को पूरा करके, मादा अपने शरीर में 200 से 500 अंड़े पैदा करती है। इसके उपरान्त यह मादा सूत्रकृमि मरकर भूरे काले रंग की पुटिका (सिस्ट) बन जाती है। एक ऋतु में केवल 50 प्रतिशत अंडों में से शिशु सूत्रकृमि ही बाहर निकलते हैं, बाकी अगले सीजन तक यहीं पर रहते हैं। सूत्रकृमि जड़ मे घुसकर पौधे का भोजन चूसकर जड़ की कोशिकओं को हानि पहुँचाकर व परभोजी रहकर अपना जीवन–चक्र पूरा करते हैं। गेहूँ की फसल के उपरांत यह पुटिका (सिस्ट) सूत्रकृमि मिट्टी मे निष्क्रिय अवस्था में पड़े रहते हैं। पुटिका (सिस्ट) में अंडे कुछ वर्षों के लिए व्यवहार्य रह सकते हैं। अगले वर्ष गेहूँ की फसल जब दोबारा लगायी जाती है तब यह फिर से अनुकूल तापक्रम, आर्द्रता व जड़ों से रिसाव प्राप्त होने पर सक्रिय होकर फसल को पहले से ज्यादा हानि पहुँचाते हैं।

मोल्या रोग के लक्षण

गेहूँ एवं जौ की बुआई के 1–2 महीने बाद जनवरी/फरवरी में ही फसलों मे रोग के लक्षण दिखाई देने लगते है। फसल में इस रोग के आने से पौधे भिन्न–भिन्न समूहों में कहीं बौने, छोटे पीले रंग व कही पर बड़े पौधे दिखाई देते हैं। निरंतर फसल के साथ, ऐसे पैच धीरे–धीरे आकार में बढ़ जाते हैं। पौधे पीले व बौने रह जाते हैं। पौधे में फुटाव कम होता है। रोगी बालियों में दाने कम, छोटे व सिकुड़े हुए बनते हैं। रोगी पौधों मे बालियां छोटी व दाने छोटे और सिकुड़े हुए बनते हैं। रोगी पौधे की जड़े पतली, छोटी व गुच्छेदार हो जाती हैं। फरवरी माह में रोगी पौधे की जड़ों को मिट्टी से सावधानीपूर्वक ऊखाड़ करके साफ पानी से धोकर ध्यान से देखने पर गोलाकार सफेद या भूरे रंग की यूरिया के दाने जैसी मादायें पौधों की जड़ों पर चिपकी हुई दिखाई देती हैं जिन्हें किसान आसानी से देख सकते हैं। प्रति ग्राम मिट्टी में इस सूत्रकृमि की 10 पुटिका (सिस्ट) 10 प्रतिशत तक नुकसान पहुँचा सकती हैं।

सूत्रकृमि का प्रबंधन

अगेती बुवाई करने से सूत्रकृमि अधिक नुकसान पहुँचाता है, क्योंकि इस सूत्रकृमि की पुटिकाओं में अंडों से द्वितीय अवस्था लार्वा बाहर निकलने के लिए एक निश्चित तापमान 15 से 18 डिग्री सेंटीग्रेड उपयुक्त होता है, जिसपर सर्वाधिक

अंड़े फूटते हैं। देरी से बुआई करने पर तापमान 12 से 15 डिग्री सेंटीग्रेड कम से कम हो जाता है। इसलिए पछेती बुआई दिसम्बर के दूसरे सप्ताह में की जाये तो सूत्रकृमि के फसल पर प्रकोप को कम किया जा सकता है।

खेत की हल्की सिंचाई करने के बाद मई–जून के महीने में जब तापमान 45 से 48 डिग्री सेंटीग्रेड होता हैं, तब 2–3 गहरी जुताई 10–15 दिनों के अन्तराल पर करने से सूत्रकृमि तापमान अधिक होने से मर जाते हैं।

रबी के मौसम में सरसों, मटर, चना, अलसी व गाजर को दो–तीन वर्ष तक फसल–चक्र में उगाकर सूत्रकृमि के प्रकोप को कम किया जा सकता है।

खेत में खरीफ की फसल से पहले हरी खाद के लिए सनई (*क्रोटोलेरिया जुन्सिया*) 1–2 माह तक उगाये व बाद में जुताई करके खेत में मिला दें। इससे सूत्रकृमि बायोफ्यूमिगेशन के कारण मर जाते हैं व खरीफ और रबी की फसलों को खाद भी मिलती हैं।

खेत में प्रतिरोधी किस्में जैसे गेहूँ की राज मोल्या रोधक–1 लगाकर सूत्रकृमि को नियंत्रण कर सकते हैं।

गेहूँ की बिजाई के समय कार्बोसल्फान–25 एसपी से 100 किलोग्राम बीज में 1 किलोग्राम (सक्रिय तत्व) से बीजोपचार करें।

खेत में गेहूँ की बुआई के साथ कार्बोफ्युरान–3जी (फ्युराडान) 33 किलोग्राम प्रति हैक्टर (1 किलोग्राम सक्रीय तत्व प्रति हैक्टर) की मात्रा में डालकर सूत्रकृमि का नियंत्रण कर सकते हैं। कार्बोफ्युरान का उपयोग फसल बोने से 25 दिन पश्चात् भी करके सूत्रकृमियों का नाश कर सकते हैं।

अगर हो सके तो सूत्रकृमिनाशक दवा का प्रयोग खेतों में कम करना चाहिए क्योंकि इन दवाईयों का प्रभाव पर्यावरण पर पड़ता हैं। इसीलिए समेकित प्रबंधन में 2–3 विधियों को अपनाकर सूत्रकृमि की संख्या को कम किया जा सकता हैं। इन विधियों से पर्यावरण तो ठीक रहेगा ही और साथ ही फसल उत्पादन में बचत/हानि का अनुपात भी सही रहेगा।

हिन्दी के द्वारा सारे भारत को एक सूत्र में पिरोया जा सकता है।
-महर्षि स्वामी दयानन्द

पीजीपीआर की मदद से गेहूँ विकास एवं उत्पादन में वृद्धि

पालिका शर्मा, प्रेम लाल कश्यप, पूनम जसरोटिया, रवि शेखर, अंजु शर्मा,
सुधीर कुमार एवं ज्ञानेन्द्र प्रताप सिंह
भाकृअनुप–भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान, करनाल

गेहूँ (*ट्रिटिकम*) प्रजाति विश्वव्यापी महत्व की धान्य फसलों में से एक आवश्यक खाद्य फसल है जिस पर लाखों लोग निर्भर करते हैं। सर्वप्रथम गेहूँ का उत्पादन 9600 ईसा पूर्व ईरान में हुआ था और अब इसकी खेती दुनिया भर में की जाती है। विश्व स्तर पर धान्य फसलों में मक्का के बाद गेहूँ दूसरी सबसे अधिक उगाई जाने वाली फसल है और धान तीसरे स्थान पर स्थापित है जबकि भारत में धान के बाद गेहूँ दूसरे पायदान पर है और मक्का तीसरे स्थान पर है। 2017–18 में ग्लोबल गेहूँ पैदावार 757.92 मि. टन थी। भारत में 2017 में गेहूँ का उत्पादन 98.5 मि. टन रहा जबकि 2018–19 के तीसरे अग्रिम आंकलन के अनुसार गेहूँ की पैदावार 101.2 मि. टन तक दर्ज की जा सकती है जोकि 2017–18 की गेहूँ पैदावार (99.87 मि. टन) के मुकाबले 1. 33 मि. टन अधिक है। चीन के बाद भारत ही गेहूँ का दूसरा बड़ा उत्पादक राष्ट्र है।

गेहूँ विश्व एवं भारत की बढ़ती जनसंख्या के लिए मुख्य खाद्य स्रोत है तथा लगभग 20 प्रतिशत आहार कैलोरी की पूर्ति करता है। गेहूँ में 13 प्रतिशत प्रोटीन, 71 प्रतिशत कार्बोहाईड्रेट और 1.5 प्रतिशत वसा पाया जाता है। गेहूँ का उपयोग चपाती रोटी, ब्रेड, कुकीज, केक, दलिया, पास्ता, नूडल्स बनाने में होता है। इसलिए आगामी वर्षों में बढ़ती जनसंख्या की गेहूँ पर निर्भरता को कायम रखने के लिए गेहूँ का उत्पादन ऊँचे स्तर पर बढ़ाने की आवश्यकता है।

गेहूँ एक रबी फसल है, जिसको बुआई के समय कम तापमान तथा पकते समय शुष्क और गर्म वातावरण की आवश्यकता होती है। गेहूँ के उत्पादन को बाधित करने वाले बहुत सारे अजैविक कारक/घटक उत्तरदायी है। अजैविक घटकों में शामिल है तापमान (गर्म व ठंडा), सूखा, अतिवृष्टि, अनावृष्टि, ओला और भूमि में पोषक तत्वों की कमी। जैविक कारकों में कीट, जीवाणु, विषाणु, फफूँदी, हानिकारक सूक्षमजीव सम्मिलित है जोकि फसल उत्पादन में कमी के मुख्य कारण है हालाकि पोषक तत्वों की क्षति पूर्ति एवं फसल सुरक्षा रसायनिक तत्वों की मदद से की जा सकती है परन्तु इसका दुष्परिणाम जीवों, मनुष्यों एवं मृदा की बिगड़ रही सेहत के रूप में सामने आता है।

फसल को अच्छे उत्पादन एवं विकास के लिए आज के समय में पर्यावरण हितैषी कारक अत्यन्त जरूरी है। स्थायी कृषि अथवा टिकाऊ कृषि की मांग पूरी करने के लिए सूक्ष्मजीवों का खेती में प्रयोग एक अच्छा विकल्प माना जा रहा है। किसानों द्वारा खेतों में मुख्यतः जैविक खादों एवं जैविक कीटनाशकों का ही प्रयोग किया जाना चाहिए।

जैविक खाद एवं कीटनाशक का एक स्वरूप पीजीपीआर भी हैं जो कि प्लांट ग्रोथ प्रोमोटिंग राईजोबैक्टीरिया के नाम से प्रसिद्ध है। यह बैक्टीरिया राईजोस्फेयर यानि पौधों की जड़ों एवं उसकी आस–पास की मिट्टी में पाये जाते है। यह बैक्टीरिया पौधों से सहजीवी किस्म का सम्बन्ध कायम करते हैं जिसमें यह पौधे से पोषण एवं जरूरी तत्व ग्रहण करते है बदले में यह पौधे को भी मिट्टी में से पोषक तत्व उपलब्ध कराते है तथा कीटों से रक्षा प्रदान करते है। पीजीपीआर ऐसे राईजोबैक्टीरिया हैं जो कि प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से पौधे के विकास एवं बेहतरीन उत्पादन में मदद करते है। प्रत्यक्ष रूप में यह पौधे को नाईट्रोजन, जिंक, फॉस्फोरस, पोटाशियम, लोहा, पादप हार्मोन (इन्डोल ऐसीटिक एसिड, साईटोकाईनिन एवं जिबेरेलिक एसिड) प्रदान कराते हैं। वहीं अप्रत्यक्ष रूप से यह पौधे का कीटों, हानिकारक फफूंदी एवं बैक्टीरिया से बचाव करते हैं। इसके लिए यह पी.जी.पी. आर. प्रतिपक्षी के रूप में काम करते है और हाईड्रोजन साईनाईड, अमोनिया, लाइटिक (अपघटय) किण्वक (इन्जाईम) पैदा करके कीटों व पादप रोगजनकों को बेअसर कर देते हैं। इसके अलावा यह साईडरोफोर भी पैदा करते हैं जो लोहे को चीलेट करता हे इस तरह से हानिकारक पादप रोगजनक के लिए लोहे की कमी हो जाती है और वह मर जाता हैं। इसी प्रकार पीजीपीआर में एसी डीऐमीनेज नामक किण्वक पाया जाता है जो पौधे पर जैविक एवं अजैविक दबावों के दौरान बढ़े हुए इथेलीन लेवल (जोकि एक स्ट्रेस हार्मोन का काम करता है) को घटाने में मदद करता है और पौधे की सुरक्षा करता है। यह किण्वक इथेलीन को तोड़कर अमोनिया एवं अल्फा कीटो ग्लूटरेट में विभाजित करता है जिसे बैक्टीरिया या पौधा इस्तेमाल कर सकते हैं।

बहुत सारे बैक्टीरिया पीजीपीआर की श्रेणी में आते हैं जैसे कि *बेसीलस, राईजोबियम्, स्यूडोमोनास, एजोस्पीरिलियम्, एजोटोबैक्टर, ब्रेवीबैक्टीरियुम, सिराशीया, एक्रोमोबैक्टर, एकटीनोमाईसीटस, एन्टेरोबैक्टर, लेवोबैक्टीरियम, एलकेलीजन, मिथाईलोबैक्टीरियम्,* इत्यादि। अगर गेहूँ के बीजों को इनमें से उपयुक्त पीजीपीआर से शोधित करने के बाद बोया जाए तो यह पौधे की गुणवत्ता, विकास एवं उत्पादन में तो

सहायक होते ही हैं साथ ही साथ यह मृदा का ऊपजाउपन बढ़ाने में भी मदद करते हैं और मृदा अनुकूलक का भी काम करते हैं। गेहूँ में यह पीजीपीआर पौधे को नाईट्रोजन उपलब्ध कराते हैं। मिट्टी में फॉस्फोरस, पोटाशियम्, जिंक एवं मैंग्नीज की घुलनशीलता बढ़ाकर उसे पौधे को मुहैया कराते हैं। घुलनशीलता बढ़ाने के लिए यह पीजीपीआर कुछ जैविक तेजाब पैदा करते हैं जैसे सिट्रिक एसिड, मैलिक एसिड, अल्फा–कीटो ग्लुटोनिक एसिड इत्यादि जो मृदा की एसीडिटी बढ़ाते हैं जिसमें यह तत्व जल्दी घुल जाते हैं। अक्सर गेहूँ उत्पादन क्षेत्रों की मिट्टी में जिंक की मात्रा कम पाई जाती है, बाहरी रूप से मुहैया कराने पर भी यह मिट्टी मुख्य तौर पर क्षारीय मिट्टी में घुलनशील अवस्था में नहीं होती तो तेजाब पैदा करने वाले पीजीपीआर इसकी मिट्टी में घुलनशीलता बढ़ाकर इसे पौधे को प्रदान कराते हैं जिससे गेहूँ के पौधे का अच्छे से विकास होता है और गेहूँ को आहार के रूप में सेवन करने वाले मनष्यों खासकर बच्चों एवं गर्भवती महिलाओं के शरीर में जिंक की कमी की पूर्ति होती है।

जिंक घोलक बैक्टीरिया पैदावार तथा गुणवत्ता बढ़ाने के अलावा गेहूँ के अनाज में अपौष्टिक तत्वों जैसे कि फाईटिक एसिड की मात्रा को भी कम करता है। अगर फाईटिक एसिड की मात्रा अनाज एवं शरीर में ज्यादा होगी तो ये आवश्यक खनिज पदार्थों जैसे कि कैल्शियम, मैग्नीशियम, आयरन, तांबा, आदि को प्रेसीपेट करके शरीर में इनके अवशोषण में बाधा उत्पन्न करता है। वहीं अगर जिंक प्रर्याप्त मात्रा में उपलब्ध हो तो यह फाईटेज किण्वक का सहकारक (कोफैक्टर) बनकर फाईटिक एसिड को तोड़ देता है।

इसी प्रकार पीजीपीआर पादप हार्मोन उत्पन्न करके गेहूँ पौधे का विकास करते हैं जैसे इण्डोल एसिटिक एसिड मुख्यतः जड़ों के विकास में मदद करते हैं, जिबेरेलिक एसिड (जी.ए.) बीज अंकुरण को प्रोत्साहित करता है तथा पौधे के विकास को उत्तेजित करता है, वही साईटोकाईनिन जड़ व तने में कोशिका विभाजन का कार्य करता है। इसके अलावा फसल सुरक्षा भी पीजीपीआर की कार्य प्रणाली का अहम् हिस्सा है जिसमें यह (एचसीएन) हाईड्रोजन साईनाईड व अमोनिया उत्पन्न कर पादप रोगजनकों कों नियन्त्रित करते हैं। कुछ पीजीपीआर खुद मिट्टी व पौधे जिसमें से सारे पौष्टिक तत्व व पदार्थ खुद इस्तेमाल कर लेते हैं जिसकी वजह से पादप रोग जनकों को पर्याप्त तत्व नहीं मिलते और वह मर जाते हैं। पीजीपीआर की मदद से गेहूँ में 1–2 प्रतिशत उत्पादन वृद्धि की जा सकती है इसलिए यह एक उपयुक्त जैविक उर्वरक एवं जैविक नियन्त्रक है।

पीजीपीआर की उपयोग विधि

पीजीपीआर ठोस (पाउडर–चारकोल या चूना मिश्रित) या तरल फार्मूलेशन में हो सकते है। आज कल तरल फार्मूलेशन

गेहूँ के जैविक उर्वरक	उदाहरण
नाईट्रोजन फिक्सर (स्वतन्त्र रुपी)	*एजोटोबैक्टर, क्लोस्ट्रीडियम, ऐनाबीना, नोसटक*
जिंक एवं फास्फेट घोलने वाले	*बेसीलस, मेगाटीरियम, बेसीलस सरकुलन्स, सिराशिया, स्यूडामोनास*

गेहूँ के जैविक नियन्त्रक

पादप रोगजनक (फंफूदी)	बिमारी	जैविक नियन्त्रक
फ्यूजेरियम सोलेनाई	रूट रौट	*सीडोमोनाज ओरियोफेशियन*
बाईपोलेरिस सोरकिनियाना	रूट रौट	*सीडोमोनाज, बेसीलस*
क्लेवीसेप परपुरीया	एरगट	*सीडोमोनाज*
आल्टरनेरिया	लीफ ब्लाईट	*बेसीलस स्बटीलस*
पक्सीनिया ग्रैमिनिस	तना रस्ट (रतुआ)	*बेसीलस माईलोलिक्योफेशियन*

पादप रोगजनक बैक्टीरिया	बिमारी	उदाहरण
सीडोमोनाज सिरीजे	लीफ ब्लाईट	*बेसीलस* *स्ट्रेटोस्फेरिकस* *सीडोमोनाज* *ऐरोजिनोसा*
जैन्थोमोनास कम्पेस्ट्रीस	ब्लैक शाफः बैक्टीरियल स्ट्रीक	*बेसीलस स्बटीलस*

का प्रयोग ज्यादा है जिसे इस्तेमाल करना कहीं आसान है।

तरल पीजीपीआर उपयोग विधि

बीज उपचार के लिए 250 मि.लि. उर्वरक को एक एकड़ के लिए उपयुक्त बीज पर लगाएं और छाया में सुखाकर बुआई करें।

पाउडर फार्मूलेशन उपयोग विधि

गेहूँ में पीजीपीआर से बीज उपचार के लिए आधा लीटर पानी में लगभग 50 ग्रा. गुड़ या गोंद के साथ 500 ग्रा. पी. जी.पी.आर. को अच्छी तरह मिलाकर घोल तैयार कर लें। इस घोल को 40 कि.ग्रा. प्रति एकड़ बीज पर अच्छी तरह लगाएं ताकि प्रत्येक बीज पर इसकी परत चढ़ जाए। इसके उपरांत बीजों को छायादार जगह पर सुखा लें और बुआई सूखने के तुरन्त बाद कर दें।

तालिका : गेहूँ के उर्वरक एवं पीजीपीआर बनाने वाली भारतीय निजी कंपनियाँ

कंपनी नाम	प्रोडक्ट नाम	लाभ
एनएफएल	किसान एजोटोबैक्टर कल्चर (पाउडर)	20–40 मि.ग्रा./ग्रा. नाईट्रोजन प्रदान करना, पौधे के उच्चतम् विकास के लिए विटामिन बी ग्रुप, इन्डोल एसेटिक एसिड, जिबरैलिक एसिड पैदा करना।
माई लैब फर्टीलाईजर	माई लैब अजोटो (सूक्षम जीव किट) (तरल)	एजोटोबैक्टर खाद का उत्पादन
एमबीएफ	एजोटोबैक्टर (एनबीएफ) (पाउडर) 750 ग्राम को पानी में घोल कर 30–40 किलोग्राम बीज पर लगाएँ।	पौधा विकास, नाईट्रोजन प्रदान करना, मृदा शक्ति बढ़ाना, रोगाणु नियन्त्रण।
इंटरनेशनल पनेशिया लिमिटड	प्रीमियम अजोटो (तरल एवं पाउडर)	नाईट्रोजन प्रदान करना, मृदा उत्पादन शक्ति बढ़ाना, फाईटोहार्मोन प्रदान कर पौधा विकास
स्पेशल बायोकेम प्राईवेट लिमिटेड	बाओजिंक 2 किलोग्राम एकड़ (पाउडर)	जिंक घोलकर मृदा मे से पौधे तक पहुँचाना। पौधा विकास व फसल उत्पादन बढ़ाना मृदा की पी.एच घटाना।
प्रभात बायोफर्टिलाईजर प्राईवेट लिमिटेड	प्रभात अजोटो (तरल) 250 मिली खाद को 250 मिली 5 प्रतिशत गुड़ के घोल में मिलाकर बीज पर लगाएं।	पौधा विकास व उत्पादन बढ़ाना फसल को जीवाणु एवं रोग मुक्त रखना।

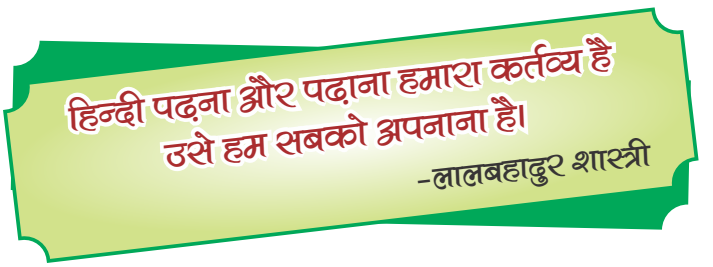

गेहूँ फसल रोगों पर आधारित मोबाइल ऐप "गेहूँ डॉक्टर"

सुमन लता, डीपी सिंह, पूनम जसरोटिया एवं ज्ञानेंद्र प्रताप सिंह
भाकृअनुप–भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान, करनाल

गेहूँ डॉक्टर, भारतीय गेहूँ और जौ अनुसंधान संस्थान द्वारा विकसित एक मोबाइल एंड्रॉइड एप्लिकेशन है। इस ऐप में जानकारी के लिए हिंदी भाषा का उपयोग किया जाता है, ताकि किसान के बारे में जानकारी उपलब्ध करवाता है साथ ही उनके प्रबंधन के उपाय भी बताता है। समुदाय को अधिकतम लाभ मिल सके। यह मुख्य रूप से गेहूँ की बिमारियों, कीड़ों भी किसी भी क्षेत्र की मुख्य बिमारियों, किसी क्षेत्र की रोग प्रतिरोधी किस्मों, आईपीएम रणनीतियों और फसल कटाई के बाद के भंडारण प्रबंधन के बारे में जानकारी प्रदान करता है।

इस जानकारी का उपयोग करके किसान अपनी फसल की बेहतर तरीके से देखभाल कर सकते हैं, और उसमें होने वाले रोगों और कीड़ों की पहचान कर सकते हैं। तब वे उस बीमारी अथवा कीट को नियंत्रित करने के लिए उचित तरीका अपना सकते हैं। यह किसानों को उनकी फसल उत्पादकता बढ़ाने में मदद करेगा। यह गेहूँ के मुख्य हानिकारक कीड़ों (सचित्र), की विस्तृत जानकारी प्रदान करता है ताकि किसान उन्हें आसानी से पहचान सकें। यह ऐप न केवल बिमारियों और कीड़ों के बारे में जानकारी देता है, बल्कि यह गेहूँ मे फसल के एकीकृत कीट एवं व्याधि प्रबंधन प्रथाओं के साथ–साथ, गेहूँ की कटाई के बाद, फसल के सुरक्षित भंडारण और कीट प्रबंधन की भी जानकारी देता है।

यह ऐप एंड्रॉइड प्लेटफॉर्म संस्करण 3.1 का उपयोग करके विकसित किया गया है और यह गूगल प्ले स्टोर पर आसानी से उपलब्ध है। इसे निम्न लिंक के माध्यम से आसानी से डाउनलोड किया जा सकता है।

https%@@play-google-com@ store@apps@details \id¾com-Gehoon-GehoonDoctor

ऐप के फ्रंट एंड में छह विकल्प हैं। उपयोगकर्ता चित्र द्वारा या उसके दाईं ओर लिखे शीर्षक से विकल्प का चयन कर सकता है एक क्लिक पर सूचना मोबाइल स्क्रीन पर देखी जा सकती है।

6 विकल्प निम्नलिखित हैं

- गेहूँ के प्रमुख रोग
- गेहूँ में प्रमुख हानिकारक कीट
- विभिन्न क्षेत्रों के प्रमुख रोग
- विभिन्न क्षेत्रों के लिये रोग प्रतिरोधी किस्में
- गेहूँ आई पी एम
- सुरक्षित भंडारण और कीट प्रबंधन

गेहूँ डॉक्टर

बाईं ओर मेनू में 7 विकल्प दिए गए हैं। यह बाएं कोने पर क्लिक करके प्रकट होता है। वांछित विकल्प पर क्लिक करके विस्तृत जानकारी मोबाइल स्क्रीन पर देखी जा सकती है।

बाईं ओर के मेनू विकल्प हैं

- होम
- हमारे बारे में
- गेहूँ के मुख्य रोग
- गेहूँ में प्रमुख हानिकारक कीट
- हमसे संपर्क करें
- अस्वीकरण
- बंद करे
- **ऐप के सभी स्क्रीन के निचले तल भाग में 3 विकल्प दिए गए हैं**
- होम
- प्रतिक्रिया
- बंद करे

वांछित विकल्प चुनकर मुख्य रोगों (11) या कीड़ों (7) के

बारे में विस्तृत जानकारी (कारण, लक्षण, वितरण, प्रबंधन) मोबाइल स्क्रीन पर देखी जा सकती है। सुरक्षित भंडारण और कीट प्रबंधन में 6 कीटों के बारे में विस्तृत जानकारी दी गई है।

प्रमुख रोग : पीला रतुआ, भूरा रतुआ, काला रतुआ, पर्ण झुलसा, करनाल बंट, काला दाना रोग, हिल बंट या दुर्गन्धी कंड, फ्यूजेरियम हेड स्कैब, ग्लूम ब्लॉच रोग, पीला बाली विगलन या जीवाणु विगलन रोग, बाली गेगला या बीज पिटिका नेमाटोड।

प्रमुख हानिकारक कीट : पत्ती माहूँ, दीमक, जड़ का माहूँ, गुलाबी तना बेधक, गेहूँ की बरुथी, सैनिक कीट, प्ररोह मक्खी या तना मक्खी।

सुरक्षित भंडारण में कीट प्रबंधन : सूंड वाली सुरसरी/राइस वीवल, छोटा छिद्रकण/घुन, खपरा बीटल/पई, आटे का कीट/रेड रस्ट, अनाज का पतंगी/ग्रेन मौथ, चावल का पतंगा/राइस मौथ।

उपयोगकर्ता अपने बहुमूल्य सुझाव, प्रतिक्रिया विकल्प के माध्यम से भेज सकते हैं, जिसे इस ऐप के अगले संस्करण में लागू किया जा सकता है।

आईपीएम में 6 उप विकल्प हैं और भंडारण प्रबंधन में क्रमशः 3 उप विकल्प हैं।

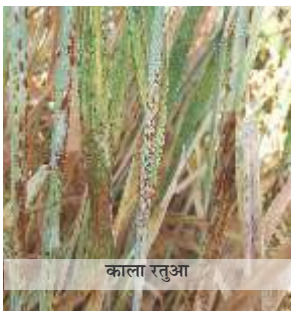

फसल अवशेष प्रबन्धन एक वरदान

मंगल सिंह, अनुज कुमार, आरएस छोकर, सेन्दिल आर एवं रमेश चन्द
भाकृअनुप–भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान, करनाल

भारत एक विकासशील देश है, जिसकी लगभग 56 प्रतिशत आबादी कृषि पर निर्भर करती है। इसी कारण भारत को कृषि प्रधान देश भी कहा जाता है। अब समय ऐसा है कि शिक्षित युवा अपने ज्ञान का उपयोग भारत के छोटे–छोटे गाँवों में जाकर कर रहे हैं। भारत में सभी खाद्यान्न फसलों का उत्पादन होता है। भारत की प्रमुख फसलों धान, गेहूँ, मक्का एवं गन्ना आदि के कटाई एवं गहाई के बाद बचे हुए पुआल, भूसा, तना तथा जमीन पर पड़ी हुई पत्तियाँ आदि खेतों में रह जाते हैं, जिन्हें फसल अवशेष कहा जाता है अधिकतर किसान उन्हें खेतों में जला देते हैं, जिसके कारण मृदा में पोषक तत्वों की हानि एवं वातावरण प्रदूषित होता है। भारत में किए गए विभिन्न अनुसंधानों के अनुसार फसल अवशेषों को यदि मृदा में मिला दिया जाये तो मुख्य पोषक तत्वों जैसे–नाइट्रोजन, फॉस्फोरस, पोटाश एवं कार्बनिक पदार्थों में वृद्धि होती है साथ ही मृदा के भौतिक गुणों में सुधार होता है।

फसल अवशेष प्रबंधन की समस्या के समाधान हेतु, माननीय प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी जी की अध्यक्षता में मार्च, 2018 में आयोजित केन्द्रीय मंत्रिमंडल की बैठक में फसल अवशेष प्रबंधन हेतु कृषि मशीनरी प्रोत्साहन योजना प्रारम्भ करने का निर्णय लिया गया। इस योजना का मुख्य उद्देश्य कृषि क्षेत्र में फसलों के अवशेषों के जलाने से पर्यावरण एवं कृषि योग्य भूमि को होने वाले नुकसान से बचाना है। इस योजना में पंजाब, हरियाणा, उत्तर प्रदेश एवं दिल्ली को शामिल किया गया है। इन राज्यों में फसल अवशेष प्रबंधन हेतु कृषि मशीनरी प्रोत्साहन के लिए केंद्र सरकार द्वारा वर्ष 2018–19 व 2019–20 के दौरान क्रमशः 591.65 एवं 560.15 करोड़ रुपये का वित्तीय लक्ष्य निर्धारित किया गया। योजना के अंतर्गत गाँवों के समूह बनाकर जागरूकता अभियान चलाने के साथ ही फसल अवशेष प्रबंधन हेतु कृषि मशीनरी कस्टम हायरिंग (मशीन किराये पर लेना) बैंक स्थापित करने का भी निर्णय लिया गया।

फसल अवशेष प्रबंधन के उपाय

किसानों द्वारा भारत के उत्तर पश्चिमी मैदानी क्षेत्रों में फसल अवशेष प्रबंधन निम्नलिखित तीन प्रकार से किया जाता है।

1. फसल अवशेष को मृदा में मिलाकर
2. फसल अवशेष को मृदा की सतह पर रखकर
3. अन्य वैकल्पिक उपयोग

1. फसल अवशेषों को मृदा में मिलाकर

किसानों के मध्य फसल अवशेष को लेकर कुछ इस प्रकार की भ्रांतियाँ हैं कि फसल अवशेषों को खेतों में जलाने से खरपतवारों के बीज, रोग एवं कीट नष्ट हो जाते हैं। इसका प्रमुख कारण है पिछली फसल की कटाई व आगामी फसल की बीजाई के लिए समय की कमी, इसके अलावा कटाई के समय श्रमिकों की अनुपलब्धता, जानवरों/पशुधन की घटती संख्या, पर्यावरण के बारे में जागरुकता की कमी, एवं अवशेषों के प्रबन्धन में प्रयोग किए जाने वाली मशीनों की अत्यधिक कीमत आदि घटक फसल अवशेषों को जलाने के लिए किसानों को प्रेरित करते हैं। फसल अवशेष जलाने से खेत की मिट्टी के साथ–साथ वातावरण पर भी दुष्प्रभाव पड़ता है। इससे मृदा के तापमान में वृद्धि, मृदा की सतह का सख्त होना, मुख्य पोषक तत्व जैसे नाइट्रोजन, फास्फोरस एवं पोटाश की उपलब्धता में कमी, मित्र कीटों का नष्ट होना एवं अत्यधिक मात्रा में वायु प्रदूषण जैसे नकारात्मक प्रभाव पड़ते हैं और जागरुकता का किसानों के मध्य अभाव है। फसल अवशेषों का उपयोग मृदा की उर्वराशक्ति बढ़ाने के लिए किया जा सकता है तो इसके सदुपयोग के लिए फसल अवशेषों को जलाने से बचना चाहिए।

यदि किसान फसल अवशेषों को मृदा में मिश्रित करते हैं तो निम्नलिखित लाभ प्राप्त होते हैं।

- फसल अवशेषों को मृदा में मिलाने से कार्बनिक पदार्थ की मात्रा बढ़ती है, जिसके परिणामस्वरूप भूमि की उपरी सतह की कठोरता कम होती है व मृदा की वायु–संचारण, जल अवशोषण एवं जल धारण क्षमता में वृद्धि होती है।
- फसल अवशेषों को मृदा में मिलाने से पोषक तत्वों की मात्रा में वृद्धि, मृदा की विद्युत चालकता एवं मृदा पीएच में सुधार के कारण भूमि की उर्वराशक्ति में वृद्धि होती है।
- फसल अवशेषों को मृदा में मिलाने पर आगे आने वाली फसलों की उत्पादकता में वृद्धि होती है। अतः मृदा स्वास्थ्य पर्यावरण एवं फसल उत्पादकता को देखते हुए फसल अवशेषों को जलाने की बजाए भूमि में मिला देने से अधिक लाभ प्राप्त होता है।

फसल अवशेषों को भूमि में मिश्रित करने के लिए विभिन्न प्रावधान है। जैसे;

फसल अवशेषों को मृदा में मिलाने के लिए मशीनें

फसल अवशेषों को मृदा में मिलाने के लिए भारत सरकार द्वारा कई प्रकार की मशीनों की खोज की गई है। फसल अवशेष प्रबंधन में प्रयोग की जाने वाली मशीनों के लिए सरकार द्वारा 50 से 80 प्रतिशत अनुवृति (सब्सिडी) मुहैया कराई जाती है। इन मशीनों से फसल अवशेषों को मिट्टी के साथ मिश्रित करने में किसानों को मदद मिलती है, जिससे भूमि को और अधिक उत्पादक/उर्वर बनाना सम्भव हो पाता है। इस योजना के तहत पंजाब, हरियाणा, उत्तर प्रदेश और एनसीआर दिल्ली हेतु दो वर्षों के लिए 1151.80 करोड़ रुपये का आवंटन किया गया है। फसल अवशेष प्रबन्धन के लिए निम्नलिखित मशीनों को सरकार द्वारा चिन्हित किया गया है।

सुपर स्ट्रा प्रबन्धन प्रणाली

यह यंत्र कम्बाईन हार्वेस्टर से संचालित किया जाता है, जो कम्बाईन द्वारा काटी गयी फसल के अवशेषों के छोटे–छोटे टुकड़ें करके खेतों में बिखेर देता है, तद्पोरान्त हैप्पी सीडर द्वारा गेहूँ की सीधी बीजाई की जा सकती है। फसल अवशेषों को आसानी से मृदा में मिलाया जा सकता है, फलस्वरूप मृदा की उर्वराशक्ति में वृद्धि होती है।

श्रेडर

यह पेड़–पौधों के अवशेषों को काटकर (छिन्न–भिन्न) छोटे–छोटे टुकड़े कर देता है। इस उपकरण को ट्रैक्टर, विधुत मोटर अथवा स्टेशनरी इंजन के माध्यम से संचालित किया जाता है।

मल्चर

यह कृषि यंत्र खेतों में फसल अवशेषों को छोटे–छोटे टुकड़ों में काटकर भूमि पर आवरण से ढक देता है, जिससे खेतों में नमी का संरक्षण होता है, साथ ही साथ अन्य फसलों की बीआई भी आसानी से की जा सकती है।

श्रब मास्टर

यह कृषि यंत्र खेतों में खड़े फसल अवशेषों (झाड़ीनुमा) को काटने के प्रयोग में लाया जाता है। इसे ट्रैक्टर के साथ जोड़कर आसानी से संचालित किया जा सकता है।

रोटरी स्लैशर

यह कृषि यंत्र ट्रैक्टर चालित होता है, इसके द्वारा फसल अवशेषों एवं झाड़ियों को जड़ से अलग करके छोट–छोटे टुकड़ों में परिवर्तित करके खेत में फैला दिया जाता है।

जीरो टिल सीड कम फर्टिलाईजर ड्रिल

कम्बाईन हार्वेस्टर द्वारा धान व अन्य फसलों की कटाई के उपरान्त जुताई किये बिना ही कम समय में धान कटाई उपरांत बची नमी का प्रयोग गेहूँ की बीजाई करने के लिए जीरो टिल सीड कम फर्टिलाईजर मशीन का प्रयोग किया जाता है। जिससे समय की बचत, लागत में कमी एवं उत्पादन में वृद्धि होती है।

कटर कम स्प्रेडर

कटर कम स्प्रेडर फसल अवशेषों को खेत में एक समान काटने एवं फैलाने का कार्य करता है। 35–40 अश्व शक्ति (एच.पी.) के ट्रैक्टर द्वारा इस मशीन को संचालित किया जा सकता है। इस मशीन द्वारा एक घण्टे में दो एकड़ खेत की पराली का प्रबन्धन में किया जा सकता है।

टर्बो हैप्पी सीडर

यह मशीन विशेष रुप से धान एवं अन्य फसलों जैसे गन्ना आदि के अवशेषों के प्रबन्धन के लिए विकसित की गई है। आमतौर पर कम्बाईन हार्वेस्टर से धान की कटाई करने के बाद किसान भाई फसल अवशेशों को आग लगाकर नष्ट कर देते हैं। यह परम्परा फसल अवशेष प्रबंधन की सबसे

अनुचित विधि है जिसमें पर्यावरण प्रदूषित होता है तथा भूमि की उर्वराशक्ति का भी ह्यस होता है। इस समस्या के निदान के लिये पंजाब कृषि विश्वविद्यालय, लुधियाना के कृषि वैज्ञानिकों ने टर्बो हैप्पी सीडर नामक मशीन विकसित की है। इस मशीन से एक घंटे में लगभग एक एकड़ क्षेत्र में गेहूँ की बीजाई की जा सकती है। इस मशीन को चलाने के लिये 50 अश्व शक्ति (एच.पी.) के ट्रैक्टर की आवश्यकता पड़ती है। इस मशीन से बीजाई करने के बाद यूरिया खाद का प्रयोग पहली व दूसरी सिंचाई से पहले करना चाहिए जिससे फसल अवशेष शीघ्र गलकर मृदा में मिल जाएं।

अन्य वैकल्पिक उपयोग

1. फसल अवशेष प्रबन्धन के अन्य विकल्प

फसल अवशेषों को जलाए बिना एवं मिट्टी में बिना मिलाए,

बेलिंग एक आकर्षक, किफायती और पर्यावरणीय रूप से सुरक्षित विकल्प प्रदान कर सकता है। कार्डबोर्ड निर्माण के लिए कागज मिलों में पराली का व्यापक उपयोग होता है, विभिन्न सामग्रियों की पैकेजिंग, मशरूम की अल्ट्रेशन, बॉयलर में जलाने, सूखे क्षेत्रों में पशुओं के भोजन आदि के लिए फसल अवशेषों को प्रयोग में लाया जाता है। इसलिए फसल अवशेषों को छोटे–छोटे बंडलों (120–135 किलोग्राम) के रुप में परिवहनीय आकार में समेटने की आवश्यकता होती है। खेतों से फसल अवशेषों को एकत्र करने के लिए हाल ही में फील्ड बेलर का भारत में अंगीकरण किया गया है

2. फसल अवशेषों के बंडल बनाना

स्ट्रा बेलर धान, गेहूँ, मक्का एवं अन्य फसलों के अवशेषों को काटकर संपीड़ीत (कम्प्रेस्ड) करके उसे परिवहनीय आकार में समेट कर उपयोग के लिए आसान कर देता है। किसान अपनी सुविधानुसार स्ट्रा बेलर से फसल अवशेषों को आयताकार अथवा बेलनाकार आकार में ढाल सकते हैं। इस मशीन को 40 से 75 अश्व शक्ति (एच.पी.) के ट्रैक्टर से जोड़कर संचालित किया जा सकता है। इस मशीन द्वारा 8 घंटे में अच्छी गुणवत्ता वाली धान पराली से लगभग 450 से 600 गांठें/बंडल तैयार किए जा सकते हैं। किसान इन गांठों/बंडलों को आस–पास के राइस मिल, गत्ता फैक्ट्री, पेपर मिल, कांच व सैनेटरी के सामान को पैक करने वाली उद्योग व अन्य जरुरत के सामान बनाने वाले कारखानों को बेचकर अतिरिक्त आमदनी प्राप्त कर सकते हैं। फसल अवशेषों को मृदा की सतह पर रखकर।

3. पलवार (मल्चिंग)

धान–गेहूँ फसल प्रणाली का 90 प्रतिशत क्षेत्रफल सिंचित है जबकि उपज स्थिरता, भूमि क्षरण, भूजल स्तर का गिरना एवं वायु प्रदषण जैसी समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है। भूमि के गुणों में सुधार एवं उत्पादकता में वृद्धि के लिए

गेहूँ की फसल में पलवार (मल्चिंग) का प्रयोग

मल्चिंग उपयोगी है। इस तरह की समस्याओं को पलवार (मल्चिंग) के प्रयोग से काफी हद तक कम किया जा सकता है। इस आसान विधि में जमीन को सूखी धान की पराली, घास व अन्य फसल अवशेषों की हल्की परत से ढक दिया जाता है जिससे वाष्पीकरण कम होने के कारण गेहूँ की फसल को पानी की कम आवश्यकता पड़ती है। यह परत भूमि तक पहुंचने वाले प्रकाश को अवरूद्ध करके खरपतवार वृद्धि को रोक देता है। मिट्टी का कटाव कम करता है व लाभदायक सूक्ष्म जीवों की संख्या में वृद्धि करता है। भूमि में जैविक पदार्थों में वृद्धि एवं संरचना में सुधार होता है।

निष्कर्ष

किसानों को सभी जीव जन्तु एवं मृदा के स्वास्थ्य का ध्यान रखने और सामाजिक व राष्ट्रीय दायित्व के निर्वाह के लिए फसल अवशेषों के प्रबन्धन का समुचित उपाय करना अति आवश्यक है। इस क्रम में फसल अवशेषों को जलाने से बचने के साथ साथ इनके समुचित प्रबन्धन हेतु सभी कारगर विकल्पों पर विचार एवं अपनाया जाना चाहिए। पर्यावरण पर कोई प्रतिकूल प्रभाव न पड़े, खेतों की उर्वरा शक्ति में सुधार हो और उत्पादित वस्तुओं के पोषक तत्वों में भी कोई कमी न आए, इस सब का एक सम्मिलित प्रभाव यह होगा कि जलवायु में परिवर्तन लाने वाली कृषिजन्य प्रदूषणकारी गैसों का उत्सर्जन तेजी से घटेगा।

प्राकृतिक संसाधन जल की कमी–कारण एवं निवारण

विकास जुन, निशा कटारिया, आर एस छोकर, राजपाल मीना एवं एससी गिल
भाकृअनुप–भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान, करनाल

प्राकृतिक संसाधनों पर विचार किया जाये तो उनमें जल एक महत्वपूर्ण उपहार है जो कि कृषि उत्पादन को प्रभावित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

प्राचीन समय में कहा भी गया है **''जल है तो कल है''** जल बिना जीवन की कल्पना भी नहीं की जा सकती एवं आज देश की जनसंख्या दिन प्रतिदिन बढ़ रही है जिससे आवश्यकताओं में भी प्रतिदिन वृद्धि हुई है। इन आवश्यकताओं की पूर्ति हेतू जल की आवश्यकता भी बढ़ गई है। 1950–51 में भारत में प्रति व्यक्ति प्रतिवर्ष जल उपलब्धता 5177 घन मीटर थी जो कि 2011–12 तक घटकर 1539 घन मीटर रह गई है तथा प्राप्त आकड़ो से पता चलता है अगर समस्या इसी तरह चलती रही तो 2050 तक 1140 घन मीटर रह जाएगी जोकि एक विचारणीय विषय के साथ–साथ एक गम्भीर समस्या भी होगी।

आँकड़ों के अनुसार यदि किसी देश में प्रति व्यक्ति पानी की उपलब्धता 1700 घन मीटर से कम हो, तो उस देश को पानी की कमी वाले देश के रूप में देखा जाता है। भारत में दुनिया की लगभग 17 प्रतिशत आबादी रहती है लेकिन दुनिया का केवल 4 प्रतिशत जल संसाधन ही भारत में उपलब्ध है। भारत की बढ़ती आबादी और उसके साथ–साथ बढ़ती जल मांग तथा मौजूदा पानी की गुणवत्ता में लगातार होती जा रही गिरावट ने एक ऐसी स्थिति उत्पन्न कर दी है जहाँ एक ओर पानी की खपत तेजी से बढ़ रही हैं वहीं दूसरी ओर स्वच्छ पानी की आपूर्ति लगातार कम होती जा रही है। वहीं लगातार जल संसाधनों के प्रदूषण का स्तर भी बढ़ता जा रह है।

जीवन के लिए जल बहुत ही आवश्यक है तथा विचारणीय है कि जल की कमी से कैसे निपटा जाये, कैसे हम जल संरक्षण करें। वर्षा जल, व्यर्थ बह रहे टयूबवेल, नलकूप आदि का पानी किस प्रकार उचित प्रयोग कर उसको संरक्षित कर सकते हैं। पानी की कमी का एहसास होते हुए भी हमारी इसमें भागीदारी शून्य या न के बराबर है।

हमारे देश में बहुत सारे ऐसे राज्य हैं जहाँ पानी की कमी के कारण वहाँ के लोग या तो गाँव, शहर को छोड़कर चले गए या फिर प्यास के कारण छोड़ने पर मजबूर हो रहे हैं। इसके निम्न उदाहरण है।

हरियाणा का मेवात जिला पानी की किल्लत झेल रहा है यहाँ पानी टैंकरों द्वारा आमजन तक पहुँचाया जा रहा है। शायद वो लोग जल के मूल्य को समझते हैं। गुजरात के कच्छ में भी पानी की बहुत कमी है। वहाँ का पानी पीने योग्य नहीं है। भू–जल खारा होने के कारण वर्षा जल को पीने के प्रयोग में लाया जाता है। राजस्थान का बहुत क्षेत्र भी इसी समस्या से ग्रसित हैं जोकि वर्षा के पानी को कुण्ड़ो आदि में इक्ट्ठा कर पीने के लिए प्रयोग में लाते हैं। हमारे पर्वतीय क्षेत्र कश्मीर लेह–लद्दाख में सुबह बर्फ रहती है दिन में धूप के कारण कुछ पानी बहता, जो फिर वहाँ के आमजन पीने में प्रयोग करते हैं। वो लोग जानते हैं कि मिल रहे पानी का प्रयोग कैसे करें। अगर हम हरियाणा की बात करें तो यह राज्य प्रमुख रूप से धान, गेहूँ, गन्ना, कपास आदि फसलों को उगाता आ रहा है। लेकिन आज अगर हम बात करें जल की तो हरियाणा में बहुत बड़ा क्षेत्र भी जल संकट से ग्रसित हो चुका है। बहुत बड़ा क्षेत्र (डार्क जोन) सरकार द्वारा जल की कमी वाला क्षेत्र घोषित कर दिया गया है जो कि नीचे दी गई सारणी–1 के माध्यम से इस प्रकार है।

सारणी 1 : डार्क जोन क्षेत्र (राज्य हरियाणा)

क्र.सं.	जिला	जिलों के अन्तर्गत आने वाले क्षेत्र (खण्ड)
1	कुरूक्षेत्र	लाडवा, पेहवा व शाहबाद
2	पानीपत	बापौली व समालखा
3	करनाल	करनाल खण्ड
4	यमुनानगर	जगाधरी, मुस्तफाबाद, रादौर व सढ़ौरा
5	कैथल	गुहला व राजौंद
6	भिवानी	बाढ़डा, कैरू, लोहारू, बहल व तोशम
7	फतेहाबाद	टोहाना
8	गुरूग्राम	सोहना व गुरूग्राम खण्ड
9	महेन्द्रगढ़	नागल चौधरी, कनीना व अटेली

अब तक हरियाणा के 36 ब्लॉक में पानी की कमी से स्थिति इतनी खराब हो चुकी है कि पानी कृषि के लिए न के बराबर बचा है और भविष्य में शायद यह न भी रहे।

जल प्रदूषण के कारण

केन्द्रीय भूजल बोर्ड द्वारा जारी किए गए आँकड़ो के अनुसार भारत के कुल वार्षिक भूजल संसाधन का लगभग 433 बिलियन घन मीटर व वार्षिक भूजल उपलब्ध 398 बिलियन घन मीटर जिससे 62 प्रतिशत जल का दोहन कर लिया जाता है।

यदि पानी की पर्याप्त उपलब्धता नहीं हो तो अच्छे बीज और उर्वरक भी अपनी पूर्ण क्षमता प्रदर्शित नहीं कर सकते या विफल हो जाते है।

जल प्रदूषण के कारण

भारत में हर साल 4000 बिलियन घन मीटर वर्षा होती है, किन्तु उचित प्रंबधन न होने के कारण इसका केवल 48 प्रतिशत ही सतह और भूजल निकायों में उपयोग किया जाता है। शेष जल बहकर नदियों या सागरों में चला जाता है। इसकी भण्डारण प्रक्रिया में कमी, पर्याप्त बुनियादी ढांचे की कमी, अनुचित जल प्रबन्धन ने एक ऐसी स्थिति पैदा कर दी है जहाँ वास्तव में केवल 18–20 प्रतिशत पानी का ही उपयोग किया जा सकता है। जल संकट का एक कारण यह भी है कि वार्षिक वर्षा का लगभग 75 प्रतिशत मानसून जुलाई–सितम्बर की छोटी अवधि में प्राप्त होता है, उसके वितरण में भी भारी असमानता पाई गई है।

फसल उत्पादन में जल की आवश्यकता

भारत के फसल उत्पादन में लगभग 90 प्रतिशत चावल गेहूँ और गन्ने का उत्पादन होता है ये फसलें सबसे अधिक जल खपत वाली फसलें है।

कृषि एवं इससे सम्बधित गतिविधियों के लिए नहरे–नदियों, भूजल कुएँ, तालाब आदि संसाधन सिंचाई के मूल ढ़ाचे में शामिल हैं। विश्व स्तर पर लगभग 40 प्रतिशत सिंचाई जल की आपूर्ति भूमिगत जल से होती है। इसके विपरित भारत में 50 प्रतिशत से अधिक सिंचाई भूमिगत जल से की जाती है। जिसके परिणामस्वरूप भूमिगत जल में गंभीर गिरावट आई है। खासकर उत्तर पश्चिमी भारत के हिस्सों में जो भविष्य के लिए एक गंभीर चिंता का विषय है।

जल की बढ़ती कमी के कारण हमें सोचना पड़ेगा कि भविष्य में हमारे सामने पानी की समस्या अधिक गम्भीर न हो और पानी का उपयोग सिंचाई व अन्य कार्यों में सही रूप से हो क्योंकि भविष्य में सिंचाई ही पानी का प्रमुख उपयोगकर्ता रहेगा ओर पानी ही सिंचाई का एकमात्र स्त्रोत है। अतः हमारा मुख्य लक्ष्य प्रति बूंद अधिक फसल हो, क्योंकि हमें ज्ञात है, कि हमारे भारत में ही 54 प्रतिशत क्षेत्र पानी की बहुत अधिक कमी से ग्रसित है।

रहीम जी की निम्न पंक्ति शायद यही बता रही हैं कि पानी बहुत अमुल्य है:

"बिना जल के होय नहीं कोई इसे साफ रखने हेतु उपाय करें,

तमाम अगर मिले नहीं जल तो जीवन हैं बेकार"

गिरते भूमिगत जल स्तर के कारण

1. पर्यावरण असंतुलन के कारण वर्षा का असमान होना।
2. कम वर्षा होने के बावजूद भी अधिक जल मांग वाली फसलें उगाना।
3. भूमिगत जल का निरन्तर व अधिक मात्रा में दोहन करना।
4. भूमि की नमी व इसके संरक्षण के लिए किसानों व आम जनों द्वारा उपेक्षा करना।
5. खेतों से नदी नालों में वर्षा जल का अपवाह के रूप में व्यर्थ बह जाना।
6. जल संग्रह के लिए बने तालाबों व अन्य संरचनाओं की अनदेखी होना।
7. पेड़ों की निरन्तर कटाई व चराई।
8. सिंचाई की अच्छी योजनाओं का किसान तक सही ढ़ंग से न पहुचँना व किसानों की भागीदारी न होना।
9. कृषि के अतिरिक्त भी अन्य उद्योगों में जल का अनियन्त्रित दोहन।
10. प्रकृति से प्राप्त संसाधनों जल, व भूमि जैसे संसाधनों के उचित प्रबन्ध का अभाव होना।

जल संरक्षण के उपाय :

1. जल जैसे प्राकृतिक संसाधनों के महत्व को समझें।
2. वर्षा जल को व्यर्थ न बहने दें व उसको संग्रह कर कृषि व अन्य कार्यों में उपयोग में लाएं।
3. भूमि को समतल करवाए व गर्मी में वर्षा से पूर्व गहरी जुताई करवाई जाए।
4. खेत में गोबर की खाद का प्रयोग हरी खाद जैसे ढ़ैचा, मूंग, आदि फसलों को उगायें।
5. खेत के निचले हिस्से में एक तालाब बनाएं जिससे वर्षा का पानी संग्रह किया जा सके।
6. सूक्ष्म सिंचाई प्रणालियाँ अपनाएं जैसे फव्वारा, टपका

सारणी 2 : प्रमुख फसलों की जल मांग

क्र.सं.	फसल का नाम	जल मांग लीटर/प्रति किलो ग्राम खाद्य पदार्थ पैदा करने में
1	धान	4000–5000
2	गन्ना	1500–2000
3	गेहूँ	800–900
4	सोयाबीन	1500–3000
5	मक्का	1100–2100
6	आलू	500–1500

(बूंद–बूंद) आदि।

7. कम जल मांग वाली फसलों का चुनाव करें व फसल अवशेष को खेत में छोड़ें उन्हें जलाएं नहीं।
8. सिंचाई समय पर करें व अच्छी सिंचाई प्रणाली से करें।
9. भूमिगत बोरेवल लगवाएं जोकि वर्षा के पानी को भूमि में दोबारा पहुंचाएं।
10. एक अच्छा कानून भी बनाया जाए जिससे व्यर्थ बह रहे पानी की बर्बादी को रोका जा सके पानी को बर्बाद करने वालों को कानूनी सजा दी जाएं व आम जन को जागरूक किया जाए कि पानी व्यर्थ न बहाये और न बहाने दें।

"धनि रहीम जल पंक को लघु जिय पियत अधाय।।
उदधि बड़ाई कौन है, जगत पियासों जाय।"

डीबीडब्ल्यू 187 (करण वंदना) के व्यवसायीकरण की सफल गाथा

चुनी लाल, अंशुल छाछिया, दिनेश कुमार एवं ज्ञानेन्द्र प्रताप सिंह
भाकृअनुप–भारतीय गेहूँ व जौ अनुसंधान संस्थान, करनाल

फसलों की नई व उन्नत किस्मों का विकास पौध प्रजनकों के कई वर्षों के अथक एवं निरंतर प्रयासों के बाद होता है। इन नई किस्मों को किसानों तक पहुँचने से पहले विभिन्न परिस्थितियों के तहत कई स्थानों पर कड़े परीक्षणों से गुजरना पड़ता है। इसके उपरान्त भी फसलों की नई किस्मों की सफलता काफी हद तक इस बात पर निर्भर करती है कि किसानों के बीच इनका प्रसार कितना जल्दी होता है साथ ही इनके बीज किसानों को पर्याप्त मात्रा व सही कीमत पर कितनी जल्दी उपलब्ध हो पाते हैं। यद्यपि किसानों के बीच बीज उत्पादन और वितरण के लिए देश में सार्वजनिक बीज प्रणालियाँ अच्छी तरह विकसित हैं, लेकिन गेहूँ जैसी फसलों के बीज की भारी मांग को पूरा करने के लिए केवल सरकारी तन्त्र पर्याप्त नहीं है। निजी बीज उद्यमियों/इकाईयों के माध्यम से नई किस्मों का व्यवसायीकरण न केवल सार्वजनिक–निजी भागीदारी को मजबूत बनाता है, बल्कि यह भी सुनिश्चित करता है कि नई व उन्नत किस्मों के बीज किसानों को जल्द से जल्द उपलब्ध हों, ताकि नई किस्मों का व्यापक प्रसार हो सके। इस कार्यक्रम के माध्यम से निजी बीज कम्पनियों के पास उपलब्ध बीज–उत्पादन व बीज विक्रय के बुनियादी ढांचे का सही उपयोग करने का अवसर भी मिलता है। गेहूँ की नई किस्म डीबीडब्ल्यू 187 (करण वंदना) का हाल ही में निजी बीज कम्पनियों के माध्यम से किया गया व्यवसायीकरण इस बात का एक ताजा उदाहरण है कि नई किस्मों को कितनी जल्दी किसानों तक पहुँचाया जा सकता है। इससे किसानों को किस्मों के नए उपलब्ध विकल्पों के बारे में जागरूक करने में भी मदद मिलती है।

भाकृअनुप–भारतीय गेहूँ व जौ अनुसंधान संस्थान, करनाल द्वारा विकसित की गई गेहूँ की किस्म 'डीबीडब्ल्यू' 173 निजी बीज कम्पनियों के माध्यम से व्यवसायीकरण की एक पहल सर्वप्रथम वर्ष 2014 में संस्थान में प्रारंभ हुई थी जिसके तहत गेहूँ की तीन किस्मोंः डीबीडब्ल्यू 88, डीबीडब्ल्यू 71, डीबीडब्ल्यू 90 तथा जौ की एक किस्म डीडब्ल्यूआरयूबी 52 के कुल 29 संस्थाओं से समझौता के ज्ञापन पर हस्ताक्षर किए गए। पुनः वर्ष 2018 में 53 विभिन्न बीज कम्पनियों के साथ समझौते के ज्ञापन हुए जिससे कुल 687940/–रूपये (छः लाख सतासी हजार नौ सौ चालीस) का राजस्व प्राप्त हुआ। इससे उत्साहित होकर संस्थान द्वारा विकसित गेहूँ की नई किस्म डीबीडब्ल्यू 187 (करण वंदना) के व्यवसायीकरण में संस्थान की प्रौद्योगिकी प्रबंधन इकाई बहुत सफल रही है। इस सफलता के पीछे संस्थान के निदेशक की अध्यक्षता में संस्थान प्रौद्योगिकी प्रबंधन समिति (आईटीएमसी) द्वारा बनाई गई योजना रही है। इसके अतिरिक्त इस नई किस्म के प्रजनकों व संस्थान की बीज इकाई के वैज्ञानिकों से मिले भरपूर सहयोग व अमूल्य योगदान के कारण वर्ष 2019 में संस्थान ने कुल 163 बीज कम्पनियों के साथ समझौते के ज्ञापन हस्ताक्षरित करने में अतुलनीय सफलता प्राप्त की है। इसके परिणामस्वरूप संस्थान ने इस कार्यकलाप से वर्ष 2019 में कुल 9926160/–रूपये (निन्यानवे लाख छबीस हजार एक सौ साठ) का राजस्व अर्जित किया है।

इंटरनेट, प्रिंट मीडिया और सोशल मीडिया जैसे फेसबुक और व्हाट्स एप आदि बीज कम्पनियों के बीच गेहूँ की इस किस्म के व्यवसायीकरण के बारे में जानकारी फैलाने में बहुत उपयोगी रहे हैं। इन बीज कम्पनियों ने अपने विभिन्न व्हाट्स एप समूहों में इस किस्म के व्यवसायीकरण के बारे में जानकारी सांझा करके इस जानकारी को दूर–दूर तक प्रसारित किया है। इससे न केवल बीज कम्पनियों के बीच जागरूकता पैदा करने में मदद मिली, बल्कि किसानों के साथ–साथ बीज कम्पनियों से आई.टी.एम.यू. को कई बीज कम्पनियों ने गेहूँ की किस्म डीबीडब्ल्यू 187 के उत्पादन और बिक्री के लिए संस्थान के साथ समझौते के ज्ञापन हस्ताक्षरित करने की अपनी मंशा जाहिर की।

''करण वंदना''(डीबीडब्ल्यू 187) को मुख्य रूप से उत्तर प्रदेश, बिहार, झारखंड, असम और पश्चिम बंगाल में सिंचित परिस्थितियों में समय से गेहूँ की बुआई के लिए एक नवीनतम एवं बेहतरीन विकल्प है। 25 अगस्त, 2018 को झारखंड के रांची में 57वीं अखिल भारतीय गेहूँ और जौ कार्यशाला के दौरान **''किस्म पहचान समिति''** द्वारा इस किस्म की पहचान की गई थी। मौजूदा गेहूँ की लोकप्रिय किस्मों की तुलना में, जैसे एचडी 2967, के 1006, के 0307, एचडी 2733, और डीबीडब्ल्यू 39 गेहूँ के किसानों को उच्च आर्थिक लाभ और गेहूँ में बेहतर गुणवत्ता प्रदान करने के लिए 1 अप्रैल, 2019 के राजपत्र अधिसूचना एस.ओ. 1498 ई के माध्यम से अधिसूचित किया गया।

तत्पश्चात् 6 जनवरी 2020 को हुई बैठक में इस किस्म की सिफारिश उत्तर–पश्चिम मैदानी क्षेत्र (पंजाब, हरियाणा, दिल्ली, राजस्थान (कोटा एवं उदयपुर संभाग को छोड़कर), पश्चिमी उत्तर प्रदेश (झांसी संभाग को छोड़कर),

जम्मू–कश्मीर (जम्मू और कठुआ जिलों के कुछ हिस्से), हिमाचल प्रदेश (ऊना व पोंटा घाटी) और उत्तराखंड़ के तराई क्षेत्र के लिए अधिसूचित की गई।

तीन वर्षों के लगातार परीक्षणों के दौरान, 'करण वंदना' (डीबीडब्ल्यू 187) ने गेहूँ की लोकप्रिय किस्मों से अधिक उपज दर्ज की गई है। इसके अतिरिक्त इस किस्म ने उत्तरी–पूर्वी मैदानी क्षेत्रों में 48.8 कुंतल प्रति हैक्टर की औसत पैदावार दर्ज की है। गेहूँ की इस किस्म में पीला रतुआ, पर्ण झुलसा रोग और ब्लास्ट जैसे गेहूँ के रोगों के प्रति प्रतिरोधकता भी है। इस किस्म में 64.7 कुंतल प्रति हैक्टर उत्पादन देने की क्षमता है। इस किस्म को उत्तर पूर्वी मैदानी क्षेत्र में परिपक्व होने के लिए लगभग 139–157 दिन लगते हैं और इसके पौधों की ऊँचाई 105 सें.मी. तक होती है। उत्तर पश्चिमी मैदानी क्षेत्र में किए गए प्रशिक्षणों में इस प्रजाति की औसत उपज 61.3 कुं/हे. है तथा उपज क्षमता 96.6 कु./हे. की है। इस किस्म में बेहतर चपाती बनाने की गुणक्ता (7.7/10 स्कोर) के साथ–साथ इसके दानों में लोहा (आयरन) की भरपूर मात्रा (43.1 पीपीएम) भी है।

आने वाले समय में सभी अनुसंधान संस्थानों को अपने संसाधनों के लिए आत्मनिर्भर होना पड़ेगा, इस दिशा में यह एक प्रारम्भिक प्रयास है। जिसके माध्यम से नई किस्मों को निजी कंपनियों एवं बीज उत्पादक समूहों के माध्यम से अच्छा राजस्व अर्जित करते हुए किसानों के बीच कम समय में प्रचालित–प्रसारित एवं लोकप्रिय बनाते हुए गेहूँ के उत्पादन को और बढ़ाया जा सकता है।

तालिकाः– डीबीडब्ल्यू 187 (करण वंदना) के महत्वपूर्ण गुण

गुण	उत्तर पश्चिमी मैदानी क्षेत्र		उत्तर पूर्वी मैदानी क्षेत्र	
	दायरा	औसत	दायरा	औसत
बाली निकलने की अवधि (दिनों में)	94–103	99	62–85	77
परिपक्व होने की अवधि (दिनों में)	139–157	148	110–140	120
पौधे की ऊँचाई (सें.मी.)	104–106	105	86–119	100
हजार दानों का वजन (ग्राम)	38–49	44	27–54	41
उपज (कुं/है.)	–	61.3	–	48.8
उपज क्षमता (कुं/है.)	–	96.6	–	64.7

करण वंदना

सटीक डेटा रिकॉर्डिंग के लिए गेहूँ में फील्ड फिनोटाइपिंग की सामान्य सिफारिशें

[1]आशीष ओझा, [2]चन्द्रमौली बग्गा एवं [1]सोनू सिंह यादव
[1]भाकृअनुप–भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान, करनाल
[2]आनुवंशिकी और पादप प्रजनन विभाग, महात्मा ज्योति राव फूले विश्वविद्यालय, जयपुर

प्लांट फिनोटाइपिंग में अभी भी तकनीकी विकास व महत्वपूर्ण कृषि संबंधी लक्षणों की सटीक रिकॉर्डिंग में बहुत अड़चने हैं। फिनोटाइपिंग तकनीकों में आगे की प्रगति, पादप चयन कार्यक्रमों की दक्षता में सुधार के लिए आवश्यक है। प्रजनकों और किसान दोनों द्वारा स्वीकार की जाने वाली फिनोटाइपिंग तकनीकों के लिए लागत दक्षता पर विचार किया जाना चाहिए। पादप प्रजनन और खेती में उच्च–क्षेत्र फ़िनोटाइपिंग के लिए अलग–अलग आवश्यकताएं हैं, जिसकी इस लेख में तुलना और चर्चा की गयी है।

शोधकर्ताओं के लिए यह महत्वपूर्ण है कि वे प्रायोगिक उद्देश्यों को स्पष्ट रूप से परिभाषित करें ताकि सही ढंग से सबसे उपयुक्त प्रायोगिक डिजाइन, नमूना लेने की विधि और माप लेने की तकनीकी का चयन किया जा सके। समय और संसाधनों को ध्यान में रखते हुए सटीक योजना बनाना सुनिश्चित करें।

प्रायोगिक डिजाइन के लिए जीनोटाइप के फिज़ियोलोजिकल लक्षण

वातावरण का चुनाव

यह प्रयोग के उद्देश्यों के लिए बहुत जरुरी है, (जैसे, तापमान प्रोफाइल, दैनिक विकिरण, वर्षा, अक्षांश, मिट्टी के प्रकार आदि) और उचित उपचार देना है। (यानि बुआई की तारीखे, फसल प्रबंधन, आदि). यह लक्षित वातावरण के भीतर कई स्थानों पर परीक्षण करने पर उनकी प्रतिलिपि की नकल करने के लिए सलाह दी जाती है।

जीनोटाइप/जननद्रव्य का विकल्प

जीनोटाइप/जननद्रव्य का चयन करते समय निम्नलिखित बातों पर विचार करना चाहिए

- लक्षित वातावरण के लिए सामान्य अनुकूलन
- फिनोलॉजी की स्वीकार्य सीमा
- स्वीकार्य सस्य विज्ञान प्रकार
- कीट और रोग प्रतिरोध
- आनुवंशिक और विशेषता विविधता
- ऊंचाई में कमी के लिए विपरीत जीन तो नहीं
- फोटोपीरियड (पीपीडी) या वृद्धि की आदत (वीआरएन); और कारकों में कम भिन्नता जो विश्लेषण को भ्रमित कर सकती है (जैसे, पौधे की ऊंचाई)

जीनोटाइप्स/जननद्रव्य की संख्या

प्रारंभिक अवलोकन करने के लिए आनुवंशिक विविधता की एक विस्तृत श्रृंखला के साथ शुरुआत करें। बाद के फसल चक्रों में, जब विस्तृत अवलोकन के लिए आनुवंशिक विविधता की पूरी श्रृंखला को कर लेते हैं तो जीनोटाइपो की संख्याओं को सेलेक्शन द्वारा उनकी उपयोगिता के आधार पर काफी हद तक कम किया जा सकता है।

प्रयोगों के लिए पौधों की संख्या और प्रकार

पौधों को जीनोटाइप की संख्या, ट्रीटमेंट, परीक्षण किए जा रहें प्रतिकृतियों की संख्या तथा प्रयोग के उद्देश्यों के अनुसार निर्धारित किया जाता है। रेप्लिकेटेड सांख्यिकीय डिज़ाइन का उपयोग विस्तृत फिनोटाइपिंग के लिए किया जाता है (जैसे, आरबीडी, लैटिस डिज़ाइन), या अन–रेप्लिकेटेड डिज़ाइन का उपयोग रेप्लिकेटेड चेक्स (जैसे, संवर्धित डिजाइन, स्थानीय चेक्स) के साथ ज्यादा संख्या में या बड़ी पादप पापुलेशन को जल्द स्क्रीन करने में करते हैं। बाहरी प्रभावों को अवशोषित करने के लिए परीक्षण के आस–पास बफर प्लॉट भी शामिल करें।

प्रायोगिक स्थापना

एक क्षेत्र में लगातार क्रमबद्ध प्रयोग स्थापना के लिए इंटर–प्लॉट भिन्नता को कम करना महत्वपूर्ण है। इसके साथ–साथ, क्रमबद्ध सस्यविज्ञान (जैसे, बुआई की गहराई, बीज की गुणवत्ता, पानी की उपलब्धता, कीट और रोग नियंत्रण); आस–पास के प्रभावों से बचना (जैसे, पेड़ों और इमारतों की छाया); ग्रेडिएंट्स पर विचार करना (जैसे, ढलान के साथ ब्लॉक उपचार); पंक्ति अभिविन्यास (यानि, आमतौर पर उत्तर/दक्षिण दिशा में अंतर–प्लॉट छायांकन को कम करने के लिए विशेष रूप से जब सूर्य कोण कम होता है); तथा मिट्टी की विषमता को कम करना (जैसे, फील्ड के सबसे अच्छे और सबसे सुसंगत भाग को उपयोग

क्या करना चाहिए	क्या नहीं करना चाहिए
एक नमूना आकार चुनें जो सटीक डेटा की अधिकतम डिग्री प्रदान करता है। प्रतिकृति की संख्या, वैरिएबल का अध्ययन, भूखंडों के बीच परिवर्तनशीलता, वांछित सटीकता की डिग्री, प्रयोगात्मक डिजाइन और उपलब्ध संसाधनों पर विचार करें।	प्लॉट की सीमाओं से नमूना न लें (यानी, बाहरी पंक्तियों/पंक्तियों का अंत (आमतौर पर 50 सेमी) प्लॉट का साइज़) क्योंकि ये अप्रमाणिक वृद्धि दिखाएंगे। जब पुरे सीजन में बार–बार नमुने लेने हो तब नमुनों के बीच स्थिरता/समानता सुनिश्चित न करे।
बेतरतीब ढंग से नमूनों का चयन करें: (1) चयन पूर्वाग्रह से बचने के लिए आधार या स्पाइक से आधार या पौधों का चयन करें (जैसे, क्लोरोफिल सामग्री के लिए); या (2) क्वाड्रेट्स रखकर क्षेत्र का चयन करें या यादृच्छिक (जैसे, बायोमास में) के लिए पंक्तियों का चयन करें।	प्लॉट के अप्रमाणिक हिस्सों से नमूना न लें (जैसे, ख़राब स्थापना के क्षेत्र और विशिष्ट रूप से कम वृद्धि/अच्छी वृद्धि)। इन क्षेत्रों को फसल के बाद के विकास चरणों के दौरान पहचान में सहायता के लिए प्रारंभिक वृद्धि के दौरान चिह्नित किया जाना चाहिए।
व्यवस्थित रूप से नमूने का चयन करें: (1) किसी पूर्व निर्धारित स्थिति (जैसे, हर 10 वें स्टेम) की गिनती करके पूल या पौधों का चयन करें; या (2) पूर्व निर्धारित दूरी पर क्षेत्र या प्लॉट में क्षेत्रों का चयन करते है।	जो क्षेत्र या भूखंड अप्रमाणिक हैं वहाँ से नमूने के लिए पौधों या क्षेत्रों का चयन न करें। सामान्य तौर पर, नमूनों के दृश्य चयन से बचें (जब तक नमूना बहुत स्पष्ट रूप से प्रतिनिधि नहीं है)।
उप–नमूने और ग्रैब–सैम्पलिंग का उपयोग करें जहां एक पूरे चतुर्भुज नमूने को मापना संभव नहीं है (उदाहरण के लिए, समय या श्रम में बाधाओं के कारण और स्थान/संसाधन के उपयोग को कम करना)	प्लॉट के एक हिस्से में सैम्पलिंग को प्रतिबंधित न करें। प्लॉट के चारों ओर नमूनों को वितरित करें जितना संभव हो उतना प्लॉट शामिल करें (उदाहरण के लिए, बेड डिज़ाइन में दो–पंक्ति लगे गयी है, सभी पंक्तियों या दोनों बेडों से समान रूप से नमूना लेना उचित होगा)।

क्या करना चाहिए	क्या नहीं करना चाहिए
प्रयोगात्मक त्रुटि को कम करने और डेटा के बीच तुलनात्मकता बढ़ाने के लिए यथा संभव सटीक और लगातार माप लें, प्रजातियों के बीच अंतर को कम करने का मतलब सांख्यिकीय विश्लेषण की सफलता को बढ़ाना है।	सैम्पलिंग के दौरान प्रेक्षक/उपकरण संचालक को न बदलें। यह महत्वपूर्ण है कि एक ही व्यक्ति नमूना एकत्र कार्यक्रम या प्रयोगात्मक इकाई के भीतर सभी माप लेता है (जैसे, पुनरावृत्ति या ब्लॉक)।
स्वैच्छिक प्रक्रियाओं का पालन करें और बड़े पैमाने पर प्रशिक्षित पर्यवेक्षक/ऑपरेटर (विशेष रूप से व्यक्तिपरक माप/टिप्पणियों के लिए)। क्षेत्र प्रपत्र यानी डाटा रिकॉर्ड की शीट पर पर्यवेक्षक/ऑपरेटर का नाम व तारीख, समय आदि दर्ज करना न भूलें।	एकल माप न लें। दो या अधिक वैल्यूज को प्रति प्लॉट में लिया जाना चाहिए और गलत वैल्यूज को सुनिश्चित करने की तुलना में त्रुटियों और उपकरण की खराबी को तुरंत देखा जाता है और वैल्यूज को छोड़ दिया जाता है। माप को दुबारा लेना आवश्यक है (जैसे, जहां रीडिंग में 10 प्रतिशत से जायदा फर्क हो)।
बड़े परीक्षणों को मापने के दौरान संभावित सटीक रीडिंग की योजना बनाएं। त्रुटियों और काम करने वाले की थकान को कम करने के लिए बड़े परीक्षण के लिए, परीक्षण छोटे क्षेत्रों में विभाजन करे (यानि, प्रतिकृति, ब्लॉक, पंक्तियों और कतार) एक अच्छा सहायक स्पॉट त्रुटियों को बताने में मददगार व उपयोगी हो सकता है।	फील्ड ट्रायल मैप लेना न भूलें और व्यक्तिगत रूप से मदद करने के लिए प्रत्येक प्लॉट को लेबल करें. पर्यवेक्षक/वैज्ञानिक को उन्मुख करने में मदद करने के लिए फील्ड ट्रायल मैप लेना और व्यक्तिगत रूप से प्रत्येक प्लॉट को लेबल करना न भूलें।
प्रत्येक उपचार/पर्यावरण के लिए विशिष्ट उपकरणों के अवलोकन/माप और रीडिंग के लिए अपेक्षित वैल्यूज से परिचित हों। प्लॉट नंबर के साथ लेबल की जाँच करें।	कार्य प्रणाली से परिचित हुए बिना कार्य की शुरुआत न करें, पूर्व–तैयारी उपकरण, क्षेत्र को तैयार होने में पर्याप्त समय लेना और निर्बाध प्रसंस्करण जैसी असुविधा से बचने के लिए पहले से कार्यशाला का आयोजन करें।

करें क्योंकि ये प्रयोग साइट स्ट्रेस ट्रीटमेंट के दशा में परिवर्तन के लिए अतिसंवेदनशील हैं)।

प्रयोगात्मक प्लॉट का आकार

प्रत्येक प्लॉट में डेटा की सटीकता की अधिकतम डिग्री प्रदान करने के लिए पर्याप्त फसल मटेरियल होनी चाहिए (अनियंत्रित वैरिएबल्स और सीमा प्रभावों के कारण भिन्नता को कम करना) ताकि अपने साथ वाले जीनोटाइप से स्वतंत्र रूप से व्यवहार किया जा सके (जैसे, पानी, उर्वरक, कीटनाशक अनुप्रयोग और कटाई तकनीक)। बहुत छोटे भूखंड अंतर–प्लॉट भिन्नता में वृद्धि करेंगे, वैसे भी, इष्टतम प्लॉट आकार में क्षेत्र के अनुभव और वैज्ञानिक निर्णय की आवश्यकता होती है।

डेटा का विश्लेषण और विवेचना

डेटा के लिए मूल्यांकन करते समय निम्नलिखित बातों का विशेष ध्यान रखना चाहिए।

1. महत्वपूर्ण और सुसंगत अभिव्यक्ति के वांछनीय लक्षण।
2. विशेष लक्षणों के बीच सहयोगिता के साथ–साथ जीनोटाइप का प्रदर्शन।

गैर समरूप आबादी में लक्षणों के बीच सहयोग की व्याख्या और प्रदर्शन अन्य कारकों द्वारा भ्रमित हो सकता है, जैसे फिनोलॉजी में अंतर, पौधे का प्रकार आदि।

नमूना और नमूना चयन

फसल में पौधों, पौधों और क्षेत्रों के असंतुलन और प्रतिनिधि चयन के लिए, यह जरुरी है कि नमूना प्रक्रिया के माध्यम से पौधों की आबादी के लिए एक समान चयन मानदंड बनाए रखने के लिए निम्नलिखित बातों पर विचार करना चाहिए।

माप और अवलोकन करना

निम्नलिखित बिंदुओं को सटीक और प्रतिनिधि माप, टिप्पणियों और परिणामों के लिए ध्यान में रखा जाना चाहिए। माप प्रक्रिया के दौरान समान दृष्टिकोण बनाए रखना महत्वपूर्ण है। उपकरणों का उपयोग करते समय, उपकरणों के सही उपयोग के लिए सामान्य सिफारिशें उपकरण कैटलॉग में अवश्य पढ़ें।

परीक्षण प्लॉट्स / फील्ड का डाटा प्रपत्र

परीक्षण प्लॉट्स या फील्ड में परीक्षण के डाटा को लिखने के लिए एक स्पष्ट और विस्तृत प्रपत्र तैयार करना चाहिए। यह भी सुनिश्चित करें कि प्रत्येक जीनोटाइप पर उसका टैग पूरी जानकारी (जैसे, साल, जीनोटाइप का नाम, ब्लाक संख्या, इत्यादि) के साथ लिख है या नहीं। परीक्षण का नाम, नमूनाकरण की तिथि, पर्यावरण (जैसे, या तो 'सिंचित' 'सूखा' या 'ऊष्मा' आदि), उपचार, पादप विकासात्मक अवस्था, वैज्ञानिक / प्रेक्षकों का नाम, डेटा रिकॉर्डिंग का प्रारंभ और समाप्ति समय, पर्यावरण निरीक्षण, (हवा का तापमान, सापेक्ष आर्द्रता आदि), कोई भी प्रासंगिक अवलोकन (जैसे, हवा, फसल की स्थिति आदि) समय समय पर फील्ड डाटा प्रपत्र में ही दर्ज किया जाना चाहिए।

प्लॉट फिनोटाइपिंग अभी भी प्रजनन और खेती के लिए अड़चन है क्योंकि उनके व्यवहारिक अनुप्रयोगों के लिए विभिन्न चुनौतियाँ मौजूद हैं। उपरोक्त सभी सावधानियों को ध्यान में रखने से हम सटीक फिनोटाइपिंग करते हुए डाटा को उचित तरीके से माप सकते हैं और अपने शोध की गुणवत्ता को बढ़ा सकते हैं।

गेहूँ की फसल में लगने वाले मुख्य कीट तथा उनका प्रबंधन

[1]अर्पित गौड़, [2]दिनेश चौधरी एवं [2]आरएस छोकर
[1]हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार
[2]भाकृअनुप–भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान, करनाल

गेहूँ भारत देश की मुख्य खाद्यान्न फसल है। इस फसल के द्वारा विश्व के अनेको देशों में रहने वाले निम्न और मध्यम आय वाले लोगों के भोजन की पूर्ति होती है। गेहूँ की फसल में कीटों, रोगों व सूत्रकृमियों के द्वारा 5–10 प्रतिशत तक उपज की हानि होती है। इससे गेहूँ के दानों की गुणवत्ता में अधिक गिरावट आ जाती हैं। विभिन्न प्रकार के कीटों के द्वारा फसलों को उगाने से लेकर पकने तक तथा कटाई के बाद भंडारगृहों में भी नुकसान पहुँचता हैं। गेहूँ की फसल में मुख्य रूप से दीमक, सैनिक कीट, कटुआ कीट, माहू तथा तना मक्खी आदि कीटों का प्रकोप अधिक होता है। देश की बढ़ती हुई जनसंख्या के आधार पर खाद्यान्न की पूर्ति के लिए कीटों के द्वारा होने वाली क्षति को कम करना अति आवश्यक है। अगर कीटों का समय पर नियंत्रण नहीं किया गया तो यह कीट खाद्यान्न आपूर्ति में बाधक बन सकते हैं। इन कीटों के नियंत्रण के लिए ऐसी तकनीक का उपयोग किया जाना चाहिए जिससे अधिक उत्पादन के साथ–साथ उत्पादन लागत भी कम हो एवं मानव स्वास्थ्य के लिए भी सुरक्षित हो। जहाँ तक संभव हो इन कीटों का भक्षण जैविक कीटों के द्वारा तथा गर्मियों (मई–जून) के महीने में गहरी जुताई करके खेत को खुला छोड़कर करना चाहिए। इससे लागत में भी कमी आएगी तथा कीटों का नियंत्रण भी लम्बे समय के लिए हो सकेगा।

गेहूँ की फसल के मुख्य हानिकारक कीट

दीमक

दीमक छोटे–छोटे कीट हैं। गेहूँ की फसल में इसका प्रकोप अधिक होता है। इसके प्रकोप से गेहूँ के अंकुरित 25 प्रतिशत पौधे नष्ट हो जाते हैं। दीमक ज़मीन में सुंरग बनाकर रहती हैं। यह मुख्य रूप से असिंचित व हल्की भूमि में अधिक नुकसान पहुंचाती है। दीमक का रंग हल्का भूरा होता है। दीमक अपना प्रभाव जड़ से तने की ओर करती है। पहले यह जड़ को नष्ट करके पौधे को सूखा देती है तथा फिर उसके तने को नष्ट कर देती है। एक दीमक रानी एक दिन में 40,000 अंडे दे सकती है। यह अधिकतर फसल अवशेष तथा बिना सड़ी गोबर की खाद से बढ़ती है।

प्रबंधन

- गोबर की अच्छी तरह से विघटित खाद का उपयोग करना चाहिए।

- बीजों को बुवाई से पूर्व इमिडाक्लोप्रिड 70 डब्ल्यूएस 0.1 प्रतिशत से उपचारित करके बुवाई करनी चाहिए।
- दीमक का प्रकोप होने पर नीम या करेले के रस का छिड़काव करना चाहिए इसकी तीक्ष्ण गंध से दीमक धीरे–धीरे समाप्त हो जाती है।
- खेत से फसल अवशेषों को नष्ट कर देना चाहिए।
- परभक्षी का उपयोग करना चाहिए।

सैनिक कीट

इस कीट की सुण्डी गेहूँ की फसल को अधिक नुकसान पहुँचाती है। इन कीट अण्डों से निकलने वाली सुण्डी हवा के द्वारा से एक पौधे से दूसरे पौधे पर पहुँच जाती हैं। इस सुण्डी का प्रभाव सर्वाधिक फरवरी–मार्च के महीने में दिखाई देता है। इसकी नवजात सुण्ड़ी बहुत अधिक गतिशील होती है। इसके कीट का रंग भूरा होता है। इसकी सुण्डी सबसे पहले पौधे की कोमल पत्तियों को खाती है तथा धीरे–धीरे पौधे की पुरानी पत्तियों को भी नष्ट कर देती है। इस सुण्डी के आक्रमण से पौधे का आकार कंकाल जैसा हो जाता है।

प्रबंधन

- गर्मियों (मई–जून) के दिनों में गहरी जुताई।
- खेतों के आस–पास किसी भी प्रकार का खरपतवार हो उखाड़ कर नष्ट कर देना चाहिए।
- फसल अवशेषों को जलाकर नष्ट कर देना चाहिए।

- कीटों का अधिक प्रकोप होने पर क्विनॉलफॉस 25 ईसी 1 लीटर मात्रा को 700 लीटर पानी मे घोलकर प्रति हैक्टर छिड़काव करना चाहिए।
- जैविक नियंत्रण एजेंटों का उपयोग करना चाहिए।

माहू

यह कीट आकार में छोटा होता है। यह पौधों का रस चूसने का कार्य करता है। यह कीट भारत के लगभग सभी क्षेत्रों में पाया जाता है। इस कीट को हरी मक्खी के नाम से भी जाना जाता है। इसका प्रकोप जनवरी से मार्च तक अधिक होता है। इस कीट की रूप पंखहीन तथा पंखवाली दोनों अवस्थाएं पायी जाती हैं। इस कीट के द्वारा पौधे की वृद्धि को अत्यधिक मात्रा में हानि होती है।

प्रबंधन

- इस कीट का आक्रमण दिखाई देने पर शुरूआती अवस्था में ही पौधे को उखाड़कर उसे नष्ट कर देना चाहिए।
- आक्रमण अधिक होने पर बीटी 1 कि.ग्रा. प्रति हैक्टर की दर से छिड़काव करना चाहिए।
- नीम का रस या नीम का तेल 100 लीटर पानी में मिलाकर छिड़काव करें।
- गेहूँ की फसल में नत्रजन उर्वरकों का उपयोग फसल की आवश्यकता अनुसार ही करना चाहिए।
- जैसे ही कीट का प्रकोप दिखाई देने लगे पीले चिपचिपे ट्रैप का प्रयोग करें ताकि माहू ट्रैप पर चिपककर मर जाये।

गुलाबी तना बेधक

इस कीट का प्रकोप पूरे भारत में है। यह अपना प्रभाव रबी के मौसम में दिखाता है। इस कीट का प्रारंभिक चरण फसलों के लिए अत्यधिक हानिकारक है। इसकी झांझे चिकने बैलनाकार शरीर के सुण्डी साथ गुलाबी भूरे रंग की होती है। यह पौधें के तनों के अन्दर पहुँच कर उन्हें बीच से खोखला बना देती है तथा इसके कारण पौधा धीरे–धीरे नीचे से सूखता हुआ नष्ट हो जाता है और पुराने पौधें पर सफेद बालियाँ उत्पन्न हो जाती है। यह कीट पत्तियों पर तथा भूमि पर अण्डे देता है।

प्रबंधन

- फसल–चक्र का उपयोग करना चाहिए।
- संक्रमित पौधों को उखाड़कर नष्ट कर देना चाहिए।
- फसल में अधिक प्रकोप होने पर क्लोरपारीफॉस 20 ईसी का 40 मिली/टंकी (15 लीटर) की दर से छिड़काव करें।
- गर्मियों (मई–जून) के महीने में गहरी जुताई करके खेत को खुला छोड़ देना चाहिए।

तना मक्खी

इस कीट का प्रकोप नवम्बर से मार्च तक अधिक होता है। इसमें मादा मक्खी नर से बड़ी होती है। इसका भुनगा (मेगट) गुलाबी सफेद रंग का होता है। इस कीट का प्रौढ़ घरेलू मक्खी के जैसा दिखाई देता है। यह कीट पौधे के तने का अन्दर वाला भाग खाकर उसमें सुरंग बना देता है तथा इससे तना कमजोर होकर पौधा पीला पड़ जाता है। इस कीट की मादा मक्खी अण्डे पत्तियों के निचले भाग में देती है।

प्रबंधन

- गेहूँ की फसल की बुआई 1–15 नवम्बर के दौरान करे।
- फसल–चक्र का उपयोग करना चाहिए।
- खेत में पानी की मात्रा पर्याप्त रखनी चाहिए।
- कीट का प्रकोप अधिक होने पर मोनोक्रोटोफास 36 प्रतिशत एसएल 650 मि.ली. मात्रा का पानी में घोल बनाकर प्रति हैक्टर की दर से छिड़काव करे।
- खेत के आस–पास खरपतवारों को नष्ट कर देना चाहिए।

ड्रोन : एक अद्भुत वैज्ञानिक खोज

[1]सूरज गोस्वामी एवं [2]सुदेश सिंह चौधरी
[1]भाकृअनुप–भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान सस्थान, करनाल
[2]मालवीय राष्ट्रीय प्रौद्योगिकी संस्थान, जयपुर

परिचय

हमारे देश की 70 प्रतिशत से अधिक जनसंख्या के कृषि पर निर्भर होने के कारण ही भारत को कृषि प्रधान देश भी कहा जाता है। आज जहाँ प्रकृति का हर संसाधन जलवायु परिवर्तन व भूमंडलीकरण के प्रकोप से जूझ रहा है, उससे हमारे कृषि सम्बंधित संसाधन भी अछूते नहीं रहे हैं। बदलते परिवेश में संसाधनों की कमी, प्रदूषण व मानवनिर्मित कारणों से प्रभावित कृषि में बढ़ती जनसंख्या को भोजन उपलब्ध करवाना कृषि जगत के लिए एक चुनौती की तरह है। वर्तमान में कृषि जगत से जुड़े कई शोध संस्थानों का आकर्षण भी इसी ओर है कि कम से कम संसाधन का प्रयोग कर ज्यादा से ज्यादा उत्पादन किया जाये।

इन्हीं शोध संस्थानों के अथक प्रयासों का परिणाम है कि एक उपकरण ड्रोन, एक वरदान के रूप में उभरा है। इस उपकरण का अविष्कार सुरक्षा के उद्देश्य से हुआ था जोकि बाद में कृषि में भी उपयोगी सिद्ध हुआ है। ऐसा नहीं है कि कोई हवा में उड़ने वाला यन्त्र पहली बार कृषि में उपयोग में लाया जा रहा है। इससे पहले भी 1920 में कृषि विमान का उपयोग किया गया था। कृषि विशेषज्ञ आकाश से फसल के स्वास्थ्य का आकलन करने के लिए उपग्रहों का उपयोग बहुत पहले से करते आ रहे हैं।

ड्रोन के कार्य करने का सिद्धांत

यह उपकरण सुदूर संवेदन (रिमोट सेंसिंग) (चित्र 1) के सिद्धांत पर काम करता है जिसका अर्थ है किसी वस्तु को दूर से देखकर उसका आंकलन करना उसका विश्लेषण करना, जो कार्य को करती है। प्रकाश जोकि विद्युत चुम्बकीय वर्णक्रम (इलेक्ट्रोमैग्नेटिक स्पेक्ट्रम) अंन्तर्गत विभिन्न किरणों का एक समूह है, और यह विदित है कि विभिन्न किरणे विभिन्न तरह से अलग–अलग परावर्तित होती हैं जोकि वस्तु के आकार व आकृति पर निर्भर करता है। जब हम आँखों से इतनी वस्तुओं का आकलन कर पाते हैं, जोकि विद्युत चुम्बकीय वर्णक्रम का थोड़ा सा भाग है इसी प्रकार भिन्न–भिन्न प्रकार के कैमरे जोकि विद्युत चुम्बकीय वर्णक्रम पूरे समूह का प्रयोग कर हमें कई तरह की जानकारी प्रदान कर सकते हैं। खेती से जुड़े आंकड़ों के लिए सरकार द्वारा पहले ही कई प्रकार के उपग्रह अंतरिक्ष मे भेजे जा चुके हैं परन्तु उनका रेसोलुशन (एक चित्र में कम से कम आकार का क्षेत्र जिसकी केवल एक संख्या हो) कम है साथ ही समय अनुसार चित्र का मिल पाना भी एक समस्या है। इस प्रकार के व्यवधानों पर विजय पाने के लिए ड्रोन एक उपयोगी उपकरण है।

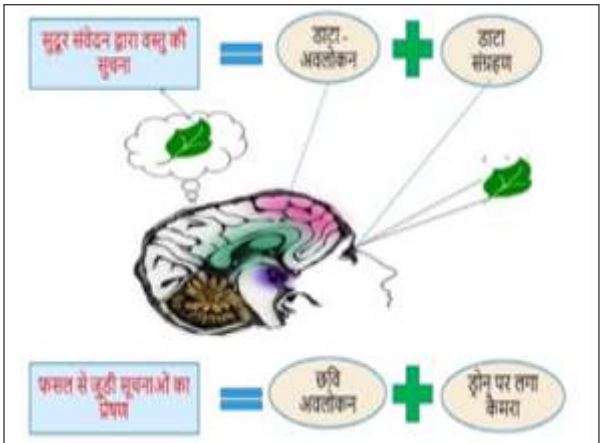

चित्रः 1 ड्रोन का सिद्धान्त (सुदूर संवेदन)

ड्रोन का उपयोग

ड्रोन का उपयोग कई क्षेत्रों में बढ़–चढ़ कर किया जा रहा है, विभिन्न क्षेत्रों से होकर ही यह कृषि क्षेत्र तक पहुँचा है (चित्र 2)।

चित्रः 2 ड्रोन का विभिन्न क्षेत्रों में प्रयोग

ड्रोन के कृषि क्षेत्र में उपयोग व लाभ

ड्रोन अब तक कृषि से जुड़े कार्यों में किसानों की सहायता कर चुका है जैसे कि मृदा और क्षेत्र विश्लेषण, रोपण, फसल पर छिड़काव, फसल की निगरानी, सिंचाई का समय निर्धारण, फसल स्वास्थ्य मूल्यांकन, ड्रोन के द्वारा खेत का सर्वे करना, उर्वरकों व खेत में जल के लिए सुनिश्चित जगह व समय के लिए सूचनात्मक उपकरण की तरह कार्य करना इत्यादि (चित्र 3)। विदेशों में ड्रोन का प्रयोग व छवि विश्लेषण (इमेज प्रोसेसिंग) की जानकारी कई युवाओं को

चित्र 3: ड्रोन का सिद्धान्त (सुदूर संवेदन)

नए व्यवसाय की और आकर्षित कर रही है।

ड्रोन के उपयोग में बाधायें

अधिकांश किसान कृषि ड्रोन की तुलना में फसल देखभाल के पारंपरिक साधनों को अपनाने में विश्वास करते हैं साथ ही इस प्रकार की भ्रांतियां है कि ड्रोन को चलाने के लिए अत्यधिक तकनीकी ज्ञान की आवश्यकता होती है। ड्रोन छोटे खेतों की तुलना में बड़े खेतों के लिए अच्छे होते हैं, क्योंकि वे बड़े क्षेत्र को कवर करते हैं, इनका उपयोग छोटे खेतों के लिए आर्थिक रूप से तर्कसंगत नहीं है। अधिकांश देशों ने ड्रोन के कृषि उपयोग को नियंत्रित करने के लिए ढीली दिशानिर्देशों का पालन किया है, जिसमें भार ले जाने के लिए भी सीमित भार का आदेश है। इसके अलावा ड्रोन के प्रयोग के लिए हर देश के अपने अपने नियम है जिनका अनुपालन अति आवश्यक है।

इसके अलावा ड्रोन को प्रयोग मे लेने में दो मुख्य प्रकार की समस्या है।

- इसकी लागत व रख–रखाव
- इसका उपयोग करने के लिए कुशलता

इन दोनों ही समस्याओं का एक समाधान है कि एक समूह बनाकर कम लागत का ड्रोन खरीदकर व एक जुझारू छात्र/कर्मचारी जोकि इस तरह के कार्य में निपुण हो को साथ लेकर इसका उपयोग किया जा सकता है। इसके उपयोग से आप एक समय में ही अपने बड़े से बड़े खेत का आकलन कुछ घंटों में पा सकते है।

ड्रोन से जुड़ी कुछ जानने योग्य बातें

प्रश्नः कृषि ड्रोन कितनी ऊंची उड़ान भर सकता है?

उत्तरः 50–100 मीटर (स्थानिक रेसोलुशन की आवश्यकता)। यह इस बात पर भी निर्भर करता है कि आपको कितना क्षेत्र एक बार में उड़ाना है व आपका इसको उड़ाने के पीछे उद्देश्य क्या है।

प्रश्नः किसी क्षेत्र पर ड्रोन उड़ाने के लिए सबसे अच्छी मौसम की स्थिति क्या है?

उत्तरः किसी भी मौसम में ड्रोन पानी प्रतिरोधी भी हो सकते हैं लेकिन इससे छवि (इमेजेज) क्षतिग्रस्त हो जाते हैं। इसलिए हमें इसका उपयोग बारिश में करने से बचना चाहिए।

प्रश्नः ड्रोन के उपयोग से किसानों को मुख्य लाभ क्या हो सकते हैं व इसके उपयोग में क्या क्या व्यवधान है?

उत्तरः ड्रोन किसानों को इनपुट (बीज, उर्वरक, पानी) के उपयोग को अनुकूलित करने में मदद कर सकते हैं, ताकि विभिन्न प्रकार के खतरों (खरपतवारों, कीटों, कवक) पर अधिक तेजी से प्रतिक्रिया हो सके, जिससे फसल की देखभाल/स्काउटिंग (मान्य उपचार/किए गए कार्यों) को बचाने के लिए, सर्वोत्तम दर का पता किया जा सके। वास्तविक समय में विभिन्न विधियों का प्रयोग कर एक कागज व एक क्षेत्र से उपज का अनुमान। इसकी लागत, इसका रखरखाव व इसके उपयोग के लिए कौशल की आवयश्कता है।

प्रश्नः ड्रोन का उपयोग क्यों किया जाना चाहिए?

उत्तरः इसके उपयोग से किसानों को उनकी फसल का बड़ा सचित्र दृश्य (चित्र 4) देखने को मिलेगा। विभिन्न सूचकांक उन परिवर्तनों की निगरानी करने में मदद करते हैं जो नग्न आंखों से सम्भव नहीं हैं। मत्स्य प्रबंधक को अपने गश्त के काम में मदद मिलती है। मवेशी चराने वालो ने ड्रोन का उपयोग किया है, यह निर्धारित करने के लिए कि उनका पशुधन कहाँ है, अगर वो किसी बड़े क्षेत्र में अपने मवेशियों को चराने के लिए लेकर गए हैं। साथ ही कुछ ने ड्रोन को बाड़ लगाने के नियमित सर्वेक्षण के लिए उपयोगी पाया है।

प्रश्नः सरकार द्वारा इस कार्यप्रणाली पर ध्यान क्यों दिया जाना चाहिए?

उत्तरः ग्रैंड व्यू रिसर्च के अगस्त 2015 के अध्ययन ने 2014 में वैश्विक वाणिज्यिक ड्रोन बाजार का आकार + 552

मिलियन होने का अनुमान लगाया और 2022 तक इसकी वृद्धि + 2107 बिलियन हो जायेगी, जिसमें कृषि अन्य ड्रोन क्षेत्रों पर हावी रहेगी। इसके अलावा विभिन्न प्रकार के शोधों के सफल परिणाम के बाद अंतर्राष्ट्रीय जल प्रबंधन संस्थान (आईडब्ल्यूएमआई, कोलम्बो) का मानना है कि ड्रोन आधारित सर्वेक्षण उन अध्ययनों में विशेष रूप से उपयोगी होंगे जिनके लिए अत्यधिक सटीक और बार–बार निगरानी की आवश्यकता होती है।

कुछ वर्ष पहले लागू की गयी फसल बीमा योजना के अंतर्गत भी इसका जिक्र किया गया है कि क्षतिग्रस्त फसलों का अवलोकन सुदूर संवेदन की प्रक्रिया द्वारा किया जाएगा जिसमें ड्रोन भी शामिल है। इसमें आवश्यक है कि सरकार व सरकारी संस्थान इस प्रकार से जुड़े व्यवसायों में किसानों की सहायता करें व इस प्रकार के उद्यमियों का सहयोग कर इस प्रकार की कार्यप्रणालियों को सुचारु रूप से किसानों तक पहुँचाया जाये जैसे कि विदेशों में किया जा रहा है।

ड्रोल से ली गई भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान की तस्वीर

एकीकृत स्वास्थ्य दृष्टिकोणः मनुष्य एवं पशुओं के परस्पर स्वास्थ्य का आधार

विकाश कुमार एवं चन्दन कुमार राय
भाकृअनुप–राष्ट्रीय डेरी अनुसंधान संस्थान, करनाल

एंटीबायोटिक उपयोग और इसके वैश्विक परिदृश्य

एक अनुमान के अनुसार वर्ष 2010 से 2030 तक कृषि में एंटीबायोटिक दवाओं की खपत दुनिया भर में 67 प्रतिशत तक बढ़ने की उम्मीद है। ब्राजील, रूस, भारत, चीन, दक्षिण अफ्रीका (ब्रिक्स) देशों द्वारा इस अवधि के दौरान एंटीबायोटिक दवाओं का उपयोग 99 प्रतिशत तक बढ़ने की संभावनाएं जताई जा रही हैं, इन देशों में पशुपालन क्षेत्र में वर्ष 2010 से 2030 तक एंटीबायोटिक दवाओं की खपत दोगुनी हो जाएगी। भारत में निम्न स्तर और नकली दवाएं बड़ी मात्रा में आयात होती हैं, जिनका चीन और थाईलैंड जैसे अन्य देशों में उत्पादन होता है।

एकीकृत स्वास्थ्य दृष्टिकोण

चूंकि पिछले दस वर्षों में पशु, मानव, और पर्यावरण की दिशा में तालमेल स्थापित करने जैसे बहुउद्देशीय प्रयासों में काफी बढ़ोत्तरी हुई है, जो संधारणीय विकास के दृष्टिकोण से काफी जरुरी है। इन परस्पर जुड़े हितों ने मनुष्यों और जानवरों के स्वास्थ्य में सुधार के लिए एकीकृत स्वास्थ्य की पहल की है। एकीकृत स्वास्थ्य दृष्टिकोण के संबंधित विषयों के अंतरापृष्ठ में उद्देश्य को निर्धारित कर सभी हितधारकों को शामिल करना होगा, जिनका एकजुट प्रयास और सामंजस्य जरुरी है। एंटीबायोटिक प्रतिरोध, सार्वजनिक स्वास्थ्य और पारिस्थितिकी को नियंत्रित करने के लिए पशु चिकित्सकों, मानव चिकित्सकों और महामारीविदों की दूरदृष्टि का लाभ लेकर, एंटीबायोटिक प्रतिरोधों के खतरे से निपटने के लिए सुनियोजित प्रणाली सुनिश्चित की जा सकती है।

मानव और पशु स्वास्थ्य के बारे में विसंगतियाँ और अधूरी समझ

पशु स्वास्थ्य और मानव स्वास्थ्य के लिए काम करने वाले हितधारकों और अन्य मध्यवर्ती संस्थाओं के बीच भागीदारी को मजबूत करने की आवश्यकता है। इस सक्रिय सहयोग से विकासशील देशों में मनुष्यों में एंटीबायोटिक प्रतिरोध के कारण मृत्यु की संभावित संख्या में कमी लायी जा सकती है। नैदानिक दिशानिर्देशों की कमी दोनों मनुष्य एवं पशुओं के रोगोपचार में मौजूद है, यहाँ जानवरों में एंटीबायोटिक के उपयोग पर परस्पर समझ की सख्त आवश्यकता है क्योंकि यह मानवीय स्वास्थ्य पर भी प्रतिकूल प्रभाव डालता है। एंटीबायोटिक दवाओं की प्रभावशीलता को बहाल करने के प्रयासों पर ध्यान केंद्रित किया जाना चाहिए। रोग होने से पहले उसके निरोध में एंटीबायोटिक का उपयोग कम या प्रतिबंधित किया जाना चाहिए तथा जैव सुरक्षा सुनिश्चित करने हेतु प्रयास करना चाहिए। विकासशील देशों में एंटीबायोटिक प्रतिरोध में लगातार बढ़ोत्तरी का महत्वपूर्ण कारण लोगों में जागरूकता की कमी है। यह संपादन, व्यवहार्य और व्यवसायिक रूप से लोकप्रिय विषय अभी तक नहीं बन पाया है। परन्तु देश–विदेश में इस विषय पर जागरूकता हेतु अभियान और जन–कल्याण में कार्य हो रहे हैं। पशु स्वास्थ्य और मानव स्वास्थ्य पर काम कर रहे क्षेत्र के पेशेवर एकीकृत एवं संयोजित प्रयास पहले से ही विवादास्पद रहे हैं, इसलिए इन विभाजनकारी मुद्दों पर आम सहमति की आवश्यकता है।

एंटीबायोटिक दवाओं के विकल्प

एक तरफ दवा उद्योग के विकास के कारण दवाओं का अंधाधुंध प्रयोग हो रहा है, संक्रमणों में तेजी आ रही है जिसके कारण उपयुक्त दवाओं का उसी स्तर से विकास होना जरुरी है। एंटीबायोटिक संरक्षण का उद्देश्य उसकी उपचारक क्षमता को बचाने हेतु इसके न्यूनतम उपयोग को बढ़ावा देना हो सकता है। भविष्य में एंटीबायोटिक दवाओं के लगातार और अंधाधुंध प्रयोग को कम करने के लिए टीकाकरण को अप्रत्यक्ष चुनाव माना जा सकता है। हितधारकों को जानवरों और मनुष्यों, दोनों में एंटीबायोटिक दवाओं के अधिक मात्रा में प्रयोग को कम करने के लिए प्राथमिकता देना चाहिए क्योंकि एंटीबायोटिक की कुछ श्रेणियां परस्पर मनुष्य एवं पशुओं में सामान हैं।

दुनिया भर में कुछ प्रयास

पूर्व अमेरिकी राष्ट्रपति बराक ओबामा ने एंटीबायोटिक प्रतिरोध से निपटने के लिए नई राष्ट्रीय रणनीति तैयार करने पर ध्यान दिया। नतीजतन, अमेरिकी सरकार ने एक बहुपयोगी एकीकृत स्वास्थ्य दृष्टिकोण को बढ़ावा दिया जिसका उद्देश्य मानव और पशु स्वास्थ्य के साथ ही पर्यावरण क्षेत्रों के बीच समन्वय करना है। सदस्य देशों पर भी यूरोपीय संघ द्वारा एंटीबायोटिक प्रतिरोध को नियंत्रित करने के लिए बहुराष्ट्रीय प्रासंगिक मुद्दों पर बल दिया गया।

दृष्टिकोण का महत्त्व

यह दृष्टिकोण संक्रमण तथा बीमारी को जल्द ठीक करने, उसके उपचार की लागत कम करने, खाद्य सुरक्षा में सुधार लाने और पशुधन और मानव के जीवन को रोगों से बचाने में उपयोगी सिद्ध होगा। यह पर्यावरण के साथ पशुओं और जानवरों के स्वास्थ्य एवं विभिन्न प्रकार के पारस्परिक संबंधों को जोड़ता है। इसका उद्देश्य रोगों की आवृति में कमी लाना है, ना कि उनका उपचार करने तक सीमित रहना। मनुष्यों में 10 में से 6 संक्रामक बिमारियाँ पशुओं के माध्यम से फैलती है, जैसे रैबीज, ब्रूसीलोसिस, साल्मोनेला इन्फेक्शन, इत्यादि। कुछ पशु इन बिमारियों के प्रति मनुष्यों से ज्यादा संवेदनशील हैं, अतः वे इन बिमारियों के फैलने की अग्रिम सूचक और चेतावनी के रूप में काम करते हैं, जोकि एकीकृत स्वास्थ्य के महत्व को रेखांकित करता है। मनुष्य में मधुमेह एक गंभीर बीमारी है, यह बिल्लियों में भी उन मध्य आयु वर्ग में पाया जाता है जो मोटे और सुस्त हैं। यह बिल्लियों में भी उसी कारण से बढ़ रहा है जो मनुष्यों में इस बीमारी के लिए उत्तरदायी हैं। अतः एकीकृत स्वास्थ्य दृष्टिकोण मनुष्य और पशुओं के परस्पर परिदृश्य का ध्यान रखता है, ताकि सभी का हित हो।

एकीकृत स्वास्थ्य दृष्टिकोण की चुनौतियाँ एवं उद्देश्य

यह दृष्टिकोण कई उभरते संक्रामक रोगों के पीछे आर्थिक कारणों को समझने और उनका निवारण करने में असमर्थ है। पर्यावरण, पशु विज्ञान और सामाजिक विज्ञान के उपयोग से तथा एकजुट होकर आगे बढ़ने की आवश्यकता है। विभिन्न पेशेवरों, विभिन्न प्राथमिकताओं और वित्त पोषण वाले विभिन्न संस्थानों और अन्य हितधारकों के सम्मिलित प्रयास की जरूरत है। राष्ट्रीय स्तर पर रोग निगरानी, नियंत्रण और एंटीबायोटिक प्रतिरोध की रोकथाम करने के लिए मिशन और कल्याणकारी संस्थान की अत्यधिक आवश्यकता हैं। बहुत कम योग्य पशु चिकित्सक इस क्षेत्र के पेशेवरों में शामिल हैं, जो कि पशु स्वास्थ्य और नैतिक मूल्यों को अपनी आर्थिक उन्नति पर प्राथमिकता देते हैं।

3 नवम्बर को एकीकृत स्वास्थ्य दिवस घोषित किया गया है ताकि लोगो को इस दृष्टिकोण के प्रति जागरूक किया जा सके।

निष्कर्ष

एकीकृत स्वास्थ्य परिदृश्य में पशु–चिकित्सकों की भूमिका अग्रणी है क्योंकि उचित एंटीबायोटिक की उचित मात्रा का निर्धारण उनके द्वारा किया जाना चाहिए। डेरी पशुओं द्वारा दुग्ध–उत्पादन, परिवहन, प्रसंस्करण एवं भण्डारण, सुपर मार्केट में विक्रय, कसाई–खाना द्वारा मांस विक्रय, इन सभी माध्यम द्वारा एंटीबायोटिक प्रतिरोध, रासायनिक पदार्थ तथा प्रतिरोधी जीन हमारे खाद्य–श्रृंखला में आते हैं, तथा अप्रत्यक्ष रूप से हमें बिमारियों के प्रति संवेदनशील बनाते हैं। अतः इन परस्पर जुड़े कारकों को समझकर मनुष्य–पशुओं के स्वास्थ्य को ध्यान में रख कर एंटीबायोटिक का कम से कम प्रयोग करना चाहिए।

पार्थेनियम फसल उत्पादन एवं मानव स्वास्थ्य पर हानिकारक प्रभाव डालने वाला खरपतवार

दिनेश चौधरी
भाकृअनुप–भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान, करनाल

परिचय

पार्थेनियम आमतौर पर भारत में कांग्रेस घास के रूप में जाना जाता है, यह एस्टेरा (कंपोजिट) परिवार से संबंधित एक शाकीय पौधा है। गाजर के पौधे जैसा दिखने के कारण इसे गाजर घास के नाम से जाना जाता है। पार्थेनियम की विभिन्न जातियाँ मैक्सिको, अमेरिका और अर्जेंटीना में पायी जाती है। भारत में यह सर्वप्रथम पुणे (महाराष्ट्र) में देखी गई। वर्तमान में यह खरपतवार भारत में लगभग 35 मिलियन हैक्टर भूमि पर फैल गया है। यह सड़क के किनारे, रेलवे पटरियों पर खाली पड़ी जमीनों, बंजर भूमि, औद्योगिक क्षेत्रों, खुले जल निकास प्रणाली और सिंचाई नहरों के अलावा कृषि पर आक्रमण करने के लिए विख्यात है।

पहचान

पार्थेनियम के पत्तों को देखने में गाजर के पत्तों की तरह दिखता है इसलिए इसे गाजर खरपतवार या गाजर घास कहा जाता है। इस खरपतवार के पौधे कि ऊंचाई औसतन 1 से 1.5 मीटर की हो सकती है। इसके फूल सफेद होते हैं।

पार्थेनियम घास के अन्य नाम

इस खरपतवार को अंग्रेजी में स्पैनिश फ्रेंच, पार्थेनियम मेट्रिकियर, हिन्दी में जौ का फूल, हरामी बुखार, गाजर घास व कांग्रेस घास के नाम से जाना जाता है।

पार्थेनियम कैसे फैलता है ?

यह मुख्य रूप से बीजों से फैलता है। इसमे प्रतिवर्ग मीटर 154,000 बीज पैदा करने की उच्च उत्पादन क्षमता है और एक पौधा लगभग 15000–25,000 बीज पैदा कर सकता है। बीज वजन में बहुत हल्के होते हैं और आसानी से हवा, पानी या विभिन्न मानव गतिविधियों के माध्यम से फैलती हैं। पार्थेनियम की कटिंग या टूटा हुआ हिस्सा फिर से उगने की क्षमता रखता हैं।

पार्थेनियम के हानिकारक प्रभाव ?

सामान्य तौर पर, पार्थेनियम एक जहरीला, खतरनाक, एलर्जी की समस्या उत्पन्न करने वाला और आक्रामक खरपतवार है जो मानव और पशुओं के लिए एक गंभीर खतरा है। भारत और ऑस्ट्रेलिया में, इस खरपतवार से अस्थमा, नाक, त्वचीय और नाक–ब्रोन्कियल प्रकार के रोगों के सबसे बड़े स्रोत के रूप में जाना जाता है। बीमारी प्रभावों के अलावा, यह कई अन्य समस्याओं का भी कारण बनता है, जैसे कि सामान्य रास्ते की रुकावट; और पार्कों, उद्यानों आवासीय कॉलोनियों के सौंदर्य महत्वों को कम करता है। पार्थेनियम हर प्रकार की फसल, बागों, वृक्षारोपण और जंगल को संक्रमित करता है। यह जैव विविधता और पर्यावरण को नुकसान के अलावा फसल उत्पादकता को गंभीर रूप से कम करता है।

पार्थेनियम का एकीकृत प्रबंधन

जब से यह खरपतवार भारत और अन्य देशों में एक खतरा बन गया है, तब से विभिन्न तरीकों से खरपतवार के प्रबंधन का प्रयास किया जा रहा है। लेकिन अब तक, कोई भी विधि संतोषजनक साबित नहीं हुई है क्योंकि प्रत्येक विधि की अपनी सीमाएं है जैसे कि अव्यवहारिक, अस्थायी राहत, पर्यावरण सुरक्षा, उच्च लागत, आदि। इसलिए इन सभी तरीकों को समाहित करने के लिए एक एकीकृत पार्थेनियम प्रबंधन दृष्टिकोण अपनाने की तत्काल आवश्यकता है। यान्त्रिक और हाथ से नष्ट करने के तरीके मानसून के दौरान फूल आने से पहले जब मिट्टी गीली हो। पार्थेनियम को उखाड़ दें चूंकि संवेदनशील व्यक्तियों को इस खरपतवार से

एलर्जी हो सकती है, इसलिए, पार्थेनियम को उखाड़ते समय दस्ताने पहनना आवश्यक है। पार्थेनियम एक व्यक्ति की समस्या नहीं है, बल्कि एक सामुदायिक समस्या है। इसलिए, सामूहिक तरीके से पार्थेनियम को जड़ से नष्ट करने लिए कॉलोनी के निवासियों, उद्योग में श्रमिकों और बड़े खेतों किसानों को प्रेरित करने की आवश्यकता है।

सस्य प्रबंधन

किसान को चाहिए कि वे अपने खेत में पार्थेनियम की वृद्धि को दबाने के लिए ज्वार और बाजरा जैसी तेजी से बढ़ने वाली फसल लें।

कानूनी और विस्तार प्रबंधन

भारत में सबसे पहले कर्नाटक राज्य में पार्थेनियम का प्रबंधन कानूनी अधीनियम के माध्यम से भी करने की कोशिश की गई थी। पार्थेनियम के प्रसार को रोकने के लिए इस अधीनियम को नगरपालिका या राज्य स्तर पर लागू किया जा सकता है।

रसायनों का उपयोग

कुल वनस्पति नियंत्रण के लिए बंजर भूमि में पार्थेनियम को ग्लाइफोसेट (1–1.5 प्रतिशत) के उपयोग से नियंत्रित किया जा सकता है, लेकिन यदि घास को बचाया जाए, तो मेट्रिब्यूज़िन (0.3 से 0.5 प्रतिशत) या 2, 4–डी (2 प्रतिशत) इस्तेमाल किया जा सकता है। विभिन्न फसलों में, खरपतवारनाशी का उपयोग खरपतवार वैज्ञानिकों से परामर्श करने के बाद ही करना चाहिए क्योंकि विभिन्न फसलों के लिए अलग–अलग मात्रा में भिन्न–भिन्न खरपतवारनाशी की आवश्यकता होती है। सोयाबीन, राजमा, केला और टमाटर की फसल में पार्थेनियम को नियंत्रित करने के लिए के एलाक्लोर (2.0 किलोग्राम) का उपयोग किया जा सकता है। आलू, टमाटर और सोयाबीन की फसल में पार्थेनियम को नियंत्रित करने के लिए बुवाई के बाद अंकुरण पूर्व मेट्रिब्यूजिन (0.50 से 0.75 किलोग्राम) का उपयोग किया जा सकता है

जैविक नियंत्रण

जैविक नियंत्रण में हानिकारक खरपतवारों को नियंत्रित करने के लिए उनके प्राकृतिक दुश्मनों का प्रयोग किया जाता है। पार्थेनियम का प्रबंधन उसके प्राकृतिक दुश्मन जैसे कीड़े, कवक, नेमाटोड, घोंघे, स्लग और प्रतिस्पर्धी पौधों द्वारा किया जा सकता है। जैविक नियंत्रण सस्ता, गैर–लक्षित जीवों, पर्यावरण और जैव विविधता के लिए सुरक्षित है। यह स्वस्थायी है और अपने आप फैल सकता है जबकि अन्य नियंत्रण उपायों को समय–समय पर इनपुट की आवश्यकता होती है। इन्हें अन्य नियंत्रण उपायों के साथ एकीकृत करना आसान है। जैविक नियंत्रण कार्यक्रम के तहत, खरपतवार के उनके अपने परिवेश से विशिष्ट जैव एजेंटों को अन्य देशों में आयात किया जाता है, जहाँ खरपतवार प्रवेश कर गए थे और आक्रामक हो गए थे।

दूसरे देशों में जहाँ मैक्सिकन बीटल (*जोइगोग्रैमा बाइकोलेराटा*) को उपयोग किया गया था उनमें इसकी सफलता के आधार पर 1982 में मैक्सिको से बैंगलोर में बीटल आयात किया गया था। संगरोध परिस्थितियों में विस्तृत मेजबान–विशिष्टता परीक्षण ने देश में खेती की जाने वाली फसलों के लिए *जोइगोग्रैमा बाइकोलेराटा* की सुरक्षा की पुष्टि की। यह बीटल पार्थेनियम के खिलाफ प्रभावी पाया गया है। इसलिए इसे पार्थेनियम के खिलाफ उपयोग के लिए जारी किया जाना चाहिए।

बीट्ल सफेद या हल्के लाल रंग के होते हैं, जिनके एलिट्रा पर गहरे भूरे रंग के अनुदैर्ध्य निशान के होते हैं, जिनकी लंबाई लगभग 6 मि.मी. होती है। हल्के पीले अंडे आमतौर पर 4–7 दिनों में पत्तियों के उदर पक्ष पर रखे जाते हैं। बीटल 22–32 दिनों में अपना जीवन–चक्र पूरा करता है। दोनों वयस्क और लार्वा पार्थेनियम को खाने में सक्षम हैं। पार्थेनियम पर लगातार भोजन करने से, यह धीरे–धीरे खरपतवार को मार देता है। पहले फ्लश के बाद नए उभरे हुए पौधे ग्रब्स और वयस्कों के हमले के लिए बहुत कमजोर होते हैं।

कैसिया तोरा जिसे आमतौर पर "चकोदा" कहा जाता है और गेंदा पार्थेनियम संक्रमित क्षेत्र में फरवरी–अप्रैल के दौरान बीजों के प्रसारण द्वारा पार्थेनियम को नियन्त्रित करने में सक्षम हैं। इस तकनीक के उपयोग हेतू *सीतोरा* के बहुत सारे बीज अक्तूबर–नवंबर के दौरान आसानी से एकत्र किए जा सकते हैं।

उपयोग के माध्यम से प्रबंधन

पार्थेनियम का उपयोग कई उद्देश्यों के लिए किया जा सकता है। लेकिन इसका उपयोग सबसे प्रभावी रूप से खाद और वर्मी–खाद बनाने में किया जा सकता है। खाद केवल गड्ढे प्रणाली द्वारा तैयार की जानी चाहिए। एनएडीईपी विधि में, पार्थेनियम के सभी बीज नहीं मारे जाते हैं। पार्थेनियम बायोमास को परतों में गड्ढों में दफन किया जाना चाहिए। प्रत्येक परत पर 5 किलोग्राम गोबर का घोल और 500 ग्राम यूरिया का उपयोग करना चाहिए। गड्ढे भरने के बाद, इसे मिट्टी और गोबर के मिश्रण से बंद किया जाना चाहिए। पार्थेनियम द्वारा तैयार की गई खाद में केवल गोबर द्वारा तैयार की गयी खाद की तुलना में अधिक पोषक तत्व होते हैं।

सब्जी फसलों में गुणवत्तायुक्त बीज बनाने हेतु उन्नत कृषि क्रियाएं

एससी राणा एवं वीके पंडिता
भाकृअनुप–भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान क्षेत्रीय स्टेशन, करनाल

हमारे देश में उगाई जाने वाली विभिन्न सब्जी फसलों की उन्नत किस्में खेती के लिए उपलब्ध है। फसल की पैदावार बढ़ाने में उन्नत किस्मों एवं अच्छे गुणों के बीजों का बहुत महत्व है। लेकिन कई बार उन्नत किस्मों का बीज किसानों को उनकी आवश्यकतानुसार उपलब्ध नहीं हो पाता व कई बार बीजों के दाम अधिक होने के कारण किसान अपने खेत में उनका उपयोग करने में असमर्थ होता है जोकि फसल की अच्छी पैदावार लेने के लिए बहुत जरुरी हे। अच्छी बीज फसल लेने के लिए आवश्यक है कि आनुवंशिक रुप से शुद्ध एवं स्वस्थ बीज का प्रयोग किया जाए। बीज फसल को व्यापारिक फसल की अपेक्षा अधिक ध्यान रखते हुए उगाया जाता है। सब्जी बीज उत्पादन के लिए फसल उत्पादन सम्बधी सामान्य कृषि क्रियाओं के अतिरिक्त कुछ विशेष विधियों व सावधानियों की आवश्यकता होती है जोकि निम्न प्रकार है;

खेत का चयन

बीज उत्पादन के लिए ऐसी भूमि का चुनाव करना चाहिए जिसमें पानी के निकास की उचित व्यवस्था हो एवं फसल के लिए प्रर्याप्त मात्रा में जैविक पदार्थ उपलब्ध हो, बीज का खेत खरपतवारों व अन्य फसलों के पौधों से मुक्त होना चाहिए। खेत की मृदा रोगों व कीटों से मुक्त होनी चाहिए। बीज खेत में पिछले एक या दो वर्षों में उसी फसल की कोई दूसरी किस्म नहीं उगायी गई हो। यदि बीज खेत में वही किस्म उगाई गई थी तो यह सुनिश्चित करें कि उसकी आनुवंशिक शुद्धता बीज प्रमाणीकरण के मानकों के अनुरुप हो।

किस्म का चयन

जिन किस्मों की बाजार में मांग हो या जिन्हें किसान अपने लिए उगाना चाहता है, उन्हें प्राथमिकता दी जानी चाहिए। किस्म अच्छी पैदावार देने वाली हो। किस्म में रोग रोधिता, अगेतापन आदि वांछित गुण होने चाहिए। छांटी गई किस्म उस क्षेत्र विशेष की जलवायु के अनुकूल होनी चाहिए ताकि उत्पादन के समय आनुवंशिक परिवर्तन की सभांवना ना रहे। चयनित किस्म का शुद्ध बीज किसी अनुसंधान केन्द्र, बीज निगम, कृषि विश्वविद्यालय या सुस्थापित बीज फर्म से प्राप्त करना चाहिए।

पृथक्करण

आनुवंशिक रुप से शुद्ध बीज प्राप्त करने के लिए आवश्यक है कि दो किस्मों के बीज खेतों के मध्य निर्धारित पृथक्करण दूरी अवश्य रखी जाए। परागण के आधार पर फसलों के लिए पृथक्करण दूरी अलग–अलग है। स्व–परागित फसलों (मटर, सेम, लोबिया) के लिए यह दूरी कम (5–25 मीटर) रखी जाती है और पर–परागित फसलों (पालक, प्याज, गोभी, खीरा वर्गीय फसलें) के लिए यह दूरी अधिक (800–1600 मीटर) रखी जाती है। मूल बीज एवं प्रमाणिक बीज उत्पादन हेतु विभिन्न सब्जी फसलों की निर्धारित पृथक्करण दूरी सारणी–1 में दी गई है।

बीज उत्पादन हेतु मधुमक्खियों का उपयोग

पर–परागित फसलों में मधुमक्खियों व अन्य कीटों द्वारा समुचित मात्रा में परागण होने से इन फसलों में बीज उपज व बीज गुणवत्ता बढ़ जाती है। अतः बीज खेत में फूल आना आरंभ होने के समय मधुमक्खी के 2–4 बक्से प्रति एकड़ की दर से रखें जाने चाहिए।

बीजोत्पादन विधि

बीज से बीज तैयार करना

टमाटर, बैंगन, मिर्च, गोभी, बेल वर्गीय सब्जियाँ, मटर आदि सब्जियों में सीधा बीज से बीज तैयार किया जाता है।

कंद से बीज बनाना

इस विधि से प्याज का बीज तैयार करते हैं। इसमें बीज अक्तूबर–नवम्बर में बोया जाता है तथा पौध की रोपाई

सारणी 1: पृथक्करण दूरी (मीटर में)

फसल	मूल बीज	प्रमाणित बीज
मटर, सेम, लोबिया, मेथी, फ्रासंबीन, टमाटर	50	20
गोभी वर्गीय फसलें, पालक, मूली, शलगम, चुकंदर	1600	1000
गाजर	1000	800
प्याज, खीरा वर्गीय फसलें	1000	500
बैंगन, मिर्च, भिण्डी, चौलाई	400	200

दिसंबर से जनवरी के प्रथम पखवाड़े तक करते हैं। शल्ककंद अप्रैल–मई में तैयार हो जाते हैं। खुदाई के उपरान्त चुने हुए स्वस्थ शल्ककंदों को (किस्म के आधार पर) अक्तूबर तक भंडारण में रखते हैं। इन्हें अक्तूबर–नवम्बर में बीज उत्पादन हेतु खेत में लगाते है। और बीज अप्रैल–मई में निकाला जाता है। इस विधि से बीज तैयार करने में लगभग डेढ़ वर्ष का समय लगता है। बीज की अच्छी उपज एवं उच्च गुणवत्ता हेतु प्याज के बीज उत्पादन के लिए यह विधि अपनाई जाती है।

जड़ से बीज बनाना

मूली, शलगम व गाजर में किस्मों को बीज उत्पादन के लिए दो अलग–अलग समूहों में बाँटा गया है। एशियाटिक या उष्णकटिबंधीय समूह तथा यूरोपियन या शीतोष्ण समूह। यूरोपियन समूह में शीतकालीन किस्में आती है जिनका बीज उत्पादन पहाड़ी इलाकों में ही सभंव होता है जबकि मूली, शलगम व गाजर की अर्द्धउष्णीय या एशियाटिक किस्मों का बीज उत्पादन उत्तर भारत के मैदानी भागों में भी किया जा सकता हैं। इन सब्जियों में शुद्ध बीज बनाने के लिए जड़ों से बीज बनाने की विधि प्रयोग में लाते है। मूली व शलगम में बीजाई के 45–65 दिन बाद तथा गाजर में बीजाई के 90–100 दिन बाद प्रतिरोपण के लिए जड़ें तैयार हो जाती है। एक हैक्टर खेत में तैयार जड़ें बीज उत्पादन के लिए 4–5 हैक्टर क्षेत्र में प्रतिरोपण के लिए पर्याप्त होती है। बोई गई किस्म से मेल खाती जड़ों को भूमि से निकालकर रंग, आकार व रूप के आधार पर छांट लेते हैं। छांटी गई जड़ों का नीचे से एक तिहाई तथा पत्तियों को 5–10 से.मी. रखकर काट देते हैं। पत्तों को काटते समय इस बात का ध्यान रखें कि पादप शिखर को हानि ना पहुँचे ताकि जड़ प्रतिरोपण के बाद पौधे का फुटाव जल्दी हो सके। छांटी गई जड़ों को प्रतिरोपण से पहले फफूंदीनाशक से उपचारित कर लें। छांटी गई जड़ों का प्रतिरोपण क्रमशः 60 से.मी. (मूली), 45 से.मी. (शलगम) तथा 30 से.मी. (गाजर) की दूरी पर करते है। लाईन से लाईन की दूरी 60 से.मी. रखते हैं। इनके प्रतिरोपण का समय फसल तथा प्रजाति के उपर निर्भर करता है। मूली तथा शलगम में प्रतिरोपण का उचित समय अक्तूबर–नवम्बर तथा गाजर में मध्य दिसम्बर से मध्य जनवरी तक है।

खेत की तैयारी व बीज की बुआई

अच्छे बीज अंकुरण व खरपतवार नियंत्रण के लिए खेत को अच्छी प्रकार से तैयार करें। प्रत्येक जुताई के बाद सुहागा लगाएं ताकि मिट्टी भुरभुरी हो जाए। खेत की तैयारी के समय प्रति हैक्टर 200–250 कुंतल की दर से भली भांति सड़ी हुई गोबर की खाद मिलाई जाती है। इसे बुआई से 20–25 दिन पूर्व खेत में मिला दिया जाता है। बिजाई से पहले बीज को उपयुक्त कवकनाशी से उपचारित कर लेना चाहिए। दवाई का रसायन बीजों में समान रुप से मिल जाना चाहिए। बीज फसल की बुवाई लाईनों में की जानी चाहिए ताकि सस्य क्रियाओं व निरीक्षण में आसानी रहे। बीज उत्पादन के लिए फसल–चक्र इस प्रकार रखना चाहिए जिससे फूल आने के समय तथा बीज के विकास एवं पकने के समय तापमान अनूकुल हो तथा वर्षा न हो। अतः आवश्यक है कि सब्जी फसल के आधार पर बीज फसल की बीजाई अनुशंसित समय पर ही हो। बीज की अच्छी पैदावार के लिए संतुलित मात्रा में खाद एवं उर्वरकों का उपयोग तथा समय पर खरपतवारों, कीटों व बिमारियों का प्रबंधन आवश्यक है।

अवांछित पौधों को निकालना

कोई भी वह पौधा जो लगायी गई किस्म के अनुरूप लक्षण नहीं रखता है उसे अवांछनीय पौधा माना जाता है तथा उसे जड़ से उखाड़कर नष्ट कर देना चाहिए या फिर गड्ढे में दबा देना चाहिए। जिन पौधों में बीमारी हो उन्हें भी खेत से हटाना जरूरी है। अवांछनीय पौधे निकालने वाले व्यक्ति को किस्म के लक्षणों का भली–भांति ज्ञान होना चाहिए जिससे की वह अवाछंनीय पौधों को पौधे की बढ़वार, पत्तों व फूलों के रंग–रूप, फूलों के खिलने का समय, फल के रंग–रूप आदि के आधार पर पहचान सके। अवांछनीय पौधों का निरीक्षण कई बार करना चाहिए जैसे पौधों की शाकीय बढ़वार की अवस्था, फूलों के खिलने के समय, फल/फलियों के बनने व पकने की अवस्था के समय। हर अवस्था पर जो भी अवांछनीय पौधे मिलें उन्हें निकालते रहना चाहिए।

पक्षियों व जानवरों से बचाव

पालक, मटर, मूली, शलगम आदि सब्जियों में फलियां/फुलवृंत बनते समय तथा बीज पकने की अवस्था में तोते, कबूतर, गिलहरी, चूहे, नीलगाय आदि बीज फसल में हानि करते हैं। अतः पक्षियों व जानवरों से बीज की पैदावार में होने वाली हानि को रोकने के लिए बचाव हेतु आवश्यक सावधानियाँ उपयोग में लानी चाहिए।

बीज फसल की कटाई

बीज उत्पादन में समय पर फसल कटाई का बहुत महत्व है। इसमें असावधानी बरतने पर बीज उपज व बीज गुणवत्ता में कमी आती है। बीज उत्पादन हेतु फसल कटाई का सबसे उत्तम समय वह है जब बीज पूर्णतः परिपक्व हो जाए। शरीर क्रियात्मक दृष्टि से बीज फसल अपेक्षाकृत जल्दी पक जाती है और उसकी कटाई संभव होती है परंतु इस समय फसल को काटने से हानि की संभावना होती है

क्योंकि बीजों में नमी की मात्रा अधिक होती है। कुछ फसलों (पालक, प्याज, भिंडी, मेथी आदि) में बीज उत्पादन हेतु फसल काटने में देर करने से बीज बिखरने की संभावना बनी रहती है जिससे बीज की हानि होती है। अतः बीज फसल को उपयुक्त समय पर ही काटना चाहिए। बीज फसल की कटाई उपरांत बीज को अच्छी तरह सुखाकर व साफ करके उपयुक्त ढंग से भंडारित करने पर हानि न्यूनतम होती है।

बीजों को सुखाना

बहुधा जब बीज फसल को काटा जाता है तब उसमें नमी की मात्रा सुरक्षित नमी की मात्रा से ज्यादा होती है। अतः बीजों को सुरक्षित नमी की मात्रा तक लाने के लिए उन्हें सुखाना आवश्यक है। बीजों की गुणवत्ता में कमी को रोकने के लिए जितना जल्दी संभव हो उन्हें सुरक्षित नमी की मात्रा तक सुखा लेना चाहिए अन्यथा फफूंद की तीव्र वृद्धि, श्वसन आदि के कारण बीज औज तथा अंकुरण क्षमता कम हो जाती है। विभिन्न सब्जी फसलों के लिए सुरक्षित नमी मात्रा अलग–अलग होती है। बीज भंडारण के समय सब्जी फसलों में नमी की मात्रा 7–9 प्रतिशत होनी चाहिए। बीजों को सुखाने के बाद उनकी गुणवत्ता बढ़ाने के लिए बीज संशोधन किया जाता है।

बीज भंडारण

बीज भंडारण के दौरान बीजों को कीटों से बचाव हेतु मेलाथियान चूर्ण 0.5 ग्राम दवा प्रति किलो ग्राम बीज की दर से तथा फफूंदी जनित रोगों से बचाव हेतु थीराम या कार्बेन्डाजिम चूर्ण 2 ग्राम प्रति किलोग्राम बीज की दर से उपचार करें। बीजों को बाजार मांग के अनुसार वांछित मात्रा में पैकेटों में भरा जाता है। बीजों को नमी रहित, ठंडे स्थानों पर भंडारण हेतु रखा जाता है

सारणी 2: विभिन्न सब्जी फसलों में बीज की औसत उपज

फसल	बीज उपज (प्रति एकड़)
टमाटर, शिमला मिर्च	50–60 किलो
बैंगन, मिर्च, खरबूज, करेला	100–125 किलो
मटर	600–700 किलो
पेठा, तोरी, टिंडा, खीरा	150–160 किलो
गाजर, गोभी, शलगम, घीया/लौकी, तरबूज	200–225 किलो
प्याज, मूली	300–320 किलो
भिण्डी, लोबिया	500–525 किलो
पालक, मेथी	400–500 किलो

पर्यावरण अनुकूल गौपालन में देसी नस्लों का योगदान

श्रीजा सिन्हा, गोपाल सांखला एवं निपुणा ठाकुर
भाकृअनुप–भारतीय राष्ट्रीय डेरी अनुसंधान संस्थान, करनाल

शहरीकरण, औद्योगीकरण, भूमंडलीकरण कोई काल्पनिक शब्द नहीं है। इनका असर मानव जीवन के हर पहलू में पूर्ण रूप से दिखता है। आर्थिक समृद्धि ने मानव को सशक्त किया है, कि वो अपनी हर इच्छा को पूरा कर सके। इन इच्छाओं की पूर्ति के लिए मानव ने संकुचित प्राकृतिक संसाधनों का पूर्णतः दोहन करने की कोशिश की हैं। कृषि व पशुपालन के क्षेत्र भी इससे अछूते नहीं रहे हैं। अधिकतम दुग्ध उत्पादन के लिए प्रयोग की जाने वाली एंटीबायोटिक दवाओं व कृत्रिम हॉर्मोनो (ऑक्सीटोसिन, सोमाटोट्रोपीन इत्यादि) ने जहाँ मानव स्वास्थ्य को प्रभावित किया है वहीं देसी गायों के विदेशीकरण ने जलवायु परिवर्तन व पर्यावण को दूषित करने वाली प्रक्रियाओं को तेज किया है। इसके अलावा स्वदेसी जननद्रव्य रिक्तीकरण में भी इसका बहुत बड़ा योगदान रहा है। देसी नस्लों की तुलना में विदेशी नस्लों में अधिक मीथेन का उत्सर्जन देखा गया है। विदेशी व संकर नस्लों में भारतीय जलवायु परिवेश का सामना करने की क्षमता कम होती है, साथ ही स्थानीय स्तर पर उपलब्ध चारे के इस्तेमाल और बिमारियों के विरुद्ध प्रतिरोधक क्षमता कम होती है। इन सब नकारात्मक प्रभावों के बावजूद भी विदेशी व संकर नस्लों को अपनी अधिक दुग्ध उत्पादन क्षमता व आर्थिक लाभ के लिए तेजी से भारतीय डेरी फार्मों में शामिल किया जा रहा है। समय की मांग है कि स्वदेशी गाय और भैसों की नस्लों की उत्पादकता बढ़ाने के साथ ही स्वदेशी नस्लों की शुद्धता बनाये रखने के लिए उपयुक्त वैज्ञानिक रूप से कदम उठाये जाएँ। प्रस्तुत लेख में इन्हीं बिंदुओं को संबोधित किया गया है। स्वदेशी नस्लों को बढ़ावा देने के क्रम में निम्नलिखित सुझावों को अपनाया जाना चाहिए।

स्वदेशी प्रजनन की ओर रूख करना

- दुग्ध उत्पादन को बरकरार रखने के क्रम में 50–60 प्रतिशत विदेशी वंशावली वाली संकर नस्लों को डेयरी उद्योग प्रणाली में शामिल किया जा सकता है, क्योंकि इससे उनमें देशी और विदेशी दोनों नस्लों की खूबियाँ आती हैं। एक तो वे ज्यादा सहनशील (मजबूत, बिमारियों के प्रति सहनशील) होते हैं और दूसरा उनसे ज्यादा उत्पादकता भी मिलती है। सुझाई गई संकर नस्लें: होलस्टीन फ्रीजियन क्रास और जर्सी क्रास को इस्तेमाल किया जा सकता है।
- **स्वदेशी गाय की नस्लें**: साहीवाल, लाल सिंधी, गिर, थारपारकर, हरियाणा, राठी को शामिल किया जा सकता है।
- **स्वदेशी भैंसों की नस्लें**: मुर्राह, निली–रावी, जाफराबादी, मेहसाना, सुरती, पंधारी का इस्तेमाल किया जा सकता है।

स्वदेशी नस्लों को बढ़ावा देना

अधिकांश डेयरी फार्म स्वदेशी गायों की नस्लों की तुलना में संकर नस्लों को तरजीह देते हैं। इसकी मुख्य वजह स्वदेशी नस्लों की कम उत्पादकता है। दुग्ध उत्पादन बढ़ाने के क्रम में विदेशी जननद्रव्य के साथ अंधाधुंध तरीके से देशी नस्लों की क्रॉसब्रीडिंग कराई जा रही है। इसलिए स्वदेशी गाय और भैसों की उत्पादकता बढ़ाने के साथ ही स्वदेशी नस्लों की शुद्धता बनाए रखने के क्रम में निम्नलिखित प्रजनन नीतियां अपनाई जानी चाहिए।

चुनिंदा प्रजनन (सेलेक्टिव ब्रीडिंग) के द्वारा उचित वर्णित स्वदेशी गायों की नस्लों में सुधार : साहीवाल, लाल सिंधी, गिर आदि जैसी स्वदेशी गायों की नस्लों के साथ मनचाही विशेषताओं (जैसे ज्यादा उत्पादकता) वाले सीमेन के इस्तेमाल से उपयुक्त नस्लें हासिल की जा सकती हैं।

चुनिंदा प्रजनन (सेलेक्टिव ब्रीडिंग) के द्वारा उपयुक्त भैंसों की नस्लों में सुधार : मुर्राह, निली रावी आदि जैसी उपयुक्त भैंसों की नस्लों के साथ वांछित विशषताओं वाले सीमेन का इस्तेमाल किया जा सकता है।

ग्रेडिंग अप के द्वारा गैर उल्लेखित भैंसों में सुधार : गैर उल्लेखित भैंसों में मुर्रा निली रावी आदि नस्लों के साथ प्रजनन के माध्यम से सुधार किया जा सकता है। इस प्रक्रिया को ग्रेडिंग अप कहते हैं।

ग्रेडिंग अप के द्वारा गैर उल्लेखित गायों में सुधार :गैर उल्लेखित गायों में साहीवाल, थारपारकर, राठी, लाल सिंधी, गिर, हरियाणा आदि नस्लों के साथ प्रजनन के माध्यम से सुधार किया जा सकता है (ग्रेडिंग अप)।

क्रॉस ब्रीडिंग के द्वारा गैर उल्लेखित गायों में सुधार : होलस्टीन फ्रीजियन और जर्सी जैसी विदेशी नस्लों के साथ क्रॉस ब्रीडिंग के द्वारा गैर उल्लेखित गायों में आनुवंशिक सुधार किया जा सकता है। विदेशी नस्ल मैदानी इलाकों के लिये होलस्टीन फ्रीजियन का सुझाव दिया जाता है। इसी

तरह जर्सी पहाड़ी इलाकों के लिए उपयुक्त होती हैं।

प्रजनन के दौरान बरती जाने वाली सावधानियाँ

- प्रजनन कराने से पहले पशु चिकित्सा अधिकारी से परामर्श लें।
- कृत्रिम गर्भाधान के दौरान हर एक सावधानी रखनी चाहिए।
- कृत्रिम गर्भाधान को प्रशिक्षित कर्मचारियों या पशु चिकित्सा अधिकारियों की मदद से ही किया जाना चाहिए।
- दुधारू गायों/भैंसों को एक स्थान से दूसरे स्थान पर स्थानांतरण कम से कम कराना चाहिए।
- यदि पशु का स्थानांतरण जरूरी है तो उन्हें परिवहन के दौरान तनाव से बचाना चाहिए।
- परिवहन के दौरान नियमित अंतराल पर पानी, आहार और आराम देते रहना चाहिए। आराम देने के लिए सतह पर धान के पुआल जैसी सामग्री बिछाई जानी चाहिए।
- समूह या समितियाँ बनाकर अपने इलाके में देशी नस्लों को सुरक्षित रखने के प्रयास करें।
- देशी गायों और भैंसों से निकले दूध की ऊँची कीमत हासिल करने के लिए उचित विपणन नीतियां अपनाएं।

अतः किसान भाईयों को यह समझना होगा कि उत्तम मानव स्वास्थ्य व चिरस्थायी डेरी उत्पादकता को बनाये रखने के लिए पर्यावरण अनुकूल पशुपालन पद्धतियों को अपनाना जरुरी है। स्वदेशी गाय–भैंसों की नस्लों को बढ़ावा देना व देसी जननद्रव्य का संरक्षण इस दिशा में एक ठोस कदम हो सकता है।

साहीवाल

थारपारकर

गिर

रेड सिंधी

पशुपालकों की आय में वृद्धि करने हेतु भारत सरकार की कुछ महत्वाकांक्षी योजनाएँ

विकाश कुमार एवं रामदेव यादव
भाकृअनुप–राष्ट्रीय डेरी अनुसंधान संस्थान, करनाल

कृषि जगत में पशुधन क्षेत्र अधिक समावेशी और स्थायी कृषि प्रणाली को सुनिश्चित करने हेतु एक महत्वपूर्ण क्षेत्र के रूप में उभरा है। देश की बढ़ती आबादी के लिए दुग्ध उपलब्धता सुनिश्चित करना, पशुपालकों को दुग्ध एवं इसके उत्पादों के लिए उचित मूल्य प्राप्त कराना, स्वदेशी गोवंश और डेरी उद्यमिता को बढ़ावा देना एक चुनौती के रूप में सामने आया है। इसके लिए भारत सरकार की कुछ महत्वाकांक्षी योजनाएं है, जिनके द्वारा पशुपालक अपनी आय को बढ़ा सकते हैं।

1. राष्ट्रीय गोकुल मिशन

वैज्ञानिक एवं समग्र रूप से देशी नस्लों के गोवंश का विकास तथा संरक्षण करने के लिए इस मिशन को शुरू किया गया है। इस योजना की शुरुआत दिसंबर 2014 में 500 करोड़ रुपये के आवंटन के साथ किया गया। इस योजना के तहत 27 राज्यों में 35 परियोजनाएं अनुमोदित हुई थी, जिसमें कुल 582.09 करोड़ की राशि आवंटन की गई।

उद्देश्य

1. स्वदेशी नस्ल के दुधारु पशुओं का विकास और संरक्षण।
2. पशुओं में आनुवंशिक सुधार एवं उनकी संख्या में वृद्धि।
3. दुग्ध उत्पादन और उत्पादकता में वृद्धि।
4. साहीवाल, राठी, देउनी, थारपारकर, रेड सिन्धी और अन्य कुलीन स्वदेशी नस्लों के जरिए बाकी नस्लों को उन्नत बनाना।
5. उच्च आनुवंशिक योग्यता वाले सांड का वितरण।

प्रगति के आयाम

1. इस योजना के तहत 14 गोकुल ग्राम की स्थापना स्वीकृत की गयी है एवं इसके लिए निधियों का अनुमोदन किया जा चुका है।
2. प्रजनन तंत्र में क्षेत्र प्रदर्शन रिकॉर्डिंग (एफपीआर) की स्थापना हेतु 1,15000 स्वदेशी गोवंश के लिए निधियों का अनुमोदन एवं पहली किस्त का आवंटन किया जा चुका है।
3. ए 2 मिल्क का विपणन हरियाणा सरकार द्वारा शुरू किया जा रहा है एवं ओडिशा और कर्नाटक राज्य में ए 2 मिल्क के विपणन के लिए अलग लाईन स्थापित करने की योजना पर कार्य किया जा रहा है।
4. देशी नस्ल के गोवंश के लिए बेहतर प्रणालियाँ अपनाने गोशाला, ट्रस्ट, ब्रीडर सोसाइटी को कामधेनु पुरस्कार एवं किसानों को गोपाल रत्न पुरस्कार से नवाजा जाता है।

कार्यान्वयन

इस मिशन के कार्यान्वयन की जिम्मेदारी राज्यों के पशुधन विकास बोर्ड को दी गयी है। इसमें एकीकृत स्वदेशी पशु केंद्र और गोकुल ग्राम की स्थापना के लिए राशि दी जाती है। राज्य गौसेवा आयोग को एसआईए (एलडीबी) के प्रस्ताव को प्रायोजित करने और इसकी निगरानी का आदेश दिया गया है। स्वदेशी पशुओं के सर्वश्रेष्ठ जननद्रव्य रखने वाली एजेंसिया मसलन, सीसीबीएफ, भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद, कृषि या पशुपालन विश्वविद्यालय, सहकारी समितियां और गौशाला को इसमें प्रतिभागी बनाया गया है।

2. राष्ट्रीय पशुधन मिशन

राष्ट्रीय पशुधन मिशन का मुख्य उद्देश्य पशुधन विकास के विभिन्न कारकों को ध्यान में रखकर पशुधन का सतत् विकास प्राप्त करना है। इसके परिणामस्वरुप पशुपालन का व्यापार नमूना तैयार करना है, जो कि उद्यमियों को 5–6 प्रतिशत वार्षिक विकास दर प्रदान कर सके। स्वदेशी गोवंश नस्लों का सुधार, चारे की वर्ष भर उपलब्धता सुनिश्चित करना, दुग्ध संसाधन का पूर्णतः उपयोग, संसाधनों का संतुलित उपयोग कर सतत् पोषणीय विकास को प्राप्त करना तथा भूमिहीन एवं सीमांत पशुपालकों की सामाजिक–आर्थिक आत्मनिर्भरता सुनिश्चित करना इस मिशन का प्रमुख उद्देश्य है।

पूर्वोत्तर क्षेत्र में सूअर विकास, चारा एवं पशु आहार विकास, पशुधन विकास, एवं कौशल विकास, प्रौद्योगिकी विस्तार इसके चार उप–मिशन हैं।

1. **पूर्वोत्तर क्षेत्र में सुअर विकास उप–मिशनः** इस उप–परियोजना के तहत देश के पूर्वोत्तर भाग में सूअर फार्म और उसके जननद्रव्य के महत्व को वह के जनता

की आजीविका का एक महत्वपूर्ण स्त्रोत माना गया है क्योंकि ये 8 राज्यों में प्रोटीन युक्त भोजन का महत्वपूर्ण स्त्रोत है।

2. **चारा एवं पशु आहार विकास उप–मिशन:** चारे की कमी को पूरा करने, वर्ष भर इसकी उपलब्धता सुनिश्चित करने एवं इसके निर्यात क्षमता बढ़ाने हेतु यह उप–मिशन मील करने का पत्थर सिद्व हो सकता है।

3. **पशुधन विकास उप–मिशन:** डेरी उद्यमशीलता के विकास हेतु उत्पादकता में वृद्धि, पशुपालन का आधुनिकीकरण, गोवंश की नस्लों का सरंक्षण, पशुधन बीमा, कुक्कुट उद्योग की स्थापना कर नए पशुपालन परियोजनाओं का विस्तार करना इसका मुख्य उद्देश्य है।

4. **कौशल विकास, प्रौद्योगिकी विस्तार उप–मिशन:** क्षेत्रीय स्तर पर मशीनरी के उपयोग को बढ़ावा देना, देश के युवाओं को उद्योगों से जुड़े प्रशिक्षण प्रदान करना, इस उप– मिशन का मुख्य उद्देश्य है। इसमें युवाओं को प्रशिक्षण देने की फीस का सरकार खुद भुगतान करती है। इसके फलस्वरुप किसान अनुसंधान संस्थान द्वारा विकसित प्रौद्योगिकियों का लाभ उठाने में सक्षम हो पाते हैं।

5. **भेड़ एवं बकरी विकास योजना** : इस योजना के तहत प्रजनन के बुनियादी ढांचों का विकास, पशुपालकों को कृत्रिम गर्भाधान के फायदे, क्लस्टर आधारित डीवर्मिंग एवं बक बोर शो का आयोजन करने का प्रावधान है। कृत्रिम गर्भाधान को बढ़ावा देने के लिए इसके लैब की स्थापना की जा रही है। इस योजना के तहत 5,00,000 बक बोर के क्लस्टर आधारित डीवर्मिंग करने के लिए अनुदान दिया गया है।

6. **चारा एवं खाद्य विकास योजना** : इस योजना के अंतर्गत चारा उत्पादन को बढ़ावा देने के लिए किसानों को 10.97 टन उच्च गुणवत्ता वाले बीजों का वितरण किया गया है। साइलेज के उत्पादन को बढ़ाने हेतु 3,823 साइलेज उत्पादन ईकाईयों की स्थापना की गयी है। किसानों के बीच बिजली एवं हाथ से संचालित 5,11,130 चाफ कटर का वितरण किया गया है।

7. **नन्दीशाला योजना (अनुदान पर प्रजनन योग्य देशी वर्णित गौसांड का प्रदाय):** इस योजना का मुख्य उद्देश्य ग्रामीण क्षेत्रो के स्थानीय अवर्णित गौवंशीय पशुओं की नस्ल सुधार के लिए देशी वर्णित नस्ल के सांडों द्वारा प्राकृतिक गर्भाधान सुनिश्चित करने का प्रावधान है। पंचायत स्तर पर प्रगतिशील पशुपालकों को देशी वर्णित नस्ल जैसे गिर, थारपारकर, साहीवाल, हरियाणा, गौलव, मालवी, निमाडी, केनकथा आदि नस्ल के सांड अनुदान रूप में उपलब्ध कराने का प्रावधान है। जिन पशुपालकों के पास पर्याप्त कृषि भूमि और न्यूनतम 5 गौवंशीय पशुधन या जिनके पास कृषि भूमि नही है किन्तु 20 या उससे अधिक गोवंश है, वे इसके लाभार्थी हो सकते हैं।

8. **राष्ट्रीय गौ जातीय प्रजनन कार्यक्रम:** मवेशी और भैंस प्रजनन के लिए इस राष्ट्रीय परियोजना को अक्टूबर 2000 में 'मवेशी और भैंस प्रजनन के लिए राष्ट्रीय परियोजना'' (एनपीसीबीबी) के नाम से शुरू किया गया है। इसके पहले चरण के लिए 402 करोड़ रुपये का आवंटन हुआ था। वहीं दूसरे चरण के लिए वर्ष 2006 में 775.87 करोड़ रुपये के आवंटन किया गया था। पशुपालकों तक कृत्रिम गर्भाधान सेवा के वितरण की व्यवस्था की गयी है। इसके अंतर्गत 10 साल की अवधि के भीतर उच्च गुणवत्ता वाली नस्ल द्वारा कृत्रिम गर्भाधान या प्राकृतिक सेवा के माध्यम से उच्च नस्ल के सांड के साथ नियोग की परिकल्पना की गयी है। इस योजना को वर्तमान में 28 राज्यों और एक केंद्र शासित प्रदेश में लागू किया गया है। मौजूदा समय में 9787 कृत्रिम गर्भाधान केंद्रों को क्रायो–कंटेनर और कृत्रिम गर्भाधान की प्रतिस्थापना के लिए सुदृढ़ किया गया है एवं 25,000 कृत्रिम गर्भाधान तकनीशियन को वीर्य प्रौद्योगिकी में प्रशिक्षित किया गया है। वर्ष 2015–16 में 50 वीर्य स्टेशनों का मूल्यांकन हुआ जिसमे से 33 को ए तथा 14 को बी ग्रेड दिया गया। 115 वीर्य बैंक तरल नाइट्रोजन एवं प्रशीतित वीर्य के भण्डारण के लिए बनाये गए।

9. **ग्रामीण बैकयार्ड कुक्कुट विकास योजना** : गरीबी रेखा से नीचे रहने वाले समस्त वर्गों के हितग्राहियों के लिए 100 प्रतिशत अनुदान पर इस योजना का प्रारम्भ वर्ष 2010–11 में हुआ था। उस समय से इस योजना को राष्ट्रीय पशुधन मिशन के अंतर्गत 75 प्रतिशत केंद्रीय योगदान तथा 5 प्रतिशत राज्य सरकार तथा 20 प्रतिशत हितग्राही योगदान अंश पर संचालित किया जा रहा है। इस योजना में प्रत्येक हितग्राही को 4 सप्ताह के लो इनपुट टेक्नॉलोजी वाले 45 पक्षी दो चरणों में प्रदान किए जाते हैं। इस योजना में लाभार्थियों को 1500 रुपये भी दिए जाते हैं। प्रत्येक मदर यूनिट से 300 हितग्राहियों को चूजे प्रदान किए जाते हैं। इस यूनिट के हितग्राही को रु. 60,000 अनुदान उनके बैंक खाते में डाले जाते हैं। इस यूनिट

के लाभार्थियों को 4 सप्ताह के चूजों के लिए रु. 45 प्रति चूजा का भुगतान किया जाता है। वर्ष 2016–17 से 60 प्रतिशत केंद्रीय योगदान तथा 20 प्रतिशत राज्य सरकार तथा 20 प्रतिशत हितग्राही योगदान अंश पर संचालित किया जा रहा है।

10. **ई–पशुहाट**: इसमें ऑनलाइन पोर्टल पर पशुओं के खरीद–बिक्री और उनके उच्च जननद्रव्य उपलब्ध है। बोवाईन स्पर्म के लिए ई–मार्केट पोर्टल शुरू किया गया है जो इंटरनेट– मार्केट के जरिए बिक्री किए जाने वाले स्पर्म की पहचान करने और पता लगाने, प्रजनकों, राज्य एजेन्सियों और हितधारकों को संयोजित करने के साथ–साथ उच्च–गुणवत्ता वाले स्पर्म की उपलब्धता के संबंध में वास्तविक डाटा उपलब्ध कराता है।

निष्कर्ष : अतः पशुपालकों को इन सरकारी योजनाओं को अपनाकर अपनी आय सुदृढ़ करने का प्रयास करना चाहिए जिससे देश की अर्थव्यवस्था तथा जीडीपी को बढ़ाने में उनका अग्रिम योगदान रहे। सरकार के सभी प्रयास और योजनाएं किसानो और इनके जुड़े हितधारकों के लिए है जिनके साथ कार्य कर वे एक सफल किसान और उद्यमी बन सकते हैं।

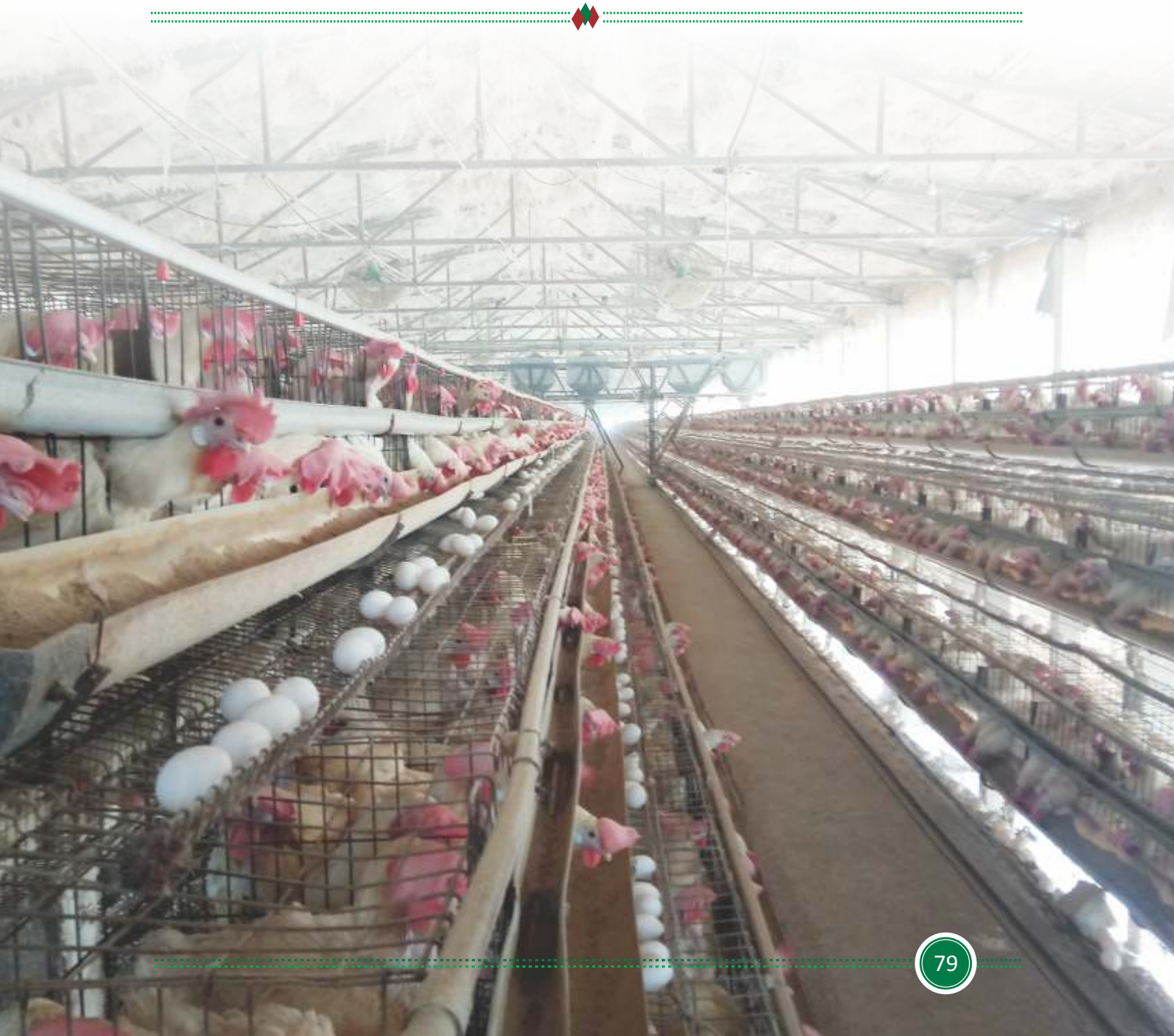

मालवा क्षेत्र में रबी प्याज की उन्नत खेती

धर्मेन्द्र सिंह यशोना[1], मनोज कुमार तरवरिया[1] एवं अनिता कुमावत[2]
[1]भाकृअनुप–भारतीय मृदा विज्ञान संस्थान, नबीबाग, मध्यप्रदेश
[2]भाकृअनुप–भारतीय मृदा एवं जल संरक्षण संस्थान अनुसंधान केन्द्र, राजस्थान

रबी ऋतु में उगाई जाने वाली सब्जी की फसलों में प्याज एक महत्वपूर्ण फसल का स्थान ले चुकी है। यह महाराष्ट्र राज्य सहित हमारे देश के अन्य भागों में बड़े पैमाने पर उगाई जाती है एवं अन्य देशों में भारी मात्रा में निर्यात की जाने वाली फसल के रूप में जानी जाती है। प्याज का उपयोग सलाद के अतिरिक्त विभिन्न प्रकार के व्यंजनों का स्वाद एवं सुगंध बढ़ाने के लिए भी किया जाता है। प्याज के आयुर्वेदिक गुणों के कारण इसका उपयोग विभिन्न प्रकार की औषधि बनाने में भी किया जाता है। प्रसंस्करित पदार्थों के लिए इसके छल्ले, चूर्ण, तेल, शुष्क छिलके इत्यादि का उपयोग किया जाता है। विश्व स्तर पर हमारे देश को प्याज उत्पादन में दूसरा स्थान प्राप्त है ओर इसकी निरंतर घरेलू उपयोग एवं निर्यात की मांग के कारण व्यवसायिक फसल के रूप में किसान के बीच लोकप्रियता बढ़ती जा रही है।

मध्यप्रदेश के मालवां अचंल में कृषकों के पास प्रर्याप्त कृषि योग्य भूमि एवं संसाधन है। यहाँ अधिकांश किसान सीमांत कृषक की श्रेणी में आते हैं। अर्धशुष्क जलवायु के साथ मध्यम काली मृदा और सिंचाई का पानी रबी मौसम की खेती करने के लिए कुछ क्षेत्रों को छोड़कर प्रर्याप्त मात्रा में उपलब्ध है। इस क्षेत्र में किसानों के पास रबी में प्याज उत्पादन के लिए प्रर्याप्त मात्रा में संसाधन एवं तकनीक उपलब्ध है। इससे किसान को अच्छी कीमत पर बिकने वाले प्याज का उत्पादन बहुत ज्यादा होता है। रबी में प्याज की फसल सोयाबीन फसल की कटाई के बाद ली जाती है। लेकिन सोयाबीन फसल के द्वारा मृदा से सल्फर की अधिक मात्रा का दोहन होने के कारण प्याज के उत्पादन पर विपरीत प्रभाव पड़ता है क्योंकि प्याज की फसल को भी सल्फर तत्व की अधिक मात्रा की आवश्यकता होती है। प्याज में सल्फर का उपयोग करने से गुणवत्तायुक्त कंद का उत्पादन होता है तथा प्याज की भंडारण क्षमता भी बढ़ जाती है। लेकिन किसान नई उन्नत प्रजातियों एवं उचित तकनीकी जानकारी के अभाव के कारण प्याज की अच्छी गुणवत्तायुक्त फसल नहीं ले पाते हैं।

रबी प्याज उत्पादन की तकनीकी

प्याज की पैदावार एवं गुणवत्ता पर तापमान, मृदा का प्रकार, खेत ढलान, रोपण का समय, बीज की गुणवत्ता इत्यादि कारकों का अधिक प्रभाव पड़ता हैं। पौधों की सर्वोत्तम वृद्धि एवं कंद विकास के लिए 20–25 डिग्री सेल्सियस तापमान तथा 70 प्रतिशत आर्द्रता अनुकूल होती है। प्याज में कंद बनने व आकार बढ़ते समय वातावरण का तापमान 25 डिग्री सेल्सियस से अधिक उपयुक्त होता है। वानस्पतिक वृद्धि के समय उच्च तापमान एवं वर्षा के कारण वातावरण में अधिक आर्द्रता होने से बैंगनी धब्बा एवं झुलसा रोग का प्रकोप बढ़ जाता हैं जिसका सीधा प्रभाव कंद के विकास व उत्पादन पर होता है। कंद के विकास के समय अधिक दिनो तक तापमान में गिरावट होने से फूल के डंठल निकलने लगते हैं और अचानक तापमान बढ़ने से गांठें पूरी तरह विकसित हुए बिना ही परिपक्व हो जाती हैं। इसलिए रबी मौसम में प्याज कि रोपाई मध्य दिसम्बर से जनवरी प्रथम सप्ताह तक कर देने से प्याज की अच्छी पैदावार व उत्पादन के लिए जनवरी से मार्च तक का वातावरण उपयुक्त होता है।

प्याज की किस्म का चुनाव

भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद की बागवानी अनुसंधान संस्थाओं, राष्ट्रीय बीज निगम एवं कृषि विश्वविद्यालय द्वारा विकसित की गई प्याज की उन्नत प्रजातियों का उपयोग कर अधिक उत्पादन प्राप्त कर सकते हैं जोकि किसान को भी आर्थिक रूप से लाभकारी होती है। अधिक उत्पादन देने वाली प्याज की प्रजातियां जैसे पूसा रत्नार, पूसा माधवी, एग्रीफाउंड डार्क रेड, लाईन–883, भीमा डार्क रेड, भीमा किरण, भीमा शक्ति, भीमा स्वेता, भीमा सुपर, भीमा रेड, भीमा राज, फुले स्वर्णा, फुले सामर्थ्य, अर्का कल्याण, एन–53 इत्यादि को अपने प्रक्षेत्र पर लगाकर अच्छा उत्पादन ले सकते हैं।

बुआई का समय तथा बीज की मात्रा

रबी मौसम में प्याज उत्पादन के लिए बीज की बुआई अक्तूबर माह में मानसून समाप्त होने के बाद करें एवं 45–60 दिन के बाद पौध का रोपण नवम्बर–दिसम्बर में करें तथा खुदाई का कार्य मार्च–अप्रैल तक करें। खरीफ (स्थानीय भाषा में नाशिक प्याज) प्याज की बुआई अगस्त–सितम्बर माह में, पौध रोपण सितम्बर–अक्तूबर में तथा खुदाई जनवरी–फरवरी तक करते हैं। 8–10 कि.ग्रा. बीज एक हैक्टर खेत के लिए पर्याप्त होता है। साधारणतः खरीफ मौसम के लिए बीज की मात्रा रबी मौसम की अपेक्षा अधिक लगती हैं।

मृदा एवं खेत की तैयारी

प्याज उत्पादन के लिए बलुई दोमट मृदा उपयुक्त होती हैं। मध्यम काली मृदा में भी प्याज की खेती आसानी से की जा सकती है। वैसे प्याज की फसल को सभी प्रकार की मृदा में उगा सकते हैं लेकिन मध्यम कार्बनिक पदार्थ युक्त, 6.5–7.5 पीएच मान वाली मृदा सर्वोत्तम मानी जाती हैं। प्याज की अच्छी फसल के लिए मृदा में उपलब्ध पोषक तत्व नाइट्रोजन, फास्फोरस, पोटाशियम, सल्फर एवं सूक्ष्म पोषक तत्व पर्याप्त मात्रा में होना बहुत आवश्यक है। भूमि को सुविधानुसार 2–3 बार हल से जुताई करके भुरभुरी बनाएं। यदि खेत में अधिक बड़े ढ़ेले हो तो ट्रैक्टर द्वारा रोटोवेटर चलाकर भुरभुरा एवं समतल कर लें तथा 1.5–2.0 मीटर चौड़ाई एवं आवश्यकतानुसार लम्बाई में छोटी–छोटी क्यारियाँ तैयार करें। क्यारी की चौड़ाई ऐसी होनी चाहिए, जिससे मेड़ों पर बैठकर निराई, गुड़ाई एवं अन्य कृषि क्रियायें आसानी से की जा सकें। यदि खेत एक समान समतल हो तो हल की सहायता से नाली बनाकर उपयुक्त चौड़ाई और लम्बाई की ऊंची उठी क्यारियों में रोपाई करनी चाहिए और नाली के द्वारा सिंचाई करनी चाहिए। मेंड़ वाली क्यारियों की अपेक्षा ऊँची उठी क्यारियों में कंद का आकार व गुणवत्ता अच्छी होने के कारण प्याज का उत्पादन भी अधिक होता है।

पौध तैयार करना

प्याज के बीज बहुत छोटे आकार के होने के कारण इनकी बुवाई मृदा की सतह पर छिड़काव विधि द्वारा की जाती हैं। जिस खेत में नर्सरी की बुआई करनी हो उसमें बुवाई के 15–20 दिन पहले सिंचाई करके काली पॉलीथीन बिछा देनी चाहिए। जिससे खेत के हानिकारक कीट, रोगाणु एवं खरपतवार के बीज सौरीकरण क्रिया से नष्ट हो जाये। इसके पश्चात् खेत की जुताई ट्रैक्टर या बैल चलित बख्खर से 5–7 सें.मी. गहराई तक करना चाहिए। जिससे मिट्टी की सतह भुरभुरी हो जाए। इससे अधिक गहरी जुताई करने पर काली मृदा में पौधों की जड़े अधिक गहरी चली जाती हैं इससे कंद निकालते समय प्याज के पौधे जड़ के पास से अधिक टूटते हैं। इसके अलावा प्याज के बीज की बुवाई 15–20 सें.मी. ऊँची उठी हुई क्यारियों में करें। इन क्यारियों के मध्य में गहरी एवं चौड़ी नाली बनाएं जिससे आसानी से सिंचाई व अन्य कृषि क्रियायें की जा सकें। आर्द्र गलन जैसे रोग से बचाव के लिए बीज को फफूंदनाशक दवा से उपचारित कर बुआई करनी चाहिए। बुआई के बाद बीज को बारीक छनी हुई मिट्टी या गोबर की खाद या कम्पोस्ट से ढक देने के बाद फव्वारें से सिंचाई करें या क्यारियों के मध्य में बनाई गहरी नाली से पानी धीमी गति से मिट्टी गीली होने तक दें।

पौध की रोपाई एवं दूरी

रबी प्याज की पौध की रोपाई सामान्यतः मेंड़ बनाकर समतल क्यारियों में की जाती हैं, लेकिन मध्य में नाली बनाकर ऊँची उठी क्यारियों पर करने से अच्छा परिणाम मिलता है। पौध रोपण से पूर्व पौध की जड़ों को कार्बेन्डाजिम 0.10 प्रतिशत एवं मोनोक्रोटोफॉस 0.10 प्रतिशत के घोल में 10–15 मिनट डुबोकर रोपाई करने से सड़न एवं चने की कटुआ इल्ली से सुरक्षा और पौध को ज्यादा से ज्यादा स्थापित होने में सहायता मिलती है। प्याज रोपाई के लिए सामान्यतः 10–15 सें.मी. पौध से पौध की दूरी रखी जाती हैं।

सिंचाई एवं खरपतवार प्रबंधन

प्याज एक उथली एवं सूक्ष्म जड़ वाली फसल है। इसकी जड़ें जमीन की सतह से अधिकतम 15 सें.मी. तक सीमित होती हैं। रबी प्याज की फसल में एक सिंचाई रोपाई के तुरंत बाद करते हैं। इसके बाद 15–20 दिन के अंन्तराल पर कंद बनने तक 5–6 सिंचाई की आवश्यकता होती है। टपक सिंचाई तकनीकी द्वारा प्याज की सिंचाई करना सतह सिंचाई की अपेक्षा अधिक लाभदायक पाया गया है। इससे अधिक उत्पादन और गुणवत्ता के साथ ही पानी की बचत भी होती हैं। पानी की कमी होने पर इस विधि से फसल की सिंचाई की पूर्ति पैदावार को बिना प्रभावित किए की जा सकती है। प्याज की फसल में खरपतवार जैसे–मोथा, दूब, बथुआ, दुधी, चौलाई इत्यादि उगते हैं। इनका नियंत्रण फसल बढ़वार के पहले करना आवश्यक हैं अन्यथा मजदूर के द्वारा इनका नियंत्रण अधिक खर्चीला हो जाता है। खरपतवार फसल को अधिक नुकसान पहुंचाते हैं। खरपतवारनाशी जैसे ऑक्सी फ्लोरोफेन का 10–15 मि.ली. या क्यूजालोफोल ईथाइल 25 मि.ली. प्रति 15 लीटर पानी के साथ मिलाकर छिड़काव करने से खरपतवारों को नियंत्रित किया जा सकता है।

पोषक तत्व प्रबंधन

फसल की अच्छी पैदावार एवं उत्पादन के लिए 20–25 टन प्रति हैक्टर गोबर की खाद क्यारियाँ तैयार करने के पूर्व समान रूप के खेत में मिला दे या गोबर की खाद उपलब्ध ना होने की स्थिति में 3 टन वर्मीकम्पोस्ट की खाद का उपयोग करें। प्याज की फसल को 100 किग्रा नाइट्रोजन, 50 कि.ग्रा. फॉस्फोरस, 50 किग्रा पोटाश तथा 30 किग्रा सल्फर देने की सिफारिश की जाती है। फॉस्फोरस, पोटाश और सल्फर की पूरी एवं नाइट्रोजन की 25 किग्रा मात्रा को पौध रोपाई के पहले मिट्टी में मिला देनी चाहिए और शेष बची नाइट्रोजन को तीन समान भागों में विभाजित करके पौध रोपण के 30, 45 और 60 दिनों के बाद खड़ी फसल एक समान छिड़क देवें। यदि प्याज की फसल बलुई मिट्टी में लगाई गई हो तो इसमें नाइट्रोजन व अन्य पोषक तत्वों की हानि जल अतः स्त्राव के कारण अधिक होती हैं। ऐसी स्थिति में पौध रोपण के 15, 30, और 45 दिनों के बाद जल घुलनशील उर्वरक एनपीके (19:19:19) को 150–200 ग्राम प्रति पम्प (15 लीटर जल) और एनपीके (13:0:46) को भी 150–200 ग्राम प्रति पम्प 60, 75 और 90 दिनों के बाद एवं जल घुलनशील पोटाशियम सल्फेट (0:0:50:17.5) का 45, 60, और 75 दिनों के बाद पर्णीय छिड़काव करने से उपज में बढ़ोत्तरी के साथ लम्बी अवधि के भंडारण के लिए गुणवत्तायुक्त कंद की प्राप्ति होती है।

प्याज की फसल में रोग एवं कीट सुरक्षा

बैंगनी धब्बा रोग

बैंगनी धब्बा नामक रोग *आल्टरनेरिया पोरी* फफूंद से होता है। इस रोग में प्याज की पत्तियों पर सफेद भूरे रंग के धब्बे बनकर मध्य भाग बैंगनी रंग का हो जाता है। रबी मौसम में असमय वर्षा होने के बाद जब तापमान 26–32 डिग्री सेल्सियस होता है तब इस रोग का प्रकोप बढ़ जाता है। इसकी रोकथाम के लिए इप्रोड्यिोन 30 ग्राम प्रति पम्प (15 लीटर पानी) या हेक्साकोनाजोल 15 ग्राम प्रति पम्प या मैन्कोजेब 35 ग्राम प्रति पम्प पानी में घोलकर 10 दिनों के अंतराल पर छिड़काव करना चाहिए।

झुलसा रोग

प्याज का झुलसा नामक रोग *स्टेम्फीलियम बेसीकेरियम* फफूंद द्वारा होता है। प्रारंभिक अवस्था में प्याज की पत्तों पर छोटे सफेद और हल्के भूरे धब्बे बनने के बाद काले या भूरे हो जाते हैं। इस रोग में पत्ती की बाहरी सतह हरी लेकिन भीतरी सतह में धब्बे बन जाते हैं। इसकी रोकथाम के लिए क्लोरोथैलोनिल फफूंदनाशक दवा का 30 ग्राम प्रति पम्प (15 लीटर पानी) या मैन्कोजेब 35 ग्राम प्रति 15 लीटर पानी में घोलकर 10–15 दिनों के अंतराल से छिड़काव करना चाहिए।

आर्द्र गलन

आर्द्र गलन नर्सरी पौध में लगने वाला प्याज का प्रमुख रोग है। यह *पयूजेरियम ऑक्सीपोरम* नामक फफूंद के कारण होता है। इससे पौधे भूमि की सतह पर लगे हुए भाग के पास से सड़ जाते हैं। इसकी रोकथाम के लिए थायरम 2 ग्राम प्रति कि.ग्रा. बीज की दर से उपचारित कर बीज की बुवाई करना चाहिए या नर्सरी पौध में जड़ों के पास कॉपर ऑक्सीक्लोराइड 30 ग्राम प्रति पम्प (15 लीटर पानी) की दर से 10 दिनों के अंतराल पर छिड़काव करें। जैविक फफूंदनाशक *ट्राईकोडरमा विरडी* का उपयोग भी बीज बोने से पहले गोबर की खाद के साथ मिलाने से इसकी रोकथाम की जा सकती है।

थ्रिप्स

थ्रिप्स कीट आकार में बहुत छोटे, पीले भूरे रंग के होते हैं जो नई पत्तियों का रस चूसकर पौधों को कमजोर बनाते हैं। इसके कारण पत्तियाँ सफेद भूरे रंग की हो जाती है। अधिक तापमान (30–35 डिग्री सेल्सियस) होने पर इसका प्रकोप बढ़ जाता है। इसकी रोकथाम के लिए एसीफेट 30 ग्राम प्रति पम्प या प्रोफेनोफॉस 15 ग्राम प्रति पम्प (15 लीटर पानी) या ईमिडाक्लोरोप्रिड 15 ग्राम प्रति पम्प पानी में घोलकर छिड़काव करना चाहिए।

चने की कटुआ इल्ली

चने की कटुआ इल्ली पौध रोपण के बाद भूमि की सतह से पौध को काट कर जड़ भाग को खाती है। इसका नियंत्रण कार्बेरिल डस्ट 30 ग्राम प्रति पम्प (15 लीटर पानी) या जड़ क्षेत्र में फोरेट डालकर पौधों की सुरक्षा कर सकते हैं।

कंदों की खुदाई एवं भंडारण

रबी प्याज के कंदो की खुदाई मध्य मार्च में उस समय करते हैं जब पत्तियों का रंग थोड़ा पीला होने लगे तथा कंद मिट्टी की सतह तोड़कर उपर निकलने लगते हैं। कंद का ऊपरी भाग डंठल या पत्तियों के नीचे का तना हाथ से दबाने पर सख्त न होकर मुलायम हो जाता है और कंद का ऊपरी हिस्सा पत्तियों सहित गिरने लगता है। इसी समय कंदों की खुदाई करना उपयुक्त होता है। खुदाई के बाद पत्तियों सहित कंदों को इन्हीं की पत्तियों से इस प्रकार ढककर रखते हैं कि कंद के उपर सूर्य का प्रकाश सीधा न पड़े। इससे कंद में रंग तथा भंडारण क्षमता बढ़ जाती है जिससे बाजार मूल्य ज्यादा मिलता है। खुदाई किये गये कंद की पत्तियाँ 20–30 दिन में अच्छी तरह से सूख जाती है। इसके पश्चात् कंद के डंठल काट देना चाहिए। डंठलों को बहुत

नजदीक से नहीं काटना चाहिए नहीं तो कंद का मुँह खुला रह जाता है जिससे प्याज की भंडारण क्षमता कम हो जाती है और कंद सड़ने लगते हैं। प्याज के कंदों का भंडारण वैज्ञानिक तरीके से 0–3 डिग्री सेल्सियस तापमान तथा 90 प्रतिशत आर्द्रता पर शीत भंडार में करते हैं। लेकिन किसान के लिए यह बहुत खर्चीला होता है। इसलिए किसान स्वयं अपनी सुविधानुसार प्याज कंद का भंडारण 8–10 माह के लिए हवादार शुष्क स्थान पर मोटे तार की जाली में कर सकता हैं। तार की जाली की संरचना इस प्रकार तैयार करें जिसे ईंट या लकड़ी के चौकोर टुकड़ों पर रखा जा सके। इससे प्याज के कंदो के चारो तरफ से हवा का आवागमन होगा। प्रायोगिक तौर पर यह देखा गया है कि प्याज के कंद्रों की ग्रेडिंग (आकार में एक समान) करके भंडारण से कंद में सड़न–गलन की समस्या 90 प्रतिशत तक कम हो जाती है क्योंकि एक समान आकार के कंद में हवा का संचालन, विभिन्न आकार के कंदों की अपेक्षा अधिक होता हैं।

पैदावार

सामान्यतः प्याज की उपज 200–300 कुंतल प्रति हैक्टर तक प्राप्त हो जाती है। लेकिन उपज प्याज की प्रजातियों एवं फसल प्रबंधन पर निर्भर करती है। आकार में चपटे दिखाई देने वाली प्रजातियों की उपज अधिक एवं नारीयल के समान दिखाई देने वाली प्रजातियों की उपज कम होती है किन्तु इनकी भंडारण क्षमता अधिक होती है।

प्याज के भंडारण की संरचना

बायोचार : मृदा के लिए वरदान

निधि कम्बोज, विकास जुन, आरके शर्मा, आरएस छोकर एवं सुभाष चन्द्र गिल
भाकृअनुप–भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान, करनाल

बदलती जलवायु, जनसंख्या वृद्धि तथा निरंतर घटते प्राकृतिक संसाधनों से संबन्धित समस्याएं वर्तमान समय की सबसे बड़ी चुनौतियाँ है। मनुष्यों द्वारा की जाने वाली बहुत सी गतिविधियों के दुष्परिणाम स्वरूप वातावरण तो प्रदूषित हुआ ही है, अपितु जलवायु में भी परिवर्तन होता जा रहा है तथा प्राकृतिक संसाधनों जैसे मृदा की गुणवता, जल के स्त्रोत आदि को भी बहुत हानि पहुँचती है। किसानों द्वारा फसल अवशेषों को जलाने से भी पर्यावरण प्रदूषण की समस्या बढ़ जाती है तथा मृदा में उपस्थित सूक्ष्म एवं अन्य मित्र कीट भी नष्ट हो जाते हैं। हरियाणा में औसतन 70 लाख टन धान की पराली प्रतिवर्ष उत्पन्न होती है जिसे खेतों में जला दिया जाता है, जोकि पर्यावरण प्रदूषण को बढ़ावा देता है। इस समस्या से बचने के लिए एक तकनीक को अपनाया जा सकता है, जिसमे इन फसल अवशेषों को जलाने के बजाए इनको निर्धारित तापमान पर ऑक्सीजन की अनुपस्थिति में एक उत्पाद बनाया जाता है जिसे बायोचार के नाम से जाना जाता है।

चित्र:1 बायोचार

वास्तव में बायोचार एक नवीन नहीं बल्कि बहुत समय पहले से प्रयोग में लाई जाने वाली तकनीक है। मिस्र के लोग अपने प्रियज़नों के शवों को सुरक्षित करने के लिए जिस तरल पदार्थ का प्रयोग करते थे उसे भी उष्म विघटन की प्रक्रिया से बनाया जाता था जोकि बायोचार का ही रूप था। इसी तरह अमेरिका के अमेजन की घाटी में पाई जाने वाली काली धरती भी बायोचार के प्रयोग से ही बनी है।

बायोचार का उत्पादन

बायोचार प्राकृतिक रूप से जंगलों में आग लगने से तथा मानव जनित तरीके से पदार्थो को कम हवा अथवा हवा की अनुपस्थिति में गरम करके बनाया जाता है। बायोचार को बनाने के लिए कृषि तथा वनों से प्राप्त होने वाले उप–उत्पादों का प्रयोग किया जाता है। इन उत्पादों में फसलों के अवशेष, धान की पराली, पेड़ों का तना, मक्के के सिट्टे, अखरोट की खोल, मूँगफली के छिलके तथा लकड़ी के टुकड़े इत्यादि शामिल है। इसके अलावा औद्योगिक उत्पादों जैसे गन्ने की खोई, कागज का गुदा आदि भी प्रयोग किया जा सकता है।

उत्पादन प्रक्रिया

बायोचार को उष्म विघटन की प्रक्रिया से उत्पन्न किया जाता है। इस प्रक्रिया में फसल अवशेषों को ऑक्सीजन की अनुपस्थिति मे गरम करके उसमे से सभी प्रकार के वाष्पशील पदार्थों को निकालकर बनाया जाता है। उष्म विघटन की प्रक्रिया को विभिन्न प्रकार से कर सकते है, पहला तेज गति से जिसमें लगभग 1000 डिग्री सेंटीग्रेड प्रति मिनट तापमान की दर से पदार्थ गर्म किया जाता है तथा दूसरा धीमी गति से जिसमे तापमान 5–30 डिग्री सेंटीग्रेड प्रति मिनट की दर से रखा जाता है। अमूमन यह पाया गया है कि बायोचार का उत्पादन धीमी गति वाली प्रक्रिया में अधिक होता है तथा कम तापमान होने से इसकी गुणवत्ता भी बनी रहती है फलस्वरूप इसका प्रयोग मृदा की उर्वरता को बढ़ाने में अच्छे प्रकार से किया जा सकता है।

बायोचार बनाने की विधि

बायोचार को उष्म विघटित प्रक्रिया से बनाने के लिए पौध–अवशेष को एक लोहे के बंद ड्रम में रखकर चुल्हे या चिमनी के ऊपर रखकर गर्म किया जाता है। इस दौरान ड्रम के ऊपरी किनारो की ओर कुछ छिद्र कर दिये जाते हैं। फसल–अवशेषों को राख़ हो जाने तक जलने दिया जाता है तथा बाद में ठंडा हो जाने पर खेत की मृदा में अकेले या किसी और खाद के साथ मिलाकर इसका उपयोग किया जा सकता है।

बायोचार की भौतिक विशेषताएं

बायोचार एक काले रंग का छिद्रयुक्त ठोस पद्धार्थ होता है। इसकी विशेषता इसके बनाने में प्रयोग होने वाली सामग्री तथा ऊष्म विघटन की प्रक्रिया दोनों पर निर्भर करती है। बायोचार में कार्बन की मात्रा अधिक होती है, जिसकी वजह से इसे कार्बनिक खाद के रूप में भी प्रयोग किया जाता है। बायोचार का सतह क्षेत्र भी अधिक होता है एवं इसमें कुछ

चित्रः 2 उत्पादन से उपयोग तक

मात्रा में खनिज पदार्थ भी पाये जाते है। बायोचार की आकृति छिद्रपूर्ण होती है जिसमे लगभग 50–140 वर्ग मीटर प्रति ग्राम के माप के बड़े–बड़े छिद्र मौजूद होते हैं तथा इसकी अवशोषण क्षमता को बढ़ा देते हैं।

बायोचार के प्रयोग से होने वाले लाभ

कृषि में बायोचार का प्रयोग

- एक अच्छी एवं उपजाऊ मृदा के लिए उसका भौतिक, जैविक तथा रसायनिक तीनों ही स्तर पर स्वस्थ होना बहुत आवश्यक है। बायोचार मृदा की स्थिति को इन तीनों ही स्तर पर सुधारने का कार्य करता है।
- यह मृदा की जल धारण क्षमता को भी बढ़ाता है। रेतीली दोमट मिट्टी में जल तथा वायु के उचित संचार एवं जल संरक्षण को बढ़ाने में भी बायोचार सहायक सिद्ध हुआ है।
- मृदा में उपस्थित सूक्ष्म जीवों के लिए बायोचार के छिद्रों के रूप में निवास स्थान तो प्राप्त होता ही है साथ ही बायोचार से उनको भोजन भी उपलब्ध होता है जिससे उनकी प्रजनन एव कार्यशीलता को बढ़ावा मिलता है।
- बायोचार मृदा में कार्बनिक पदार्थ और धरण (ह्यूम्स) की मात्रा में वृद्धि करता है।
- बायोचार स्थायी रूप से मृदा के कणों से जुड़ जाते हैं। तथा उन्हें मजबूती देते हैं। बायोचार कणों की समुचित स्थिरता को बढ़ाते हैं जिसके फलस्वरूप मृदा की कुल सांद्रता भी बढ़ जाती है।
- बायोचार मृदा की धनायन विनिमय क्षमता को भी बढ़ाते हैं।
- बायोचार में मूल रूप से कैल्सियम, मैग्नीशियम एवं फॉस्फोरस की मात्रा अधिक होती है, जिस कारण यह अम्लीय प्रवत्ति वाली मृदा की पी. एच. को ठीक करने मे सहायक सिद्ध होता है।
- बायोचार पोषक तत्वों के स्त्रोत के रूप मे तो मृदा की उर्वरता को तो बढ़ाता ही है साथ ही उर्वरक उपयोग क्षमता में भी वृद्धि करता है।
- बायोचार के प्रयोग से मिट्टी में उपस्थित मित्र कीट तथा उपयोगी सूक्ष्म जीव की संख्या में इजाफा होता है जिससे पौधों में रोग प्रतिरोधक क्षमता भी बढ़ती है।
- कीटनाशक एवं खरपतवारनाशक अवशिष्टों के दुष्प्रभाव को भी बायोचार की मदद से कम किया जा सकता है।
- फसल अवशेषों को आग लगाकर जला देने से उसमे उपस्थित पोषक तत्व वाष्पीकरण के कारण क्षीण हो जाते हैं। इसलिए फसलों को जलाए नहीं बल्कि उन्हें बायोचार में परिवर्तित करके प्रयोग करे तथा

रसायनिक उर्वरकों के प्रयोग को कम कर लाभ उठाए।

पर्यावरण की स्वच्छता के लिए बायोचार का प्रयोग

- बायोचार क्योंकि उप–उत्पादों एवं अवशेषों को पुनरावृत्त करके बनाया जाता है तो यह अनुपयोगी तथा अपशिष्ट उत्पादों को कम करने में मदद करता है।
- बायोचार वातावरण में उपस्थित कार्बन को मिट्टी के अन्दर संग्रहित करता है जिससे मृदा में कार्बन की मात्रा भी बढ़ जाती है। आंकड़ों के अनुसार बायोचार लगभग 40–75 प्रतिशत कार्बन को मिट्टी में पृथक करता है।
- विभिन्न प्रकार के अवशिष्टों से प्राप्त बायोचार एक खांखर आकृति होने के कारण बहुत से प्रदूषकों को सोखने की क्षमता रखता है। यह दूषित मृदा एवं पानी से भारी धातुओं जैसे सीसा, कैडमियम, आर्सेनिक आदि निकालने में मदद करता है।
- कुछ बायोचार जैसे गेहूँ के भूसे से 300 से 700 डिग्री सेंटीग्रेड तापमान पर बना बायोचार विभिन्न जैविक दूषित प्रदार्थों को निकालने मे भी सहायक है।
- यह दूषित पानी को शुद्ध करने मे भी मददगार सिद्ध हुआ है। कुछ शोधकर्ताओ ने पाया है कि देवदार की नुकीली पत्तियों से प्राप्त बायोचार पानी से विभिन्न रसायनिक प्रदार्थों को निकालने मे सक्षम है।

उपरोक्त सभी लाभों को ध्यान में रखते हुए ये कहना अनुचित नहीं होगा कि एक स्वस्थ मृदा एवं सतत कृषि के लक्ष्य को पाने मे बायोचार एक काले सोने के समान है। इसीलिए बायोचार को कृषि मे अवश्य अपनाएं और पर्यावरण को स्वच्छ बनाए।

हिन्दी भारतीय संस्कृति की आत्मा है।

–कमलापति त्रिपाठी

वर्मीवाश

विकास जुन, आरएस छोकर एवं राजपाल मीना
भाकृअनुप–भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान, करनाल

भारत एक कृषि प्रधान देश है जिसकी दो तिहाई आबादी गाँवों में बसती है। हमारे देश मे हरित क्रान्ति 1966–67 में शुरू हुई जिसके फलस्वरूप उन्नत किस्मों के बीज एवं रासायनिक उर्वरकों, कीटनाशक एवं फफूदंनाशी इत्यादि का प्रयोग कृषि में उत्पादन बढ़ाने के लिए हुआ। इनके रसायनों के लगातार उपयोग से भूमि के भौतिक, रासायनिक व जैविक गुणों में ह्रास हुआ है। यहीं नहीं खाद्य पदार्थों में जहरीलापन बढ़ने से मनुष्यों में बीमारी भी देखी जा रही है। उदाहरण फसलों में मैलाथियान का निरन्तर प्रयोग होने से मनुष्य में मधुमेह, दिल का दौरा जैसी बिमारियाँ हो जाती हैं।

उपरोक्त समस्याओं से निदान पाने के लिए रासायनिक उत्पादों का उपयोग कम करके उनके स्थान पर जैविक उत्पादों का उपयोग एक अच्छा विकल्प है।

उदाहरण के लिए गोबर की खाद, कम्पोस्ट, वर्मी कम्पोस्ट, वर्मीवाश इत्यादि इन सभी उत्पादों को कम लागत में किसान स्वयं उत्पादित कर सकते है। आज के युग में वर्मीवाश जिसे केचुआ द्वारा स्वचालित किया जाता है। जिसमें विभिन्न हार्मोन्स, एंजाइम व पोषक तत्व पाए जाते हैं। इसका प्रयोग अन्न की गुणवत्ता बढ़ाने एवं किसानों को उनकी फसलों का अधिक दाम प्रदान करने के लिए किया जा सकता है।

वर्मीवाश

वर्मीवाश एक तरल जैविक खाद है। जो ताजा वर्मी कम्पोस्ट व केचुएं के शरीर को धोकर तैयार किया जाता है। इसके उपयोग से न केवल उत्तम गुणवत्तायुक्त उपज प्राप्त कर सकते हैं, बल्कि इसे प्राकृतिक जैव कीटनाशक के रूप में भी उपयोग किया जा सकता है। यह केचुओं के अपशिष्ट पदार्थ व म्यूकस स्राव का मिश्रण है। इसका पौधों की पत्तियों पर छिड़काव किया जाता है। वर्मीवाश में घुलनशील नाइट्रोजन, फास्फोरस और पोटाश मुख्य पोषक तत्व हैं।

वर्मीवाश बनाने की विधि

- वर्मीवाश बनाने के लिए 300 लीटर क्षमता का ड्रम लें उसमें पेंदे में निकासी हेतु एक टोटी (नल) लगाए।
- टोटी या नल के अन्दर की ओर जाली लगा दें ताकि कचरा ना फंस पाए।
- सबसे नीचे 300 (सेमी) परत में अमरुद के आकार के पत्थरों से भरें।
- इसके ऊपर 20 सेंमी परत कंकरीट से भरें।
- 14 से.मी. परत रेत की डालें।
- इसके ऊपर गाय भैंस का ठण्डा कच्चा गोबर ड्रम की गर्दन तक भरें।
- गोबर में 2–3 किलोग्राम *इसीनिया फीटिडा* प्रजाति के केचुए छोड़ दें एवं ऊपर से घास–फूस की पतली परत बिछा दें।
- ड्रम के ऊपर एक मटका रखें जिसके पेंदे पर छोटा छिद्र हो ताकि बूँद–बूँद पानी टपकता रहें।
- पानी गिरने की गति इस प्रकार रखें की 24 घण्टों मे 3 लीटर पानी ही गिरे।
- ड्रम मे भरे हुए गोबर को केचुएं वर्मी कम्पोस्ट में बदलते रहेगें। यह प्रकिया 15 दिन मे पूरी होगी।
- ड्रम में तैयार वर्मीकम्पोस्ट को एकत्रित कर लें एवं

तालिका 1: वर्मीवाश का रसायनिक संगठन

पी एच	7.21
नाइट्रोजन प्रतिशत	0.38
फास्फोरस प्रतिशत	0.18
पोटाश प्रतिशत	0.98

तालिका 2: वर्मीवाश में उपलब्ध सूक्ष्म पोषक तत्व

पोषक तत्व	मात्रा (पीपीएम)
सोडियम	8+1
कैल्सियम	3+1
कॉपर	0.01+0.001
मैग्नीशियम	158.44+23.42
मैगनीज	0.58+0.040
जिंक	0.02+0.001

इसके स्थान पर ठण्डा किया कच्चा गोबर पुनः भर दे।

- रोजाना लगभग 2.5 लीटर वर्मीकम्पोस्ट तैयार होगा जिसे बोतलों में भरकर एक बड़ी टंकी में भर दे।
- अब यह वर्मीवाश किसी भी फसल में छिड़काव हेतु तैयार है।

वर्मीवाश का फसल उत्पादकता पर प्रभाव

कृषि वैज्ञानिकों द्वारा अध्ययन में यह पाया गाया है कि वर्मीवाश के छिड़काव से पालक में 5 से 6 टन/हैक्टर, प्याज में 6 से 7 टन/हैक्टर एवं आलू में 7 से 8 टन/हैक्टर उपज प्राप्त की जा सकती है। जोकि सामान्य उत्पादन से 15–20 प्रतिशत अधिक है। मिर्च पर किए गए अध्ययन में पाया गया कि थ्रिप्स एवं माइट्स के नियन्त्रण हेतु वर्मीवाश का छिड़काव करके उचित प्रबन्धन किया जा सकता है। इसमें उपस्थित विभिन्न हार्मोन्स पौधों की वृद्धि बढ़ाकर इनका उत्पादन बढ़ाते हैं।

वर्मीवाश की प्रयोग विधि

- वर्मीवाश की प्रयोग खड़ी फसलों में पर छिड़काव करें।
- वर्मीवाश का सीधा छिड़काव अथवा 50 प्रतिशत वर्मीवाश व 50 प्रतिशत पानी मिलाकर छिड़काव करें।
- वर्मीवाश का प्रयोग फसलों, सब्जियों, फूल वाले पौधों एवं फलदार पेड़ पौधों पर किया जाता है।

वर्मीवाश तैयार करने में सावधानियाँ

वर्मीवाश तैयार करते समय कभी भी ताजा गोबर का उपयोग नहीं करना चाहिए इससे केचुएं मर जाते हैं। वर्मीवाश ईकाई में उपस्थित केचुओं को धूप से बचाना जरूरी है। केचुओं को साँप, मेंढ़क व छिपकली से बचाव का उचित प्रबंन्ध होना चाहिए। केचुओं की उचित प्रजातियों का उपयोग करना चाहिए जैसे *आइसीनिया फोटिडा*।

वर्मीवाश छिड़काव के समय सावधानियाँ

वर्मीवाश का छिड़काव शाम के समय करना चाहिए। वर्मीवाश व पानी का उचित अनुपात (50 प्रतिशत + 50 प्रतिशत) 50 प्रतिशत वर्मीवाश व 50 प्रतिशत पानी के अनुपात मे घोल तैयार करना चाहिए। वर्मीवाश के साथ गोमूत्र का उपयोग रोगनाशी, कीटनाशी के रूप में उचित अनुपात में करना चाहिए। हम 5 लीटर वर्मीवाश में 2 लीटर गोमूत्र भी मिला सकते हैं। छिड़काव करते समय हवा के विपरीत छिड़काव नहीं करना चाहिए। वर्षा के मौसम मे यह ध्यान रखें कि वर्षा होने की सम्भावना न हो।

वर्मीवाश एक वरदान

खेती किसानी के लिए वर्मीवाश वरदान साबित हो रहा है। खेती ओर फसलों पर इसे छिड़कने से उत्पादन में वृद्धि होती है। पौधे व सब्जियों जैसी फसल में लड़ (फूल बनने की अवस्था में) पर वर्मीवाश का छिड़काव कर दिए जाने पर निर्धारित समय से 15 दिन पहले ही फल, लगना शुरू हो जाता है। यही नहीं फलन का समय समाप्त होने के बाद भी एक माह तक सब्जी फलती रहती है ओर कीटों से भी बचाव रहता है। इसके छिड़काव से मृत हुई मिटट्री फिर से जिन्दा हो जाती है व खाद डालने की आवश्यकता नहीं रहती।

आम व लीची सहित अन्य पेड़ों पर मंजर और फूल लगने के दौरान वर्मीवाश का छिड़काव करने से फसल उत्पादन में वृद्धि हुई है तथा मंजर व फूल नहीं गिरता। वर्मीवाश से किसान मित्र कीट मधुमक्खियों को भी नुकसान नहीं होता। वर्मीवाश के छिड़काव से पेड़ पर पका आम व लीची जल्दी खराब नहीं होते और वर्मीवाश के छिड़काव से फल व सब्जियाँ मानव स्वास्थ्य पर भी हानिकारक प्रभाव नहीं डालती।

हिन्दी का प्रचार और विकास
कोई रोक नहीं सकता।
-पंडित गोविंद बल्लभ पंत

धान उत्पादन एवं जलवायु परिवर्तन

[1]रेनू सिंह, [2]रूमा दास एवं [2]श्रीला दास
[1]सेस्करा, भाकृअनुप–भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली
[2]मृदा विज्ञान और कृषि रसायन विज्ञान संभाग,
भाकृअनुप–भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली

पिछले कुछ 150–200 वर्षों में धरती की जलवायु में अनेक प्रकार के परिवर्तन देखने को मिल रहे हैं, जैसे तापमान में वृद्धि, वर्षा का कम या ज्यादा होना, गर्म हवा का चलना, बाढ़, चक्रवात की संख्या में बढ़ोत्तरी इत्यादि। धरती का तापमान तेजी से बढ़ता जा रहा है, जिसको ''ग्लोबल वार्मिंग'' कहते हैं। जलवायु परिवर्तन का मुख्य कारण ग्लोबल वार्मिंग है और ग्लोबल वार्मिंग का मुख्य कारण वातावरण में ग्रीन हाऊस गैसों जैसे कार्बन डाइ आक्साइड, मीथेन, नाइट्रस ऑक्साइड आदि की मात्रा में वृद्धि है। ये ग्रीन हाऊस गैसें धरातल से निकलने वाली अवरक्त विकिरणों यानि इन्फ्रारेड रेडिएशन को वायुमण्डल से बाहर नहीं जाने देती, जिसके फलस्वरूप पृथ्वी के औसत तापमान में वृद्धि होती है। ठंडे प्रदेशों में फल एवं फूलों की खेती के लिए कांच के घर (ग्लास हाउस) बनाए जाते हैं, जिनमें बाहर की अपेक्षा अंदर उच्च तापमान रखा जा सकता है, जिससे ठंडे प्रदेशों में भी उपज संभव हो सके। इसे ग्रीन हाऊस प्रभाव कहते हैं और इसी प्रभाव के कारण आज सारी पृथ्वी एक बड़े ग्रीन हाऊस में तबदील हो गई है। ग्रीन हाऊस प्रभाव के कारण ही अनेक प्रकार के जलवायु परिवर्तन हो रहे हैं, जिनसे न केवल जन–जीवन बल्कि पेड़–पौधों, वनस्पतियों पर भी बुरा प्रभाव पड़ रहा है। भारत जैसे विकासशील देश में कृषि क्षेत्र, जलवायु परिवर्तन के प्रति संवेदनशील है। अध्ययनों से पता चला है कि भारतीय कृषि को जलवायु परिवर्तन के सकारात्मक प्रभावों की अपेक्षा नकारात्मक प्रभावों का कहीं अधिकता से सामना करना पड़ेगा।

धरती का तापमान बढ़ने के कारण ध्रुवीय बर्फों का पिघलना शुरू हो गया है, बर्फ के पानी में परिवर्तित होने की वजह से आस–पास की नदियों, समुद्रों का जलस्तर बढ़ रहा है। नदियों का जल–स्तर बढ़ने से बाढ़ का खतरा भी बढ़ता जा रहा है। राजस्थान जैसी जगह पर जहाँ सूखा पड़ता था, वहाँ भी आज बाढ़ आ रही है। समुद्रों का जलस्तर बढ़ने से, चक्रवातों की संख्या में बढ़ोत्तरी हो रही हैं। जलवायु परिवर्तन के कारण वर्षा की मात्रा, तापमान, वायु की दिशाओं, आर्द्रता आदि में परिवर्तन आ रहा है। जहाँ कम मात्रा में वर्षा होती है, वहाँ सूखा पड़ जाता है और कही आवश्यकता से अधिक वर्षा होने कारण बाढ़ की स्थिति उत्पन्न हो जाती हैं। वर्षा का कम या ज्यादा होना, तापमान का बढ़ना या घटना, वायु की दिशाओं का बदलना आदि फसलों की पैदावार पर बुरा प्रभाव डालते हैं। पूर्वोतर भारत में बाढ़ का, पूर्वी तटीय क्षेत्रों में चक्रवात, उत्तर–पश्चिमी भारत में पाले का, मध्य और उत्तरी क्षेत्रों में गर्म लहरों का खतरा बढ़ता जा रहा है। ये जलवायु आपदाएँ कृषि उत्पादन को भारी मात्रा में नुकसान पहुँचाती हैं। भारत में चरम जलवायु अधिकता के हालिया उदाहरण है वर्ष 2002, 2004, 2006, 2009, 2010 और 2012 में सूखा, वर्ष 2005, 2006, 2008, 2010 एवं 2013 में बाढ़, 2002–03 एवं 2005–06 में शीत लहर, 2004, 2005, 2010 में जनवरी–मार्च महीने उच्च तापमान एवं मई 2003 में आंध्र प्रदेश में गर्म लहरों का प्रभाव आदि। इन सभी परिवर्तनों का राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय व्यापार, सामाजिक एवं आर्थिक संरचना, पर्यावरण तथा खाद्य सुरक्षा प्रणालियों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ना स्वाभाविक है।

हम सब जानते हैं कि धान की फसल में पानी की बहुत अधिक आवश्यकता होती है। एक किलोग्राम धान की फसल में कम से कम 3000–5000 लीटर तक पानी की आवश्यकता पड़ती है। कम मात्रा में वर्षा होने के कारण पानी की कमी हो जाती है, जिससे धान की फसल बर्बाद होने का खतरा बढ़ जाता है। आज भी भारतीय किसान सिंचाई के लिए वर्षा के जल पर ही निर्भर है, इसलिए वर्षा का सही मात्रा में होना बहुत जरूरी है। तापक्रम का बढ़ना धान की फसल पर सीधा प्रभाव डालता है। पुष्पन के समय धान के पौधों को 30–32 डिग्री सेंटीग्रेड तक के तापमान की आवश्यकता होती है, इसलिए यदि तापमान 30 डिग्री सेंटीग्रेड से कम या 32 डिग्री सेंटीग्रेड से अधिक होगा तो बीज नहीं बन पाएगा। धान के पकने के समय 20–25 डिग्री सेंटीग्रेड तक का तापमान सही होता है, तापमान बढ़ने के कारण धान की फसल समय से पहले पक जाती है और इससे कम पैदावार होती है। यह पाया गया है कि मध्य वायु तापमान से 2 डिग्री सेंटीग्रेड से की वृद्धि होने से उच्च उपज वाले क्षेत्रों में चावल की उपज में लगभग 0.75 प्रति टन की कमी होगी। जलवायु परिवर्तन के कारण तटीय प्रदेशों में मृदा लवणता बढ़ती जा रही है, जोकि धान की फसल के लिए अत्यंत हानिकारक है क्योंकि धान लवणता के प्रति संवेदनशील होता है। अनियमित वर्षा, पानी की कमी धान की फसल के लिए अत्यंत हानिकारक है।

जलवायु परिवर्तनों से धान का उत्पादन प्रभावित न हो इसके लिए किसानों को ऐसी धान की किस्मों का चुनाव करना चाहिए जिसमें उच्च तापमान, सूखा एवं लवणता को सहने की क्षमता हो। उनमें जड़ों का विकास ज्यादा हो ताकि वो जल को अवशोषित कर सकें, इससे जल–संरक्षण को बढ़ावा मिलेगा। हमें सीधी बिजाई धान तकनीक को बढ़ावा देना चाहिए। जैविक खादों के प्रयोग को बल देना चाहिए क्योंकि ये फसलों में जल–धारण करने की क्षमता को बढ़ाती हैं तथा मृदा की उर्वरा क्षमता को बनाए रखती है। संरक्षण कृषि जैसे फसल क्रम, शून्य जुताई, फसल अवशेष आदि से 20–30 प्रतिशत तक जल–संरक्षण किया जा सकता है। फसल क्रम कृषि उत्पादन का अभिन्न अंग है जिसे जलवायुयिक विविधता को ध्यान में रखकर किया जाता है। विश्व में जहाँ गेहूँ, जौ, मटर, चना, आलू इत्यादि फसलें उगायी जाती है। तापक्रम वृद्धि के कारण इनका स्थान समतापीय जलवायु में उगायी जाने वाली फसलों धान, मक्का, ज्वार, बाजरा, सोयाबीन एवं मूँगफली इत्यादि ले सकती है। धान सघनता पद्धति (एस.आर.आई) एरोबिक धान पद्धति आदि से भी जल–संरक्षण को बढ़ावा मिलता है। जल धान की फसल के लिए अत्यंत आवश्यक है, इसलिए जल संरक्षण की तकनीकों को बढ़ावा देना जरूरी है, इससे धान की पैदावार में बढ़ोत्तरी होगी।

कृषि को टिकाऊ बनाने में सूक्ष्मजीवों का महत्व– एक विवेचना

जेके पाण्डेय एवं अनुज कुमार
भाकृअनुप–भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान, करनाल

हमारा देश भारत एक कृषि प्रधान देश है। जहाँ आज भी अधिकतर जनसंख्या कृषि पर निर्भर है तथा कृषि भारतीय अर्थव्यवस्था की रीढ़ है। भारत में कृषि रगों में बसा है, हमारे संस्कार, सामाजिक सरोकार, संस्कृति एवं तीज त्यौहार में बखूबी परिलक्षित होता है। कृषि हमारे जीवन के हर पहलू को प्रभावित करता है। हमने हरित क्रांति लाकर अपने देश को कृषि उत्पादन में नया आयाम दिया और हम विश्व में कुछ चुनिन्दा उत्पादक राष्ट्रों में आ गये। जिसके परिणमस्वरूप परम्परागत कृषि की जगह आधुनिक खेती का प्रचलन हुआ। ऐसी किस्मों का विकास हुआ जिनमें अधिक से अधिक रसायनिक उर्वरकों, कीटनाशकों एवं खरपतवारनाशी के साथ भूमिगत जल आदि का अधिकाधिक उपयोग हुआ। जिससे एक तरफ तो लागत खर्च में बढ़ोत्तरी हुई एवं कृषि आदानों की मांग बढ़ी तो दूसरी तरफ भूमिगत जलस्तर गिरता चला गया। लगातार जुताई और कृषि रसायनों के लगातार प्रयोग से मृदा की प्राकृतिक संरचना और इसमें उपस्थित सूक्ष्मजीवों पर नकारात्मक प्रभाव पड़ा जिसके फलस्वरूप उत्पादकता प्रभावित होने लगी।

बढ़ती जनसंख्या, घटती जमीन, नीचे गिरता जलस्तर जलवायु में अप्रत्याशित रूप से बदलाव आदि की वजह से मृदा में तथा पौधों के जड़ क्षेत्र में सूक्ष्मजीवों में भारी कमी आई है। नये रोगों एवं कीटों का प्रादुर्भाव आदि कारणों से टिकाऊ कृषि एवं सतत् उत्पादन की परिकल्पना धूमिल हो रही है।

अतः वर्तमान परिस्थितियों में यह अति आवश्यक हो जाता है कि हम ऐसी कृषि पद्धतियों को विकसित करें या वर्तमान पद्धतियों में परिवर्तन लाएं जिससे खेती की लागत कम हो, मृदा स्वास्थ्य में सुधार हो तथा प्राकृतिक संसाधनों का समुचित उपयोग हो।

पौधों को पर्याप्त पोषण देने के लिए रोगों से बचाने के मृदा स्वास्थ्य एवं गुणवत्ता आदि में भूमि में उपस्थित सूक्ष्मजीवों का महत्वपूर्ण योगदान रहता है। सूक्ष्मजीवों का लाभकारी प्रभाव हमारी सभी फसलों पर पड़ता है। अतः सूक्ष्मजीवों के समुदायों के संरक्षित करने तथा मिट्टी में इनकी एक आवश्यक आबादी घनत्व के स्तर को बनाये रखना अति अवश्यक है। मृदा में सूक्ष्मजीवों के समुचित प्रबंधन का हर संभव प्रयास होना चाहिए ताकि कृषि उत्पादन को बढ़ाया जा सके और साथ ही लागत को कम किया जा सके। यहाँ यह जानना, समझना एवं उस पर अमल करना आवश्यक है कि सूक्ष्मजीवी समुदायों को सामूहिक स्तर पर मृदा सूक्ष्मजैविक जैव द्रव्यमान भी कहा जाता है। जिससे मिट्टी में आवश्यक कार्यों जैसे मृदा श्वसन, पौधे के लिए अनुपलब्ध पोषक तत्वों को उपलब्ध अवस्था में बदलकर ग्रहण करने योग्य बनाना है।

वायुमंडल में उपस्थित नत्रजन को पौधों को उपलब्ध करना, रोगों से बचाना, सूखा मिट्टी की विषाक्तता, सूखापन आदि को सहने की क्षमता देता है। इसके अलावा भी जड़ क्षेत्र में उपलब्ध सूक्ष्मजीवाणु पौधों को अनेकों प्रकार से प्रभावित करते हैं जोकि एक फसल उत्पादन में महत्वपूर्ण कारक है। अगर जड़ क्षेत्र में सूक्ष्मजीवों की आबादी का घनत्व एक इच्छित स्तर पर होता है तो इन सूक्ष्मजीवों का प्रभाव अनुकूल होता है।

खेती में उत्पादता को बनाये रखने के लिए कवकनाशी, रसायनिक उर्वरक, कीटनाशी तथा खरपतवारनाशी आदि रसायनों का उपयोग धीरे–धीरे कम करते हुए समाप्त करना चाहिए या फिर न्यूनतम स्तर पर किया जाना चाहिए। वैकल्पिक तौर पर जैव उर्वरक, जैविक स्रोत से तैयार किए जाये। साथ ही पर्यावरण अनुकूल प्रक्रिया को अधिक से अधिक उपयोग में लाया जाना चाहिए। सूक्ष्मजीवों के द्वारा निर्मित विभिन्न एंजाईम, पौधों के रोगनाशक कवकों के विकास में तथा मृदा में भेदन करने में सहायता प्रदान करते हैं।

सूक्ष्मजीवी समुदायों में परस्पर सहयोग

विभिन्न सूक्ष्मजीवों के बीच पारस्परिक सहयोग व संबंध का असर पौधों की जड़ एवं जड़ क्षेत्र पर पड़ता है जिससे प्रतिकूल परिस्थितियों में भी फसल को लाभ मिलता है। ये सूक्ष्मजीव मृदा में उपस्थित पोषक तत्वों के उपयोग या उनको ग्रहण करने सहयोग करते है। उदाहरणस्वरूप अर्बस्कुलर माईकोराइजा एवं पौध वृद्धि वर्धक सूक्ष्म जीवों के बीच क्रियाओं को प्रबंधन किया जाये तो फसलों के लिए बेहतर होगा।

सूक्ष्मजीवों की संरचना, उसके अवयव, क्रिया–कलापों में गहन शोध की आवश्यकता

सूक्ष्मजीवों की विविधता, उनके पारिस्थितिकी एवं मिट्टी तथा जल जैसे विभिन्न वातावरण के विकास के लिए सूक्ष्मजीवों की गतिशीलता को गहराई से समझाना होगा, इसके लिए मेटाजीनोमिक्स डेटा के वृहत् रूप में तैयार करने

उसके अध्ययन द्वारा जड़ क्षेत्र में उपस्थित सूक्ष्मजीवों के समुदायों की संभावित क्रिया–कलापों की अधिक से अधिक जानकारी प्राप्त करनी होगी। इसकी विविधता की संरक्षण करके पर्यावरण एवं जलवायु की बदलते परिस्थितियों में फसल उत्पादन में वृद्धि और मृदा के स्वास्थ्य में सुधार किया जा सकता है। इसकी नई एवं बेहतर तकनीकों जैसे फाईटोचिप आधारित तकनीकों का ज्यादा से ज्यादा उपयोग किया जा सकता है।

कृषि उत्पादन को सतत् एवं टिकाऊ बनाने व अन्य चुनौतियों का सामना करने के लिए कुछ सुझाव

हमें ऐसे उपाय करने होगें जिससे कृषि में रासायनिक उर्वरकों, कीटनाशकों आदि का उपयोग कम से कम हो ताकि इनके कुप्रभावों से बचते हुए मृदा में सूक्ष्मजीवों की आबादी का घनत्व बढ़े और धीरे–धीरे उचित घनत्व स्तर हो जाये जिससे सतत् कृषि उत्पादन बरकरार रखते हुए कृषि को लाभकारी बनाया जा सके।

जैव उर्वरक

उपरोक्त बातों को ध्यान में रखते हुए कृषि को टिकाऊ व लाभकारी बनाने के लिए जैव उर्वरकों के उपयोग को बढ़ावा दिया जाना आज की आवश्यकता बन चुकी है।

नत्रजन के लिए

नत्रजन पौधों के विकास के लिए बहुत आवश्यक है साथ ही साथ वायुमण्डल में अधिक मात्रा में उपलब्ध है परन्तु पौधे इसे ग्रहण नहीं कर सकते। जब हम जैव उर्वरकों का उपयोग करते हैं तो इसमें उपस्थित सूक्ष्मजीवों द्वारा वायुमण्डल की नत्रजन को पौधों के लिए उपलब्ध करवाया जाता है। गेहूँ में एजोटोबैक्टर उपलब्धता कों बढ़ाता है।

पौध विकास राईजोबैक्टिरिया

एजोस्पिरिल्लम, बैसिलस व *एजोटोबैक्टर* एवं *स्यूडोमोनास* आदि सूक्ष्मजीव पौधों के जड़ के साथ मिलकर पौधे को सूक्ष्म पोषक तत्व उपलब्ध करवाने के साथ–साथ रोग से भी बचाते हैं जिससे पैदावार भी बढ़ती है।

फसलों को फास्फोरस की उपलब्धता व अन्य कार्य

फास्फोरस को घोलने वाले सूक्ष्मजीव अघुलनशील फास्फोरस को धुलनशील अवस्था में बदलकर पौधे को ग्रहण करने योग्य बनाता है। इस प्रकार के जैव उर्वरक में *बैसिलस, पेनिसिलियम* एवं *स्यूडोमोनास* आदि सूक्ष्मजीव हैं। यह भूमि में मिलकर जड़ क्षेत्र में रसायनिक परिवर्तन कर पोषक तत्वों को अवशोषण करने योग्य तथा रोगों से लड़ने की क्षमता देते हैं। कुछ प्राथमिक पोषक तत्वों के साथ ही सूक्ष्म पोषक तत्वों जैसे जिंक, ताम्बा एवं कोबाल्ट जैसे अन्य तत्वों की भी उपलब्धता सुनिश्चित करता है। पीएसबी अर्थात् फास्फोरस सोलुबुलाइजिंग बैक्टिरिया पौधों के जड़ क्षेत्र में अघुलनशील फास्फोरस को घुलनशील बनाते हैं जो पौधों को उपलब्ध हो पाता है।

माईकोराइजा

यह गैर उर्वरक फंफूद आधारित है। इसके उपयोग से फसलों में सूखे, क्षारीयता व लवणता के प्रति सहनशीलता में वृद्धि होती है साथ ही रोगों व कीटों के विरूद्ध क्षमता भी बढ़ती है। साथ ही यह सूक्ष्म पोषक तत्वों जैसे मैंग्जीन, मौलिब्डेनम, जिंक, कॉपर, कोबाल्ट और लोहा को उपलब्ध कराने जैसे महत्वपूर्ण कार्य करता है। इसके उपयोग से रसायनिक उर्वरकों की बड़ी मात्रा में बचत होती है।

रोगों से सुरक्षा के लिए सूक्ष्मजीव आधरित जैव उर्वरकों का प्रयोग फसलों में किया जाता है जिससे कुछ प्रकार के रोगों से बचाने का कार्य करता है साथ ही उपज में भी बढ़ोत्तरी होती है। *ट्राइकोडरमा* का उपयोग गेहूँ के विभिन्न रोगों से बचने के लिए किया जाता है साथ ही इसका गेहूँ के अंकुरण पर भी अच्छा प्रभाव पड़ता है।

इस संदर्भ में अभी हाल में ही में बीबीएयू, लखनऊ के नए शोध में पता चला है कि एकत्रित मिट्टी में इन सूक्ष्मजीवों की पहचान *बैसिलस, स्युडोमोनास* और *पैनोक्रोबैक्टर* जीवाणु के रूप में तथा *एस्परजिलस, पेनिसिलिअम* और *ट्राइकोडर्मा* फफूंद के रूप में है। इन सूक्ष्मजीवों में सूखा मिट्टी, की विषाक्तता और खारेपन को सहने की अपार क्षमता मिली है। इन्हें गोबर और गुड़ से बनाए गए कणिकाओं में डालकर गेहूँ उगाने के लिए प्रयोग किया गया तो फसलों की उपज में रसायनिक उर्वरकों वाली फसल की तुलना में करीब 20 प्रतिशत की बढ़ोत्तरी पाई गयी।

सूक्ष्मजीव आधारित उर्वरकों का ज्यादातर उपयोग बीज उपचार के लिए किया जाता है। जिसमें 1 लीटर पानी में लगभग 100 ग्राम गुड़ के साथ जैव उर्वरक को अच्छी तरह घोलकर बीजों पर डालकर फिर उसको मिलाकर छाया में सुखकर उपयोग करते हैं।

खेतों में उपयोग के लिए 4 किलोग्राम जैव उर्वरक को जमीन में मिलाया जाता है। खड़ी फसलों में छिड़काव करने से फसलों/पौधों को रोगों से सुरक्षित रखा जा सकता है।

जीरो बजट प्राकृतिक खेती

कृषि क्षेत्र में अनेक चुनौतियों का सामना करने तथा कृषि को लाभकारी बनाते हुए किसानों को व्यवसाय में रूचि बनाने के लिए जीरो बजट प्राकृतिक खेती या जीरो बजट अध्यात्मिक खेती अथवा ऋषि खेती कभी–कभी रसायन मुक्त खेती भी कहते हैं पर जोर दिया जा रहा है। सरकार

का मानना है कि कृषि लागत को कम करने और अधिक लाभप्रदता के लिए जीरो बजट खेती एक अच्छा विकल्प है।

हालांकि कृषि की यह पद्धति हमारी संस्कृति का हिस्सा रही है परंतु हाल के वर्षों में इस पर पुनः विचार किया जाने लगा है। इस पद्धति में मुख्यतः पौधों/फसलों के जड़ क्षेत्र में जीवाणुओं/सूक्ष्मजीवों आबादी के घनत्व को बढ़ाया जाता है ताकि जड़ क्षेत्र की जैविक क्रियाओं का संपादन सही तरीके से हो सके और पौधों की पोषण संबधी आवश्यकताओं की पूर्ति हो सके और रसायनिक उर्वरकों के उपयोग को समाप्त किया जा सके।

जीरो बजट खेती क्या है

जीरो बजट खेती कई प्रकार के कृषि तकनीकों का एक समूह है जिसमे वास्तविक रूप से प्रकृति के अलग–अलग घटकों, उनके परस्पर सम्बंधों, स्वयं विकासशीलता, आत्म पोषण प्रणाली को बनाये रखते हुए जड़ क्षेत्र/मृदा में सूक्ष्मजीवों व उनके विविधता की पुर्नस्थापना व विकास पर ध्यान दिया जाता है। इस खेती में इस बात का विशेष ध्यान रखा जाता है जिससे प्रकृति के अपने प्राकृतिक–चक्र व उनकी संरचना, सूक्ष्मजीवों विभिन्न घटकों के अन्योन्याश्रय संबध पर तकनीकों का कुप्रभाव न पड़े। खेती की इस विधा में खेत की जुताई नहीं की जाती है या कम से कम की जाती है तथा रासायनिक खाद, कीटनाशक, रोगनाशक व खरपतवारनाशी का प्रयोग पूर्णतया निषेध है। मृदा के प्राकृतिक पारिस्थितिक तंत्र को बिना प्रभावित किए हुए लागत खर्च को न्यूनतम स्तर पर रखा जाता है।

खेतों की यह विधि कैसे कार्य करती है

खेती की इस विधा में कृषक को बाहर से कुछ भी खरीदना नहीं पड़ता है। फसल के जड़ क्षेत्र की प्राकृतिक बनावट एवं उनकी पुनर्स्थापना पर विशेष ध्यान दिया जाता है। यह सत्य है कि पौधे अपने विकास के लिए सूर्य की रोशनी एवं कार्बन डायऑक्साईड की उपस्थिति में अपना भोजन का निर्माण करते हैं। मिट्टी से पौधे/फसलों की जड़ें आवश्यक पोषण ग्रहण करता है। प्रकृति ने भूमि में पौधे के लिए सारे पोषक तत्वों एवं रोग से लड़ने की क्षमता प्रदान की है परन्तु रसायनिक उर्वरकों, कीटनाशकों, रोगनाशकों एवं खतपतवारनाशी के उपयोग की वजह से हमारी मृदा की प्राकृतिक बनावट व उसमें उपस्थित सूक्ष्मजीवी समुदायों पर कुप्रभाव पड़ा है। भूमि की प्राकृतिक संरचना में मुख्यतः जड़ क्षेत्र में सूक्ष्मजीवों की आबादी धनत्व, उनकी उपलब्धता, आपसी क्रिया–कलापों पर प्रतिकूल असर पड़ता है। जिससे कृषि के उत्पादन पर असर पड़ा है। अतः इन्हीं सूक्ष्मजीवों की आबादी घनत्व व उसकी विविधता की पुनर्स्थापना करने का कार्य किया जाना है। जिसमें सिर्फ गोबर की खाद, पशुओं के मूत्र, किण्वित जीवाणु कल्चर एवं केंचुआ आदि का प्रयोग किया जाता है।

जड़ क्षेत्र में धीरे–धीरे सूक्ष्मजीवों का आबादी घनत्व कम हो रहा है व समाप्तप्राय हो रहा है। जैव समुदाय व जैव विविधता के बढ़ने से मृदा की प्राकृतिक संरचना में सुधार होता है व पारिस्थितिक तंत्र और बेहतर होने लगता है। भूमि में अनुपलब्ध अवस्था में पड़े हुए जिससे पोषक तत्व सूक्ष्मजीवों की सक्रियता से उपलब्ध अवस्था में परिवर्तित हो जाते हैं और पौधों को इनकी उपलब्धता आसानी से हो जाती है। जिससे पौधे आसानी से ग्रहण कर लेते हैं।

भविष्य की चुनौतियाँ

बदलती जलवायु की चुनौतियों तथा कृषि उत्पादन को सतत् एवं टिकाऊ बनाने के लिए फसलों के जड़ क्षेत्र में सूक्ष्मजीवों के समुदायों की मौजूदगी, उनकी विविधता, उनके बीच व जड़ों के परस्पर सम्बन्ध तथा पौधों के जड़ों पर उनकी सक्रियता का प्रभाव एवं परिस्थितिकी तंत्र पर समग्र प्रभाव तथा फसल उत्पादन पर इन सबकी कार्यात्मक भूमिका पर गहन शोध को बढ़ावा देने की आवश्यकता है तथा सूक्ष्मजीवों की कार्यप्रणाली, कार्यात्मक जीनोमिक्स, मेटाजीनोमिक्स एवं मेटा प्रोटियोमिक्स तकनीकों के उपयोग से इस क्षेत्र में दिखाई दे रही संभावनाओं का पता लगाना और उनके फसलों के उत्पादन में उपयोग पर ध्यान देने की आवश्यकता है।

निष्कर्ष

कृषि में जैव उर्वरकों का प्रयोग हाल के वर्षों में बढ़ा है। सरकार भी प्राकृतिक खेती व आर्गेनिक खेती को बढ़ावा देने के लिए किसानों को कई सुविधाएं मुहैया करवा रही है। ऐसे में जैविक खेती, जीरो बजट खेती, प्राकृतिक खेती आदि पर अध्ययन एवं शोध की अवश्यकता है। ताकि इनको वैज्ञानिक दृष्टिकोण से और बेहतर तरीके से समझा जा सके और किसानों को सही मार्गदर्शन हो सके। आज जैविक उत्पादों की मांग लगातार बढ़ रही है ऐसे में किसान अधिक मुनाफा कैसे कमा सके इस पर भी विचार किया जाना चाहिए।

डेरी फार्म पर पशु शव निस्तारण के तरीके

श्रीजा सिन्हा, गोपाल सांखला एवं हंस राम मीणा
डेरी विस्तार अनुभाग, भाकृअनुप–राष्ट्रीय डेरी अनुसंधान संस्थान, करनाल

डेरी फार्म पर पशु की मृत्यु विभिन्न कारणों से हो सकती है जैसे बीमारी, दुर्घटना, आपदा एवं सामान्य आदि। पशु शव को आमतौर पर सड़कों, खेतों और नदियों के किनारों पर फेंक दिया जाता है जिससे न केवल बीमारी फैलने की संभावना बढ़ती है बल्कि पर्यावरण पर भी प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। पशु शव के अलावा गर्भपात की स्थिति में गर्भ झिल्ली का निस्तारण भी बड़ी सावधानी और साफ–सफाई के साथ किया जाना चाहिए ताकि बिमारियों को फैलने से और आस–पास के पानी, खेतों और सार्वजनिक स्थानों को दूषित होने से बचाया जा सके।

पशु शव का निस्तारण करते समय निम्नलिखित बातों को ध्यान में रखना चाहिए

- पशु शव को कभी भी किसी नाले, नदी अथवा रेल की पटरियों पर ना फेंके।
- पशु शव को शेड में अधिक समय तक ना रखें ताकि कीड़े, चूहे, गिलहरी इत्यादि मृत शरीर तक ना पहुचें।
- किसी संक्रामक रोग से मरने वाले पशु के शव की चीर–फाड़ ना करें।
- पशु शव को हटा देने के बाद शेड को समुचित तरीके से कीटाणु रहित करें।
- पशु शव को जमीन पर घसीटे बगैर पूर्व चयनित स्थल पर ही उसका निस्तारण करें।
- मृत पशु द्वारा इस्तेमाल किये गये बिस्तर, उसके मल–मूत्र एवं बचे हुए चारे के साथ–साथ उस पशु के मृत्यु स्थान की 5 सेटीमीटर मिट्टी का भी निस्तारण उस शव के साथ करें।

पशु शव निस्तारण के तरीके

(क) दफन करना

(ख) उठाकर ले जाना

(ग) जलाकर भस्म करना (भस्मीकरण)

क. दफन करना

पशु शव को उपयुक्त आकार के गड्ढे में दफन किया जाना चाहिए, ताकि पशु शव का सर्वाधिक ऊँचाई वाला हिस्सा पृथ्वी की सतह से कम से कम 2–3 फीट नीचे रहे। इसी तरह गड्ढे की तलहटी को बारिश के मौसम के दौरान रहने वाले उच्चतम जल स्तर से कम से कम 2 फीट ऊपर रहना चाहिए।

- दफन स्थल सावर्जनिक स्थानों से उपयुक्त दूरी पर होना चाहिए।
- दफन स्थल की घेराबंदी समुचित तरीके से की जानी चाहिए, ताकि वहाँ पर जंगली जानवरों का प्रवेश न हो सके।
- पशु शव को किसी गड्ढे में डाल देने के बाद उसकी खाल को चीरकर अलग कर देना चाहिए, ताकि खाल पाने के लालच में पशु शव को गड्ढा खोदकर बाहर निकालने का प्रयास न कर सकें।
- गड्ढे को कम से कम 2 फीट मिट्टी से ढक देना चाहिए। पशु शव के दफन स्थल को घास से ढक देना चाहिए, ताकि हवा या जल के कारण मृदा का क्षरण न हो सके।
- पशु शव पर कीटनाशक स्प्रे से छिड़काव करना चाहिए ।
- चूने की एक मोटी परत को पशु शव के ऊपर रखा जाना चाहिए।
- पशु शव को ढकने के लिए ब्लीचिंग पाउडर का इस्तेमाल किया जा सकता है।

ख. पशु शव को उठाकर ले जाना

गैर संक्रामक रोगों से मरने वाले पशुओं के शवों का इस्तेमाल खाल, चमड़े, हड्डी, मांस इत्यादि से जुड़े उद्योगों द्वारा किया जा सकता है। हालांकि, यह अवश्य ही सुनिश्चित किया जाना चाहिए कि पशु शव से जानवरों के साथ–साथ मानव स्वास्थ्य को भी कोई खतरा नहीं पहुंचे।

ग. पशु शव के निस्तारण के लिये अन्य विकल्प

जनसंख्या में हुई वृद्धि, खुले स्थानों की कमी और पशु शवों को जलाने अथवा उन्हें दफन करने से होने वाले पर्यावरण प्रदूषण को ध्यान में रखते हुए पशु शव के निस्तारण के लिए अन्य बेहतर विकल्पों को तलाशने की जरूरत है।

पशु शव को जलाकर भस्म करना (इन्सिनॅरेशॅन/भस्मीकरण) एक बेहतर तरीका प्रतीत होता है।

इस तरीके को अपनाने पर पशु शव के शरीर का हर हिस्सा राख में तबदील हो जाता है, इससे तरह पर्यावरण प्रदूषण व अन्य जीवों में संक्रमण की संभावनाएं लगभग नगण्य हो जाती है।

पशु शव को जलाकर भस्म कर देने वाली इन्सिनॅरेशॅन मशीन प्रत्येक फार्म में लगाना मुश्किल है, इसलिए समुदाय/नगर स्तर पर इसे स्थापित करने का ठोस प्रयास किया जाना चाहिए।

भूमि की उर्वराशक्ति बढ़ाने एवं अधिक पैदावार लेने के लिए एकीकृत नाशीजीव प्रबन्धन अपनाएं

उत्तम कुमार, राकेश कुमार, हरदेव राम एवं मुनीष लहरवान

सस्य विज्ञान अनुभाग, भाकृअनुप–राष्ट्रीय डेरी अनुसंधान संस्थान,करनाल

भारत में कृषि के प्रति वांछित आकर्षण पैदा करने एवं उसको कम खर्चीला और अधिक लाभकारी बनाने के लिए जिन उपायों पर गौर किया जा रहा है उनमें प्रमाणित बीजों की उपलब्धि, उर्वरकों का सही ढंग से उपयोग, अच्छा जल प्रबन्ध एवं एकीकृत नाशीजीव प्रबन्धन मुख्य है। भारत में हर वर्ष अनेक कीट, रोगों, चूहों एवं खरपतवारों से फसलों की उपज पर बहुत प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। इन समस्याओं में धान का बाल काटने वाला सैनिक कीट, धान का गंधी कीट, चने एवं अरहर का फली छेदक तथा उकठा रोग, मूंगफली की सफेद गिडार, सरसों का सफेद गेरुई एवं आल्टरनेरिया झुलसा रोग एवं माहू कीट, आम का फूदका, आलू का अगेता एपं पछेता झुलसा, धान का बकानी रोग, टमाटर एवं भिन्डी का मोजैक, अरहर का बन्झा रोग एवं गेहूँ का मामा/ *फलेरिस माइनर* आदि प्रमुख समस्याएं हैं।

अभी तक इन समस्याओं से निपटने के लिए खासतौर पर केवल रसायनों का ही सहारा लिया जाता रहा है। ये रसायन खर्चीले होने के साथ–साथ वातावरण को भी दूषित करते है एवं कई प्रकार की दुर्घटनाओं का भी भय बना रहता है। इन रसायनों के अवशेष फलों एवं सब्जियों आदि में रह जाते हैं तथा उपभोक्ता के स्वास्थ्य पर बहुत बुरा प्रभाव छोडते हैं। रसायनों के निरन्तर उपयोग से कई प्रकार के कीटों, रोगों एवं खरपतवारों में उनके विरूद्ध अवरोध पैदा हुआ है और बहुत से कम महत्वपूर्ण कीट बड़ी समस्यायें बने हैं। साथ ही साथ खेत में या वातावरण में उपस्थित मित्र परजीवी कीट भी समाप्त हो जाते है और पर्यावरण का संतुलन बिगड़ जाता है। समस्याओं के प्रभावी निदान एवं उपरोक्त खतरों से बचने के लिए अब जिस पद्धति पर जोर दिया जा रहा है उसको **एकीकृत नाशीजीव प्रबन्धन या इन्टीग्रेटेड पेस्ट मैनेजमेन्ट/ आईपीएम** कहा जाता है। इस पद्धति से कीटों, रोगों और खरपतवारों उन्मूलन या नियन्त्रण किया जाये उनके प्रबन्धन की बात की जाती है। वास्तव में हमारा ध्येय किसी जीव को हमेशा के लिए नष्ट करना नहीं बल्कि ऐसे उपाय करने से है जिससे उनकी संख्या/घनत्व सीमित रहे और उन्हें आर्थिक क्षति न पहुंच सके। इस पद्धति की मुख्य बातें निम्नलिखित हैं–

1. समस्याओं के निदान के लिए केवल एक तरीके को अपनाने के बजाय कई साधनों का समन्वय किया जाए, जैसे अवरोधी किस्मों का प्रयोग एवं अन्य सस्य क्रियाओं, तकनीकी साधनों, जैविक साधनों और रसायनों का प्रयोग आदि।
2. रसायनों का इस्तेमाल उसी समय किया जाए जब वास्तव में उसकी आवश्यकता हो अर्थात् विभिन्न कीटों एवं रोगों की एक निर्धारित संख्या/घनत्व पर पहुंचने पर ही रसायनों का प्रयोग किया जाए।
3. जो साधन अपनाएं जाएं वह न केवल प्रभावी हो बल्कि कम खर्चीले भी हों।
4. पर्यावरण एवं वातावरण को प्रदूषित होने से बचाया जाए।

इन्टीग्रेटेड पेस्ट मैनेजमेन्ट/आईपीएम में पहली आवश्यकता यह है कि फसलों का बराबर सर्वेक्षण किया जाता रहे ताकि किसानों एवं कार्यकर्ताओं को विभिन्न कीटों एवं रोगों आदि की स्थिति के बारे में ज्ञान होता रहे। यह भी आवश्यक है कि कार्यकर्ताओं और किसानों के प्रशिक्षण का उचित प्रबन्ध किया जाए ताकि वह समस्याओं को पहचानने और उससे सम्बन्धित उस बिन्दु अथवा अवस्था को जानने की समझ पा सकें जिन पर रसायनों का प्रयोग या दूसरे कार्य करने आवश्यक हो जाते हैं।

इन्टीग्रेटेड पेस्ट मैनेजमेन्ट में जैविक साधनों का बहुत महत्व है जिसमें विभिन्न प्रकार के परजीवी/मित्र कीट, फफूँदी, बैक्टीरिया, विषाणु और अन्य जीव–जन्तु है जिनके द्वारा फसलों के हानिकारक कीटों एवं रोगों आदि का निदान किया जाता है। सामान्यतः पर्यावरण में यह सारे जीव अपना कार्य करते रहते हैं और समस्याओं को काफी हद तक सीमा में रखते हैं, परन्तु आज की सघन खेती में इनकी सामान्य कार्यशीलता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है जिसमें रसायनों का अन्धाधुन्ध प्रयोग सबसे बड़ी बाधा है। देंश में कई कीट एवं अन्य समस्याओं का प्रभावी जैविक नियन्त्रण किया गया है जिसमें गन्ने का पाइरिला कीट, चने का फली छेदक एवं जलकुम्भी का सफल नियन्त्रण कुछ विशेष उदाहरण हैं। चने के फली छेदक के लिए न्यूकलियर

पॉली हाइड्रोसिस वाइरस (एनपीवी) 250 (इल्ली/सुंड़ी) समतुल्य (लार्वल इक्वी वेलेन्ट) की दर से बहुत सफल पाया गया है। जलकुम्भी जो देश के जलाशयों की बड़ी समस्या है, नियोचैटिना वीविल कीट की दो प्रजातियों के द्वारा प्रभावी ढ़ंग से नियन्त्रण में आ सकती है।

अनेक प्रमुख फसलों के मुख्य कीट/समस्याओं की उस संख्या (घनत्व) का ज्ञान प्राप्त हो चुका है जिन पर रसायनों का प्रयोग किया जाना चाहिए। देश के विश्वविद्यालयों एवं अन्य संस्थानों में इन विषयों पर बहुत शोध कार्य चल रहा है और जैसे–जैसे ज्ञान मिलता जायेगा वैसे–वैसे **इन्टीग्रेटेड पेस्ट मैनेजमेन्ट** की पद्धति को प्रभावी ढ़ंग से अपनाने में सफलता मिलेगी। इन्टीग्रेटेड पेस्ट मैनेजमेन्ट/आईपीएम अपनाने से कृषि रक्षा रसायनों पर खर्चा कम आयेगा, किसानों को राहत मिलेगी और पर्यावरण भी सुरक्षित रहेगा।

एकीकृत नाशीजीव प्रबन्धन (इन्टीग्रेटेड पेस्ट मैनेजमेन्ट/आई0 पी0 एम0) के प्रमुख बिन्दु निम्न हैं :–

समस्याओं के निदान के लिए केवल रसायनों का एक मात्र तरीका अपनाने के बजाय उपलब्ध सभी साधनों का समन्वय किया जाना चाहिए। इसमें सस्य क्रियाएं, अवरोधी किस्मों का उपयोग, यांत्रिक क्रियाऐं, तकनीकी एवं जैविक साधनों और अन्त में आवश्यकतानुसार रसायनिक उपचार सम्मिलित है।

(क) सस्य क्रियाएं/कर्षण क्रियाएं

1. गर्मियों में खेतों की गहरी जुताई करें ऐसा करने से जमीन में छुपे कीटों रोगों की विभिन्न अवस्थाएं ऊपर आकर सूर्य की तेज धूप/गर्मी से नष्ट हो जाती है तथा पक्षियों द्वारा अनेक जीवित एवं मृत कीड़े उनके भोजन बनकर नष्ट हो जाते हैं।
2. खेतों की सफाई करनी चाहिए क्योंकि खेतों में खरपतवार फसल के साथ–साथ उग आते हैं, वे नाशीजीवों/कीट रोगों को संरक्षण प्रदान करते हैं। खेतों को निराई–गुड़ाई करके साफ सुथरा रखना चाहिए इससे कीट/रोगों की अनावश्यक वृद्धि पर अंकुश लगता है।
3. प्रतिरोधी/सहनशील किस्मों के स्वस्थ बीजों की बुवाई करें।
4. बीज जनित रोगो की रोकथाम के लिए बीजों को संस्तुत बीज शोधन कर बोना चाहिए।
5. बुवाई यथा सम्भव उचित समय से करनी चाहिए। देर से बोई गई फसलों पर कीट/रोगों का अपेक्षाकृत अधिक प्रकोप होता है
6. पौधों से पौधों की दूरी अपेक्षाकृत ज्यादा रखनी चाहिए इससे निराई–गुड़ाई एवं अन्य क्रियाएं करने में ज्यादा सुविधा होती है और साथ ही साथ कीट/रोगों का प्रकोप भी कम होता है।
7. गलियां–पगडण्डिया बनाना खेती संबन्धी कार्यों की सहूलियतों के लिए फसल की 20–25 पंक्ति के बाद 1–2 पंक्ति छोड़ देना चाहिए।
8. उर्वरकों और सूक्ष्म तत्वों का संतुलित उपयोग करना चाहिए।
9. पानी का समुचित प्रबन्ध करना चाहिए। खेत में अधिक पानी नहीं भरा रहना चाहिए। अधिक पानी के निकास का प्रबन्ध होना चाहिए।
10. फसल की कटाई जमीन के स्तर से बिल्कुल सतह से करनी चाहिए।

(ख) यांत्रिक नियंत्रण

1. नाशीजीवों के अण्डे–गुच्छे और उनकी इल्लियों को इकट्ठा करके नष्ट करना अथवा उन्हें उनकी रोकथाम करने वाले प्राणी समूह की हिफाजत के सिलसिले में बांस के पिंजरों में रखना चाहिए।
2. कीट अथवा रोगों के द्वारा ग्रसित पौधों के प्रभावित

चित्र 1: हाथ द्वारा कीटों को पकड़ना

चित्र 2 : फेरोमोन ट्रैप का उपयोग

हिस्से अलग करके नष्ट करने चाहिए।

3. लाइट ट्रैप अथवा फेरोमोन ट्रैप का उपयोग करना चाहिए।

4. मेड़ों और सिंचाई के लिए बनाई गई नालियों में खरपतवार नहीं रहने देना चाहिए।

5. बारहमासी–लम्बे समह तक बने रहने वाले खरपतवार–घास–पात इत्यादि नष्ट करने के लिए जहॉ कहीं संभव हो, गर्मी के मौसम में जुताई करनी चाहिए।

6. जहाँ कहीं संभव हो खेत में पहले से मौजूद खरपतवारों को नष्ट करना चाहिए।

7. बुवाई करने वाले बीजों को खरपतवार रहित रखना चाहिए।

8. बुवाई के 4–6 सप्ताह बाद आवश्यकतानुसार हाथ से निराई–गुड़ाई करनी चाहिए।

(ग) जैविक नियन्त्रण

1. परभक्षी एवं परजीवियों को संरक्षण देना।

2. परभक्षी को बाहर से लाकर खेतों में छोड़ना जैसे–जीवाणु, वायरस, फफूंद तथा प्रोटोजोआ आदि।

3. शत्रु एवं मित्र कीटों का संतुलन बनाये रखना।

(घ) रसायनिक नियन्त्रण

1. कीटनाशक, खरपतवारनाशक, रोगनाशक रसायनों का प्रयोग अंतिम उपाय के रूप में करें।

2. सुरक्षित रसायनों को उचित समय पर निर्धारित मात्रा में प्रयोग करें।

3. रसायनों का प्रयोग करते समय सावधानी बरतें।

4. नीम आधारित रसायनों का प्रयोग करें।

5. खरपतवारनाशकों का प्रयोग बताये गये निर्देशों के अनुसार ही करें।

चित्र 3 : मित्र कीट (इन्द्रगोप भृंग)

भाषा केवल विचार का वाहक ही नहीं है,
अपितु चिंतन का एक सक्षम साधन भी है।
–सर एच. डेवी

कृषक समूह द्वारा कृषि विकास की पहल

आनन्द कुमार ठाकुर
गाँव–पटसारा, मुजफ्फरपुर (बिहार)

अकसर किसान अकेले ही अपने कृषि कार्यों का संपादन करता है। यहाँ तक कि अपने उत्पादों का विक्रय भी अकेले ही करता है। यही कारण है कि उसकी मोल–भाव करने की क्षमता न के बराबर रह जाती है और वह बाजार की ताकतों के आगे अपना समान आधे पौने दामों पर बेचने पर मजबूर हो जाता है। सर्वप्रथम इस बात को भारत सरकार द्वारा वर्ष 2013 में महसूस किया गया और उसी दिशा में कृषक उत्पादक समूहों के गठन का एक दूरगामी कदम उठाया गया। कृषक उत्पादक समूह (फॉरमर प्रोड्यर्सस आर्गेनाईजेशन) यानि एफपीओ के गठन का मुख्य उददेश्य कृषि उत्पादकों जिसमें लघु और सीमांत किसान शामिल है का उत्पादक संगठनों में सामूहिकीकरण कर एक संगठन बनाना जिसे कृषक उत्पादक संगठन कहा गया है। राष्ट्रीय कृषि लक्ष्यों को प्राप्त करने हेतु कृषक उत्पादक संगठनों के स्थायित्व को मान्यता प्रदान करते हुए कृषि सहकारिता एवं किसान कल्याण विभाग, कृषि एवं किसान कल्याण मंत्रालय, भारत सरकार द्वारा वर्ष 2013 के दौरान इनके दिशा–निर्देश जारी किए जिसके तहत कृषक उत्पादक संगठनों के गठन की प्रक्रिया प्रारम्भ हुई। आज देश के 29 राज्यों में यह कार्य कर रहा है। पिछले वर्ष देश में लगभग 2250 कृषक उत्पादक संगठन बनाए गए और आगामी वर्षों में 10,000 और ऐसे संगठन के लिए भारत सरकार द्वारा 6000 करोड़ रूपये आवंटित किए गए हैं। केन्द्र सरकार, राज्य सरकारों के माध्यम से इस कार्य को अंजाम दे रही है। इसकी सिंगल विंडो एजेंसी के रूप में कृषि सहकारिता एवं किसान द्वारा लघु कृषक कृषि व्यापार संघ (एस एफएसी) को नामित किया गया है। नाबार्ड भी इस कार्य में सहयोगी संस्था है। आज हजारों जागरूकता निर्माण और प्रशिक्षण बैठकों प्रदर्शन दौरों, अनुभव आदान–प्रदान, शेयर कैपिटल हेतु बचत अंशदान, तकनीकी प्रदर्शन आयोजनों, भारी मात्रा में निवेश प्राप्त करने तथा उनकी सामूहिक क्रय शक्ति बढ़ाकर दूर–दराज की मंडियों में एकत्रित उत्पाद ले जाकर एक बहुत बड़े कृषक समुदाय के संगठनों की सफलता की नई गाथा लिखी जा रही है। कई संगठन आज एक आदर्श संगठन के रूप में उभरकर आ रहे हैं और अपना व्यापारिक दृष्टिकोण

दूसरे संगठनों के साथ सांझा करते हुए उनका मार्गदर्शन भी कर रहे हैं।

कैसे करें कृषक उत्पादक संगठनों का गठन

किसानों को ग्राम स्तर पर 15–20 सदस्यों को मिलाकर एक समूह का गठन किया जाता है। जिसे कृषक हितैषी समूह कहा जाता है। ये समूह ग्राम स्तर पर फसल नियोजन, बीज उत्पादन, प्रदर्शन ज्ञान आदान–प्रदान, सामूहिकीकरण जैसे कार्यों–कलाप कर सकते हैं। क्लस्टर स्तर पर 1000 कृषक या 50 कृषक हितैषी समूह मिलकर कृषक उत्पादक कंपनी का गठन कर सकते हैं। जिसमें 10–12 गाँव शामिल हो। कलस्टर स्तर पर ऋण लेना, निवेश करना, तकनीकी, क्षमता निर्माण, बाजार संपर्क आदि गतिविधियों का संचालन किया जाता है।

कृषक उत्पादक संगठनों द्वारा प्रदत सेवाएँ

(क.) कृषि निवेश

बीज, खाद, कृषि रसायन जैसे कीटनाशी, खरपतवारनाशी आदि को ये संगठन बड़ी मात्रा में खरीदते हैं तथा अपनी दुकानों पर सदस्य किसानों व अन्य किसानों को बेचकर मुनाफा कमाते हैं। इस प्रकार सदस्यों को कृषि आदानों पर लागत में कमी आती है और उसकी गुणवत्ता भी सुनिश्चित होती है।

(ख.) कस्टम हायरिंग सेवा

खेती में कई तरह की मशीनों का उपयोग होता है जिनपर लागत बहुत अधिक है अतः सभी किसान उन मशीनों व कृषि यंत्रों को व्यक्तिगत स्तर पर नहीं खरीद सकते। कृषक उत्पादक संगठनों के पास एक कस्टम हायरिंग सेंटर भी होता है जिसके माध्यम से सदस्य किसानों व अन्य किसानों को किराए पर कृषि यंत्र उपलब्ध करवाए जाते हैं। इन केन्द्रों की स्थापना के लिए राज्य व केन्द्र सरकार द्वारा मशीनों की खरीद पर 50–80 प्रतिशत तक का अनुदान मिलता है। सरकार पूरे देश में ऐसे केन्द्रों की स्थापना पर जोर दे रही है। ताकि कृषि लागत कम हो, उत्पादकता बढ़े मजदूर की समस्या का समाधान हो और अन्ततः किसान को कृषि कर्म में निश्चिंतता हो।

(ग.) उत्पादक विपणन संपर्क

ये संगठन किसानों के उत्पादों की बिक्री/विपणन के लिए विभिन्न क्रेताओं से संपर्क कर उचित मूल्य पर बेचने का प्रयास करते हैं। ये संगठन उत्पादों की बिक्री हेतु बड़े–बड़े रिटेलरों के साथ संपर्क स्थापित कर गठजोड़ बनाते हैं। जिससे उनके उत्पादों को समुचित मूल्य मिल पाता है। आज बहुत से उत्पादक संगठन अपना भी आउटलेट खोलकर उत्पादों की बिक्री कर रहे हैं। यहाँ तक कि प्रसंस्करण का कार्य भी इन संगठनों के द्वारा अब संपादित हो रहा है जिससे उनका मुनाफा और बढ़ रहा है।

निष्कर्ष :

कृषक उत्पादक संगठन एक अनोखी शुरूआत है जो कृषि विपणन में नए आयाम स्थापित कर रही है। आज जरूरी है अधिक से अधिक किसान भाईयों को इससे सक्रियता से जुड़ने की ताकि अधिक से अधिक मुनाफा कमाया जा सके और खेती को मुनाफा का सौदा बनाया जा सके।

कृषि विकास में बैंकों की भूमिका

श्रीश कांत तिवारी
सहायक प्रबंधक, पंजाब नेशनल बैंक (वाराणसी)

कृषि भारतीय अर्थव्यवस्था की रीढ़ है, भारत का किसान अन्नदाता के रूप में विख्यात है। कोविड–19 (कोरोना) नामक महामारी के चलते भारतीय कृषकों को भारी हानि का सामना करना पड़ा है। महामारी में लॉक डाउन के कारण एक ओर खाद्य वस्तुएँ एक शहर से दूसरे शहर को नहीं पहुँच पा रही हैं वहीं दूसरी ओर "बिन मौसम बरसात" के कारण खड़ी फसलों को भारी क्षति हुई है।

रबी की फसल (गेहूँ) कटने को तैयार थी कृषकों को मढ़ाई के लिए मजदूरों की एवं हार्वेस्टर जैसे उपकरणों की आवश्यकता थी। लॉकडाउन के चलते सभी अवश्यक यंत्र कृषकों तक आसानी से नहीं पहुंच पाये। कृषकों को मजबूर होकर महँगे दर पर मशीनें एवं मजदूरों से कार्य करवाना पड़ा साथ ही साथ पश्चिम बंगाल में जूट की मिलों के बंद होने के कारण किसानों को बोरियों की उपलब्धता में भारी मात्रा में कमी आयी है, जिससे अनाज के भंडारण में भी परेशानियों का सामना करना पड़ रहा है।

अच्छी पैदावार होने के बावजूद खाद्य पदार्थों एवं कृषि उत्पादों के वितरण की व्यवस्था बाधित हो रही है। फल–सब्ज़ियों को मंडियों तक पहुँचा पाना मुश्किल हो गया है और ये खेतों में ही सड़ने लगे हैं अगर सुचारू रूप से ये अनाज उपभोक्ताओं तक नहीं पहुँच पाए तो मंहगाई में वृद्धि के साथ–साथ कृषकों पर आर्थिक संकट गहराएगा। वहीं दूसरी ओर त्वरित उत्पादों जैसे फूल, दूध आदि की भारी मात्रा में गिरावट हुई। लॉकडाउन के चलते मंदिरों के कपाट बंद होने से एवं वैवाहिक कार्यक्रमों एवं अन्य समारोहों व आयोजनों के टल जाने से कृषकों को भारी आर्थिक क्षति हुई है।

दूध उत्पादन और पशुपालन से कृषि को एक–तिहाई आय की प्राप्ति होती है। लॉक डाउन के कारण दूध की मांग एवं बिक्री में भारी मात्रा में कमी आयी है। इससे दूध एवं दूध से बने अन्य पदार्थों के दामों में 25 से 30 प्रतिशत तक गिरावट आयी है। जिससे दुग्ध उत्पादक कृषकों को भारी क्षति पहुँची है एवं उन्हें आर्थिक संकट का सामना करना पड़ रहा है। खल, चूरी, मिश्रित पशु–आहार आदि बनाने वाली मिलें बंद होने के कारण पशु आहार की अनुपलब्धता होने से दुग्ध उत्पादन में भारी गिरावट आ रही है एवं पशुओं के स्वास्थ्य पर भी प्रतिकूल असर पड़ रहा है। प्रकृति का स्वभाव ही बदलाव का होता है विनाश के पश्चात् पुनः सृजन आरम्भ होता है। कृषकों को इस भारी क्षति से उबारने में एवं कृषि कार्यों को बढ़ावा देने में बैंक कृषक मित्र के रूप में कार्य कर रहें हैं एवं विभिन्न योजनाओं के माध्यम से कृषकों की सहायता कर रहे हैं।

केंद्र सरकार के द्वारा प्रधानमंत्री किसान सम्मान निधि (पीएम किसान योजना) की पहली किस्त के तहत चालू वित्त वर्ष में ही 7.92 करोड़ किसानों के बैंक खातों में 15841 करोड़ रुपये की राशि हस्तांतरित हो चुकी है इस योजना के तहत उच्च आय वाले कृषकों को छोड़कर सभी किसानों को प्रत्येक वित्त वर्ष में 2000–2000 रूपये की तीन किश्तों में 6000 रूपये की सहायता दी गयी है एवं बैंक अपने इस कर्तव्य का निर्वहन पूरी निष्ठा एवं समर्पण के साथ कर रहे हैं।

प्रधानमंत्री किसान तत्काल ऋण योजना के अंतर्गत अत्यंत अल्प समय में कम से कम कागजी कार्यवाही के द्वारा कृषकों को त्वरित ऋण के माध्यम से सहायता पहुँचाई जा रही है। जिससे कि आगे खरीफ की फसल में उत्पादन बहुत अच्छा हो सके एवं कृषकों को कोविड–19 (कोरोना) काल में हुई हानि की भरपाई की जा सके एवं अधिक से अधिक किसान भाईयों को लाभ प्राप्त हो सके।

बैंक भी कृषकों की सेवा में अग्रिम भूमिका निभा रहा है। एक तरफ जहाँ कृषकों को आत्मनिर्भर बनाने हेतु सहजता के साथ ऋण वितरण हो रहा है वहीं दूसरी तरफ बैंक कृषक प्रशिक्षण केंद्रों के माध्यम से कृषकों एवं स्वयं सहायता समूहों को समुचित प्रशिक्षण प्रदान कर रहा है। कृषक भाईयों के खेतों का मृदा परीक्षण कर उन्हें उचित फसल उत्पादन की ट्रेंनिग दी जा रही है। प्रशिक्षण केंद्र में संगणक (कंप्यूटर) प्रशिक्षण के साथ–साथ कृषक परिवारों को सिलाई–कढ़ाई, अचार–मुरब्बा एवं अन्य पदार्थों के उत्पादन का प्रशिक्षण प्रदान किया जाता है। बैंक त्वरित ऋण की व्यवस्था कर कृषकों एवं स्वयं सहायता समूहों को आत्मनिर्भरता प्रदान कर रहा है। बैंक कृषकों के साथ–साथ पशुओं के भी स्वास्थ्य का भी परीक्षण करता है। कृषि उत्पाद एवं पशुधन की खरीद एवं बिक्री के लिए बैंक कृषि मेले का भी आयोजन करवाता है।

भारतीय बैंक यथासम्भव अपने अन्नदाता की सेवा में तत्त्पर हैं एवं त्वरित सेवा के माध्यम से कृषक भाईयों को सहायता प्रदान कर रहे हैं। भारत सरकार के विभिन्न योजनाओं के अंतर्गत अन्नदाताओं की सेवा में बैंक पूर्ण रूप से तत्त्पर है जिससे भारत के अन्नदाता, किसान आत्मनिर्भर बन सकें एवं देश की प्रगति में अपना योगदान बनाए रखें।

रक्त जलाकर देह तपाकर खेतों में करते हो काम ।
तुमसे ही है जीवन हम सबका, हे अन्नदाता तुम्हें प्रणाम ।।

राजभाषा खण्ड

सरकारी कार्य में हिन्दी और इच्छा शक्ति

राकेश कुमार कुशवाहा, सहायक निदेशक (राजभाषा)
भाकृअनुप–राष्ट्रीय डेरी अनुसंधान संस्थान, करनाल

नगर राजभाषा कार्यान्वयन समिति, करनाल के सदस्य सचिव के पद पर पिछले 3 वर्षों में कार्य करते हुए मुझे यह अनुभव हुआ है कि सरकारी कामकाज में राजभाषा के प्रयोग को तभी गति मिलती है, जब कार्यालय प्रमुख एवं सभी अधिकारी व कर्मचारी पूरी इच्छाशक्ति के साथ हिन्दी भाषा का प्रयोग करते हैं। यह कहा भी गया है कि जब धारा का प्रभाव ऊपर से नीचे की ओर होता है तो उसका वेग प्रबल होता है। वहीं यदि धारा को नीचे से ऊपर की ओर ले जाना हो तो अधिक प्रयास की आवश्यकता होती है। यहां इस दृष्टांत का आशय हिन्दी के प्रयोग को बढ़ाने की धारा से है। यदि कार्यालय प्रमुख व्यक्तिगत रूप से संज्ञान लेते हुए अपने अधिकारियों व कर्मचारियों को अपना अधिक से अधिक कार्य हिन्दी में करने के लिए कह दें तो और स्वयं प्रयोग के द्वारा सन्देश देना प्रारम्भ कर दें तो कुछ समय में ही इसके परिणाम सामने आने लगेंगे। प्रायः हम अपने दायित्वों व लक्ष्यों के प्रति समर्पित तो रहते हैं कि हमें फलां दिन, महीने या साल तक यह कार्य करना है। अपने लक्ष्य को पाने के लिए हम पूरी तन्मयता और इच्छा शक्ति से जुट जाते हैं। हमें अपने लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए अपने आप में यह विश्वास सृजित करना होता है कि हम अमुक कार्य तो कर ही लेंगे। क्या यही दृष्टिकोण, यही इच्छा शक्ति और यही जज़्बा हम हिन्दी के प्रयोग को बढ़ाने में नहीं कर सकते कि हमें आज से इन विषयों का कार्य तो केवल हिन्दी में ही करना है। हमें नीतिगत या कानूनी मामलों को छोड़कर अपने सभी दैनिक तरह के कार्य केवल हिन्दी में ही निपटाने हैं या यह कि मैं अपने साथी स्टाफ से अधिक कार्य हिन्दी में निपटाउंगा। मेरे लेख की सार्थकता होगी, यदि कुछ सरकारी कर्मचारी ही सही, इसे आज से अपने जीवन में अपनाएं।

नराकास, करनाल के 51 सदस्य कार्यालयों में से अधिकांश कार्यालय ऐसे हैं, जहां सरकारी कामकाज में हिन्दी नोटिंग, पत्राचार आदि में नीतिगत या कानूनी मामलों को छोड़कर शत–प्रतिशत कार्य हिन्दी में होता है। ऐसे कार्यालय दूसरे कार्यालयों के लिए उदाहरण कहे जा सकते हैं। ऐसे सफल कार्यालयों के अधिकारियों व कर्मचारियों की इच्छा शक्ति अन्य पक्षों के लिए निःसन्देह प्रेरणादायक सिद्ध होती है। अधिकांश अवसरों पर अपने संबोधनों में मैंने यह उल्लेख किया है कि यदि कार्यालय प्रधान की ओर से हिन्दी पत्राचार को बढ़ाने की दिशा में गंभीरतापूर्वक ध्यान दिया जाता है तो उसके सकारात्मक परिणाम तुरंत मिलने शुरू हो जाते हैं। अपने 24 वर्ष के केन्द्र सरकार के सेवाकाल के दौरान मुझे 9 वर्ष तक दक्षिण भारत के राज्यों केरल, तमिलनाडू व कर्नाटक के कुछ कार्यालयों में सेवा करने का मौका मिला। मुझे यह देखकर आश्चर्य हुआ कि दक्षिण भारत के कार्यालयों में नियमित प्रकार के सरकारी कामकाज में हिन्दी पत्राचार की प्रतिशतता अनुकरणीय है। इसकी शुरूआत उनके द्वारा समस्त नियमित दस्तावेजों जैसे, द्विभाषी कार्यालय टिप्पणियों, पत्रों, फॉर्मों, कार्यालय आदेशों, स्वीकृति आदेशों आदि को द्विभाषी रूप में प्रयोग की गई। हिन्दी भाषी राज्यों में स्थित केन्द्र सरकार के अधिकांश अधिकारियों व कर्मचारियों की मातृभाषा तो हिन्दी है, अतः उनके द्वारा सरकारी कामकाज में हिन्दी पत्राचार को बढ़ाने को पूरी इच्छा शक्ति के साथ स्वाभिमान के रूप में आगे बढ़ाया जाए, निःसन्देह सराहनीय परिणाम सामने आ सकते हैं।

सरकारी कामकाज में राजभाषा हिन्दी के प्रयोग को बढ़ावा देने के लिए भारत सरकार के द्वारा काफी परिणाम उन्मुखी प्रयास किए गए हैं एवं आगे भी जारी हैं। केंद्र सरकार के सभी मंत्रालयों, विभागों व कार्यालयों में इसे गति प्रदान करने के लिए अलग से राजभाषा विभाग, राजभाषा अधिकारी एवं हिन्दी लिपिक कार्यरत हैं। राष्ट्रीयकृत बैंकों में भी राजभाषा कार्यान्वयन विभाग मौजूद होता है। सभी विभाग अपने–अपने स्तर पर हिंदी भाषा के प्रयोग को बढ़ाने हेतु प्रोत्साहित करने के लिए हिंदी सप्ताह, हिंदी पखवाड़ा और हिंदी दिवस मनाया करते हैं। इनके साथ ही हिंदी में कामकाज की क्षमता बेहतर बनाने के लिए समय–समय पर हिन्दी कार्यशालाओं का भी आयोजन भी किया जाता है। कुछ कार्यालयों में अधिकारियों व कर्मचारियों का यह मानना होता है कि केवल राजभाषा अधिकारी व हिन्दी लिपिक आदि ही हिन्दी कार्य को बढ़ा सकते हैं। किन्तु इस संबंध में यह ध्यान देने की आवश्यकता है कि उनके प्रयास तब तक सफल नहीं हो सकते जब तक उन्हें कार्यालय प्रमुख, अधिकारियों व सभी कर्मचारियों से पर्याप्त सहयोग न मिले।

हिन्दी को संविधान में राजभाषा अर्थात् राजकीय कामकाज की भाषा के रूप में स्वीकृति मिली है। स्वतंत्रता सेनानियों एवं आमजन ने हिन्दी को संपर्क भाषा के रूप में अपनाकर ही देश को आजादी दिलाई। सन् 1947 में देश को आजादी मिलने के बाद 14 सितंबर 1949 को हिंदी को राजभाषा के तौर पर को मान्यता मिली। संविधान ने राजभाषा नीति,

नियमों एवं व्यवस्थाओं के अनुपालन हेतु हमें कुछ जिम्मेदारियां सौंपी हैं जिन्हें पूरा करना हमारा कर्तव्य है। हिन्दी भाषा को कहीं राजभाषा तो कहीं राष्ट्रभाषा कहा जाता है। यद्यपि घोषित रूप से भारतीय संविधान में कहीं भी राष्ट्रभाषा का उल्लेख नहीं है, किन्तु मन से सभी भारतीय हिन्दी भाषा को ही राष्ट्रभाषा मानते हैं।

आजादी के 70 वर्ष बीत जाने के बाद भी 14 सितंबर को हिन्दी दिवस के रूप में मनाने और यह स्मरण कराने की आवश्यकता पड़ रही है कि हमें सरकारी कामकाज में अपनी राजभाषा को प्राथमिकता देनी है। भारत सरकार का राजभाषा विभाग प्रेरणा एवं प्रोत्साहन की नीति पर राजभाषा के प्रचार–प्रसार की दिशा में कार्य कर रहा है तथा यह सही भी है कि हिन्दी को किसी पर थोपा नहीं जाना चाहिए। किसी के मन में इसके प्रति सम्मान की भावना हो तो उसे स्वेच्छा से इसका प्रयोग करने का अधिकार देना चाहिए। यह भाषा सीखने के लिए उन्हें प्रोत्साहित भी किया जाना चाहिए। जब विश्व हिन्दी सम्मेलनों में राष्ट्र के प्रतिनिधित्व की बात आती है तो अकसर हिन्दी भाषा का ही इस्तेमाल किया जाता है। आजादी के बाद लोग हिंदी दिवस मनाने के लिए घर–घर जाकर चंदा इकट्ठा करते थे। उन्हीं पैसों से काम–काजी हिन्दी का प्रशिक्षण लिया जाता था।

यह विडंबना है कि जहाँ एक ओर देश के कुछ नागरिक हिन्दी भाषा पर गर्व करते हैं तो दूसरी ओर कुछ व्यक्ति हिंदी बोलने और लिखने के बजाय अंग्रेजी के प्रयोग में अपनी शान समझते हैं। वे इस दुराग्रह से पीड़ित होते हैं कि हिन्दी बोलने से उन्हें निम्नतर माना जाएगा। क्या हम आप यह नहीं जानते हैं कि राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय मंचों पर हमारे देश की कई हस्तियां अपने हिन्दी संबोधनों से कितनी मशहूर हैं। हमारे देश की हिन्दी फिल्में भारत के अलावा विश्व के अन्य कई हिस्सों में बड़े चाव से देखी जाती हैं। यदि अपनी भाषा के प्रति दृढ़ इच्छा शक्ति और विश्वास हो तो वह सम्मान देने वाले को अनुग्रहित ही करती है। यह सही है कि हिन्दी भाषा के प्रचार एवं प्रसार के लिए जितना योगदान सिनेमा, टीवी चैनलों, फिल्मों, दृश्य–श्रव्य–प्रिंट–सोशल–इलेक्ट्रॉनिक मीडिया ने दिया है, वह सराहनीय है। भारत का उद्योग जगत तथा वाणिज्य और व्यापार हिन्दी के बिना चल नहीं सकता। प्रौद्योगिकी के मोर्चे पर भी हिन्दी काफी आगे बढ़ चुकी है। सरकारी कार्यालयों में हिन्दी पत्राचार के बढ़ावे के लिए सरकार की ओर से तो भरपूर प्रयास किए जा रहे हैं, किन्तु जनसामान्य की ओर से हिन्दी के प्रयोग की दिशा में रूचि व इच्छा शक्ति का समन्वित नमूना अभी सामने आना बाकी है। शिक्षा के क्षेत्र में क्षेत्रीय एवं अंग्रेजी भाषा के साथ–साथ हिन्दी भाषा को प्रमुखता दिए जाने की आवश्यकता है। हिन्दी के साथ–साथ अन्य भारतीय भाषाओं को भी मजबूत करना होगा ताकि मेडिकल एवं इंजीनियरिंग की शिक्षा भी इन भाषाओं में दी जा सके।

आज सरकारी कामकाज में हिन्दी भाषा के प्रयोग की स्थिति में काफी सुधार आया है लेकिन इसे और अधिक बढ़ाने की आवश्यकता है। हिन्दी भाषा में अगर विभिन्न भाषाओं के शब्दों को मिलाकर शब्द परिवार का विस्तार किया जाए तो हिन्दी भाषा के प्रति लोगों का रुझान जरूर बढ़ेगा। इससे हर भाषा–भाषी लोग इसे अपनाने से हिचकिचाएंगे नहीं। साथ ही हिन्दी भाषा के प्रचार के लिए किसी खास दिन, सप्ताह या महीने को मनाने की जरूरत भी नहीं होगी। हिन्दी अभी भी उस सम्मान से दूर है, जहां उसे आयोजनों से निकलकर जमीनी स्तर पर अपनाया जाएगा। जब हिन्दी को देश के सभी नागरिकों द्वारा सकारात्मक दृष्टिकोण से देखा जाएगा एवं अपना कहकर अपनाया जाएगा तो इसे प्रचार और प्रसार की जरूरत ही नहीं पड़ेगी। यह सकारात्मक पहलू भी है कि देश के अधिकांश व्यक्तियों को अपनी भाषा के प्रति बहुत लगाव है और वे इसे बढावा देने की दिशा में अपना महत्वपूर्ण योगदान भी दे रहे हैं। अधिकांश लोगों को यह ज्ञात नहीं है कि डॉ जयंती प्रसाद नौटियाल ने अपने शोध में यह प्रमाणित किया है कि लिखने, पढ़ने, बोलने, समझने व प्रयोग करने की दृष्टि से हिन्दी भाषा विश्व में प्रथम स्थान पर है। सूचना प्रौद्योगिकी के युग में जहाँ हिन्दी को विभिन्न प्रकार के ई–उपकरणों के माध्यम से यूजर फ्रेंडली बनाने की कोशिश की जा रही है वहीं लोगों को जरूरत है कि वे इसे प्रोत्साहित करें एवं हिन्दी भाषा को और आगे बढ़ाने में अपना योगदान दें।

यह कहना अतिश्योक्ति नहीं होगा कि दृढ़ इच्छाशक्ति व सकारात्मक सोच से ही राजभाषा कार्यान्वयन को आगे बढ़ाया जा सकता है। हिंदी प्रयोग के लिए इसे हमें इच्छा शक्ति से अपनाना होगा। मनुष्य के पास क्षमता की कमी नहीं है, हमें उसे सही दिशा में प्रयोग कराना चाहिए। यह सत्य ही कहा गया है कि इच्छा शक्ति वह बीज है, जिसका वृक्ष बड़ा होने में समय जरूर लेता है, किन्तु इसके फल बहुत मीठे होते हैं।

इतने बड़े देश में जहाँ इतनी भाषाएँ हैं, वहाँ देश की एकता के लिए एक कड़ी की आवश्यकता है। कोई भाषा ऐसी हो जिसे सब बोल सकें, जो एक कड़ी की तरह सबको मिला-जुलाकर रख सके। इसलिए हिन्दी को बढ़ावा देना सबका काम है।

- श्रीमती इंदिरा गाँधी

राजभाषा हिन्दी की दशा और दिशा

अनुज कुमार, प्रधान वैज्ञानिक एवं राजभाषा अधिकारी
भाकृअनुप–भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान, करनाल

राजभाषा हिन्दी भारतीय संस्कृति् व हमारे संस्कारों का प्रतीक है। हिन्दी ने मानवीय मूल्यों की भाषा के रूप में भारतीय धर्म, संस्कृति एवं विभिन्न कलाओं के माध्यम से वसुधैव कुटुम्बकम की पावन भावना का जन–जन में सृजन व प्रसार किया है। राजभाषा एक समृद्ध भाषा है और यह कहने में अतिशयोक्ति नहीं होगी कि हिन्दू धर्म जिस प्रकार सनातन धर्म है। ठीक उसी प्रकार राजभाषा हिन्दी भी एक सनातन भाषा है। यह संस्कृत, पाली, प्राकृत और अपभ्रंश के दौर से गुजरते हुए निरंतर बढ़ते हुए अरबी फारसी, उर्दू के साथ–साथ अंग्रेजी के शब्दों को भी अपने अंदर सन्निहित किए हुए है जो इसे और व्यापक बना रहे है। भाषा अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम है और ऐसी मान्यता रही है कि अपनी मातृभाषा में यदि भावनाओं की अभिव्यक्ति हो तो वह अतुलनीय व स्मरणीय है। तभी तो राष्ट्रकवि भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने लिखा है;

अंग्रेजी पढिके यदपि, सब गुण होत प्रवीण।
निज भाषा ज्ञान बिन, रहत हीन के हीन।।

जब हमारा देश गुलामी की जंजीरों में जकड़ा हुआ था और माँ भारती आजादी के सपूतों से आजाद होने की राह देख रही थी उस समय हिन्दी भाषा में संवाद, साहित्य सृजन राष्ट्र प्रेम की भावना को जागृत करने और आंदोलन को और उग्र बनाने में प्रहरी का काम किया। पराधीन भारत में कवियों व लेखकों की फेंहरिस्त बहुत लंबी है जिन्होंने अपनी कलम को जरिया बनाया स्वाधीनता की लड़ाई लड़ने का। अंततोगत्वा हम आजाद हुए और 14 सितम्बर, 1949 को राजभाषा हिन्दी को संघ की राजभाषा बनने का गौरव प्राप्त हुआ। समय–समय पर हमारे देश में हिन्दी विरोधी आंदोलन भी हुए परन्तु हिन्दी और समृद्ध होती चली गई और अपने साथ यह भी चरितार्थ करती चली गई कि

''प्रांत–प्रांत की अपनी भाषा सबकी अपन शान
किन्तु हिन्द की हिन्दी भाषा ही उसकी पहचान''।

हिन्दी का इतिहास गौरवशाली रहा है और उतार–चढ़ाव वाला भी रहा है। तमाम अन्तर्विरोध के बावजूद भी आज यह शीर्षस्थ स्थान हासिल कर चुकी है। हाल ही में प्रकाशित आंकड़े यह बताते है कि यह दुनिया के 206 देशों में 1,30,00,00,000 लोग हिन्दी बोल रहे हैं और 64 करोड़ लोगों की मातृभाषा हिन्दी है और 20 करोड़ लोगों की दूसरी भाषा है। यहीं नहीं करीब 44 करोड़ लोगों की तीसरी, चौथी और पाँचवी भाषा हिन्दी ही है। एक अरब तीस करोड़ लोगों द्वारा बोली जाने वाली भाषा हिन्दी आज विश्व शिखर पर विराजमान है। संयुक्त राष्ट्र संघ भी हिंदी को अपनी सूची में डालने पर विचार कर रहा है। यही कारण है कि सिर्फ हम अपने देश में ही हिन्दी दिवस नहीं मनाते है। बल्कि विश्व हिन्दी दिवस का भी आयोजन प्रति वर्ष 10 जनवरी को किया जाता है।

आज भारतवर्ष में कुल आबादी का 78 प्रतिशत लोग हिन्दी बोलते हैं जबकि चीन की भाषा मंदारिन को बोलने वाले चीन में 70 प्रतिशत ही है। आज हिन्दी के साधक पूरे ब्रह्मांड में फैले हुए हैं जिसमें मॉरीशस, सूरीनाम, फिजी, गयाना, ट्रिनिडाड और टोबैगो का उल्लेख करना लाजिमी है जहाँ हिन्दी एक बहुप्रयुक्त भाषा है। आज राष्ट्रीय और अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर हिन्दी का महत्व अधिक दिखाई देने लगा है। भाषायी क्रांति में हिन्दी विश्व स्तर पर ख्याति प्राप्त कर रही है। व्यापार व बाजारीकरण के इस दौर में जहाँ पूरा भूमंड़ल एक गाँव का रूप ले रहा है। चूंकि विश्व में हिन्दी के साधक सर्वाधिक हैं अतः इसका विश्व व्यापार की भाषा में मान्यता मिलना स्वाभाविक है। आज हिन्दी को विश्व बाजार की भाषा होने का गौरव प्राप्त हो रहा है। बदलती हुई परिस्थितियों कें कारण सूचना प्रौधोगिकी के इस युग में हिन्दी मे रोजगाार की नई–नई संभावनाए और उनसे जुड़ी चुनौतियाँ बढ़ती चली आ रही है। प्रिंट व इलेक्ट्रानिक मीड़िया की बहुआयामी मांग दिन प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। यही कारण है कि आज हिन्दी एक रोजगाार परक भाषा बन गई। यहीं कारण है कि विश्व के लगभग 175 देशों में हिन्दी के शिक्षण की व्यवस्था है। तेजी से हिन्दी सीखने वाले देशों में चीन सबसे आगे है और वहाँ के 20 विश्वविद्यालयों में हिन्दी पढ़ाई जा रही है जो कि 2020 के अंत तक 50 तक पहुँचने की संभावना है। इसका मुख्य कारण भारत की उभरती हुई अर्थव्यवस्था है जहाँ दुनिया के सभी देश एक बड़े बाजार व व्यापार की संभावना दें रहे है। आज कई विदेशी कंपनियाँ भारत में निवेश के लिए आ रही है और ये सभी कंपनियाँ अपने कर्मचारियों को हिन्दी सिखा रही है। कुछ लोगों का मानना है कि उदारीकरण और वैश्वीकरण से हिन्दी को नया जीवन मिला है। टेलीविजन, रेडियो, सिनेमा, सोशल मीडिया आदि की वजह से भाषा की लोकप्रियता और बढ़ी हैं। इससे हिन्दी भाषा की जड़ें मजबूत नही हो रही हैं। किसी भी भाषा जड़े मजबूत तब होती है जब उसका राजनीति, प्रशासन, न्यायालय,

व्यवसाय, सामाजिक संवाद आदि में व्यापक पैमाने पर प्रयोग किया जाये साथ ही साहित्य और पत्रकारिता के माध्यम से जन–साधारण पहुँचने का इसको सशक्त माध्यम बनाया जाये। कहते हैं कि अनुभूति आसान है लेकिन अभिव्यक्ति कठिन। समाज के गठन और सभ्यता के विकास में संवाद की मुख्य भूमिका रही है। संवाद का मुख्य उपकरण भाषा है। इसी में भारत की प्रीति, रीति, प्रकृति, संस्कृति व दर्शन छिपा है। सच्चा सृजनात्मक संवाद अपनी ही भाषा में आएगा। औपनिवेशिक सोंच से बाहर निकलना होगा। अपनी धरती का सौन्दर्य, प्रेम, लोक संबंध हमें उत्तरजीविता देगा और फिर भारतीय संस्कृति का सनातन प्रवाह अक्षुण होगा। प्रभुत्व तो हिन्दी में ही होगा और हिन्दी का ही होगा ऐसी चेतना अन्तर्मन में जगाने की आवश्यकता है। अब समय आ गया है भारतेन्दु हरिश्चन्द्र जी की इन पंक्तिओं को आत्मसात करने का .....

''विविध कला शिक्षा अमित, ज्ञान अनेक प्रकार।
सब देसन से लें मै करहूँ, भाषा माहि प्रचार''।।

राष्ट्रभाषा हिन्दी देश की जागरूकता और
उद्बोधन का प्रतीक है।

– सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला'

करें हम हिन्दी का सम्मान

करें हम हिन्दी का सम्मान
प्रान्त प्रान्त की अपनी भाषा सबकी अपनी शान
किंतु हिन्द की हिन्दी भाषा ही उसकी पहचाान
करें हम हिन्दी का सम्मान
बंगाली, पंजाबी भाषा, गुजराती, मद्रासी
कन्नड़, उडिया, तमिल तेलगू, कोकड़ उर्दू, खासी
अलग–अलग प्रान्तों की बोली हर भाषा मृदु भाषी
भाषा से मिला करें एकता, हम सब हिन्दी भाषी
करें हम हिन्दी का सम्मान
कबीरा ने हिन्दी में ओढ़ी चादर भन्नी–भन्नी
हिन्दी से रसखान बजाई, कृष्ण प्रेम की बेनी
गाकर गिरधर भजन बनी है, मीरा श्याम सलोनी
करें हम हिन्दी का सम्मान
सावन, कजरी, सोहर बन्ना सब हिन्दी में गाये
नौंटकी अल्हा ढोला सब हिन्दी में ही गाये
उपन्यास, संस्करण, कहानी हिन्दी लेख समाये
दोहा, सोरठ, छंद, सवैया, सब हिन्दी रचवाये
करें हम हिन्दी का सम्मान
केशव, देव, प्रसाद निराला के मन हिन्दी भाई
तुलसी, सूर, कबीर, जायसी ने हिन्दी अपनाई
रत्नाकर, पदमाकर, दिनकर हिन्दी हृदय समाई
मीरा, मुमदा, महादेवी ने हिन्दी जोत जलाई
करें हम हिन्दी का सम्मान

संकलन :
अनुज कुमार प्रधान वैज्ञानिक एवं राजभाषा अधिकारी
भाकृअनुप–भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान, करनाल

मन के धन वे भाव हमारे हैं खरे

मन के धन वे भाव हमारे है खरे।
जोड़ जोड़ कर जिन्हें पूर्वजों ने भरे ।।
उस भाषा में जो हैं इस स्थान की।
उस हिन्दी में जो हैं हिन्दुस्तान की ।।
उसमें जो कुछ रहेगा वही हमारे काम का।
उससे ही होगा हमें गौरव अपने नाम का।।
'हम' को करके व्यक्त, प्रथम संसार से।
हुई जोड़ने हेतु सूत्रा जो प्यार से ।।
जिसे थाम हम हिले मिले दो चार से ।।
उसे छोड़कर और के बल उठ सकते है नहीं।
पड़े रहेंगे, पता भी नहीं लगेगा फिर कहीं।।
पहले पहल पुकारा था जिसने जहाँ।
जिन नामों से जननि प्रकृति को, वह वहाँ।।
सदा बोलती उनसे ही, यह रीति हैं।
हमको भी सब भाँति उन्हीं से प्रीति है।।
जिस स्वर में हमने सुना प्रथम प्रकृति की तान को।
वही सदा से प्रिय हमें और हमारे कान को।।
भोले भाले देश भाईयों से जरा।
भिन्न लगें, यह भाव अभी जिनमें भरा ।।
जकड़ मोह से गए, अकड़ कर जो तने।
बानी बाना बदल बहुत बिगड़े, बने।।
धरते नाना रूप जो बोली अद्भुत बोलते।
कभी न कपट–कपाट को कठिन कंठ के खोलते।।
अपनों से हो और जिधर वे जा बहे।
सिर ऊँचे निज नही, पैर पर पा रहे।।
इतने पर भी बने चले जाते बड़े।
उनसे जो हैं आस–पास उनके पड़े।।
अपने का भी जो भला अपना सकते हैं नहीं।
उनसे आशा कौन सी की जा सकती हैं कहीं?।।
अपना जब हम भूल भूलते आपको,
हमें भूलता जगत हटाता पाप को।।
अपनी भाषा से बढ़कर अपना कहाँ?
जीना जिसके बिना न जीना है यहाँ।।
हम भी कोई थे कभी, अब भी कोई हैं कहीं।
यह निज वाणी–बल बिना विदित बात होगी नहीं।।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, 1917

जौ एवं गेहूँ अनुसंधान परिवार

मैं भी अब एक हिस्सा हूँ जौ एवं गेहूँ अनुसंधान परिवार का ।
ये मुस्कराहट का कारण है यहाँ के कई किसान परिवार का ।।

कहानी इसकी लम्बी है मैं संक्षिप्त में बतलाता हूँ।
भारतीय कृषि अनुसंधान से वर्तमान तक सब समझाता हूँ।।
वर्ष 1905 में शुरू हुआ सफर बिहार स्थित पूसा स्थान से ।
वर्ष 1965 में जुड़ा नया अध्याय, नाम गेहूँ अनुसंधान से ।।
उन्हीं दिनों क्रांति हुयी थी और खलिहान हुआ हरित संसार का ।
मैं भी अब एक हिस्सा हूँ .....

जगह बदली गयी पहले दिल्ली पहुँचा, अब करनाल नामक स्थान है।
नाम भी परिवर्तित हुए पहले गेहूँ निदेशालय था अब संस्थान है।।
विविध प्रकार के बीज बनाये, तकनीकों का ईजाद हुआ सहायता करते है किसान की।
कई कार्यशालाएं होती हैं, प्रशिक्षण होते हैं केवल बढ़ाने को आय किसान की।।
यही रहती है कोशिश की मुस्कराता रहे हर शख्स इस देश के कृषि परिवार का ।
मैं भी अब हिस्सा हूँ .....

हमारा भी दायित्व है कृतज्ञ रहे यहां के बढ़ते प्रयासों की ओर।
मिलकर ले चलते हैं इस देश को जहाँ से आरंभ हो एक सुनहरी भोर ।।
यहाँ के प्रयास एवं हमारी कर्तव्यनिष्ठा दोनों का सुयोग्य मिश्रण करना होगा ।
विश्व का इस विश्व गुरु की ओर फिर से आकर्षण करना होगा ।।
अब निश्चित करना होगा, हर देशवासी के आहार का ।।
मैं भी अब हिस्सा हुँ .....

अब आप भी बन जाए हिस्सा इस परिवार का।।।

सूरज गोस्वामी
भाकृअनुप–भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान, करनाल

किसान

क्यू कमी आ गई आज देश में इंसानो की।
क्यू दुर्गति हो रही है भारत में किसानों की।।
किसान ???
भूलकर अपना सुख दुःख खेत में हल वो चलाता है।
देव एक बार को भूले पर वो अपना धर्म निभाता है।।
बचाते दाने–दाने को अपनी चिर नींद को जगाता है।
फिर भी पैसा हम सभी से कम ही कमाता है।।
कथाएँ कम नहीं है इन सब के अपमानों की...
क्यों कमी...
कुछ भी हो पर आप को भोजन तो मिल पाता है।
लेकिन वो तो अपने दुःखडों को बस गुदडी में सिल पाता है।।
गम उसका नहीं जब पांच सितारा में लाखों का बिल आता है।
लेकिन सब्जी वालो के दो रूपयों में आप का दिल आ जाता है।।
कौन करेगा रक्षा इन सब के सम्मानों की...
क्यों कमी ...
क्या यही वो हिन्द जहाँ बहती गंगा की धारा है।
पर अब तो चढ़ता हर जगह गंदगी का पारा है।।
क्या यहीं वह जय जवान, जय किसान वाला नारा है।
पर आज बढ़ती मंहगाई ने किसान को ही मारा है।।
कब तक मौज उड़ाओगे उन झूठे अफसानों की...
क्यों कमी ...
अब तो जाग उठे हृदय, भारत के वीर जवानों का।
अब तो भाग उठे आखों से नीर किसानों का।
अब तो बचा लो ये गिरता रक्त किसानों का।।
वर्ना उदर नहीं भर पाएगा ये नीर तुम्हारे मयखानों का ।
क्यों परिभाषा बदल रहीं जो चली आई जमानों की...
क्यों कमी ...

कहीं ऐसा तो नहीं मैं दीवार से शीश को फोड़ गया।
भरी सभा में बैठ चट्टानों से, शीश को जोड़ गया।।
भूल गया की आया तो कुछ और कहने था।
और हृदयहीनों का ही हृदय में तोड़ गया।।
मिथ्या कर देना सत्यता मेरे इन मुख्यबनों की...
क्यों कमी ...

सूरज गोस्वामी
भाकृअनुप–भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान, करनाल

सब उसको कहते मजदूर

टप टप झरे पसीना तन से
सिर पर भर गई देखो धूल
झुरई आज कमाया दो सौ
कहते उसको सब मजदूर।।

दिन भर वो बस खटता रहता
डांट मालिक का दिन भर सुनता
मेहनत कर कर हाड़ जलाता
तब जाकर कुछ पैसे पाता।।

झोपड़पट्टी में वो रहता है
कल की चिंता ना करता है
दिन में मिलै चिलम तब ठीकै
रात में देशी चाहिये जरूर।।

मजदूरी में दिन कट जावै
रात में थक कर जब घर आवै
मुनिया देके गुड़ का रोरा
ठण्डा पानी रोज पियावै।।

एक दरिद्दर देखो आया (कोरोना)
दुनिया में आफत है मचाया
बैठे दुबके घर में हैं सब
झुरई बैठा होके मजबूर।।

तबियत की भी फिकर नही है
खाने को कुछ अन्न नही है
दुल्लर भुलई रोते रहते
झुरई कितना है मजबूर।।

सेवा को कुछ लोग हैं आए
सौ सौ फोटो सब खिचवाए
देते एक और हजार बतायें
झुरई कितना है मजबूर।।

मुनिया बोली झुरई से अब
नाम लेव इस्सर के तू अब
बिन मौसम बरसात होय रही
खड़ी फसल सब नाश होय रही।।

सर पर हाथ धरै झुरई अब
दोष दे रहा किस्मत को सब
तरस रहा रोटी को वो अब
सब कहते उसको मजदूर।।
झुरई कितना है मजबूर.....

श्रीश कांत तिवारी
उप प्रबंधक, पंजाब नेशनल बैंक, वाराणसी

हिन्दी कार्यक्रमों पर रिपोर्ट

भाकृअनुप–भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान, करनाल में वर्ष 2019–20 के दौरान हिन्दी अनुभाग द्वारा अनेकों कार्यक्रम आयोजित किये गए जिनका संक्षिप्त विवरण नीचे दिया जा रहा है।

राजभाषा कार्यान्वय समिति की तिमाही बैठकें

इस संस्थान की राजभाषा कार्यान्वयन समिति की चारों तिमाही बैठकें (15 जून एवं 7 दिसम्बर, 2019) आयोजित हुई। जिनमें संस्थान द्वारा राजभाषा हिन्दी की प्रगति पर चर्चा की गई। संस्थान की कार्यान्वयन समिति द्वारा सुझाये गये अधिकतम मुद्दों पर प्रगति सराहनीय रही।

नगर राजभाषा कार्यान्वयन समिति की बैठकें

भाकृअनुप–राष्ट्रीय डेरी अनुसंधान संस्थान, करनाल में नराकास की 69वीं छमाही समीक्षा बैठक का आयोजन दिनांक 26 जून, 2019 को हुआ जिसमें डा. आर.के. शर्मा (कार्यकारी निदेशक) एवं डा. अनुज कुमार प्रधान वैज्ञानिक एवं राजभाषा अधिकारी ने भाग लिया।

दिनांक 15 नवम्बर, 2019 को 70वीं छमाही समीक्षा बैठक का आयोजन भाकृअनुप–राष्ट्रीय डेरी अनुसंधान संस्थान, करनाल में हुआ जिसमें संस्थान के निदेशक डा. ज्ञानेन्द्र प्रताप सिंह, राजभाषा अधिकारी डा. अनुज कुमार एवं डा. रविन्द्र कुमार ने भाग लिया।

राजभाषा उत्सव एवं हिन्दी पखवाड़ा

भाकृअनुप–भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान, करनाल में प्रत्येक वर्ष की भांति वर्ष 2019 में भी **राजभाषा उत्सव एवं हिन्दी पखवाड़ा** का आयोजन किया गया। इस दौरान विभिन्न वर्ग के अधिकारियों व कर्मचारियों के लिए सात प्रतियोगिताओं का आयोजन किया गया जिसमें संस्थान के सभी अधिकारियों व कर्मचारियों ने बढ़–चढ़कर भाग लिया। दिनांक 16 सितम्बर, 2019 को हिन्दी दिवस का आयोजन किया गया।

तालिकाः हिन्दी **''राजभाषा उत्सव एवं हिन्दी पखवाड़ा''** 2019 परिणाम के दौरान आयोजित प्रतियोगिताएं एवं विजेताओं की सूची :

विजेता का नाम	वर्ग	प्रतियोगिता का नाम	प्राप्त स्थान
श्रीमती सुमन थापा	कुशल सहायक कर्मचारी वर्ग	हिन्दी सुलेख	प्रथम
श्री हरिन्द्र कुमार			द्वितीय
श्री अमन कुमार			तृतीय
श्री रामपाल			प्रोत्साहन
श्री लखविन्द्र सिंह			प्रोत्साहन
श्री सुनील कुमार	(प्रशासनिक)	टिप्पणी एवं मसौदा लेखन	प्रथम
श्रीमती प्रोमिला वर्मा			द्वितीय
श्री शिवा भारद्वाज			तृतीय
श्रीमती सोनम वर्मा			प्रोत्साहन
श्री रमेश चन्द			प्रोत्साहन
श्री नरेश कुमार			प्रोत्साहन
श्री रामकुमार	(तकनीकी)	भाषण : आज के समय में गाँधीवादी	प्रथम
श्री सुरेन्द्र सिंह		विचारधारा की प्रासंगिकता	द्वितीय
श्री ओम प्रकाश			तृतीय
श्री चन्द्रबाबू			प्रोत्साहन
डा. बी के मीणा			प्रोत्साहन
सुश्री किरन, निशु, रूचिका	(सभी के लिए)	गाँधी जी के जीवन पर पोस्टर प्रदर्शनी	प्रथम
सुश्री रितू सैनी, श्री तुषार खंडाले, सुश्री शवानी, श्री अजीत सिंह, श्री विपिन कुमार मलिक, श्री विजय सिंह, सुनिता जसवाल, डा. स्नेह नरवाल जमुना देवी, डा. सेवा राम एवं डा. ओ पी गुप्ता, डा. वनिता पाण्डेय			द्वितीय

डा. मंगल सिंह, रमेश चन्द्र, डा. सत्यवीर सिंह, डा. सेन्दिल आर. डा. अनुज कुमार			तृतीय
श्री विकास जून, सुश्री निधि कंबोज, श्री दिनेश चौधरी एवं श्री संदीप कुमार			प्रोत्साहन
डा. ओम प्रकाश, डा. हनीफ खान, श्री सतीश कुमार, डा. सी एन मिश्र, डा. मम्रुथा एच एम, डा. पूनम जसरोटिया, श्री मदन लाल एवं श्री सुरेश कुमार			प्रोत्साहन
श्री योगेश कुमार, डा. मम्रुथा एच एम, डा. रिंकी, श्री राकेश कुमार एवं सुश्री अंकिता पाण्डेय			प्रोत्साहन
डा. प्रेमलाल कश्यप, सुश्री अंजू शर्मा, सुश्री पालिका शर्मा, श्री रविशेखर कुमार, श्री कृष्ण गोपाल, डा. पूनम जसरोटिया एवं डा. सुधीर कुमार			प्रोत्साहन
डा. लोकेन्द्र कुमार	(वैज्ञानिक वर्ग)	**खुला मंच** : आज की युवा पीढ़ी एवं गाँधी	प्रथम
डा. पीएल कश्यप			द्वितीय
डा. ओपी गुप्ता			तृतीय
डा. नीरज कुमार			प्रोत्साहन
डा. कर्णम वेंकटेश			प्रोत्साहन
श्रीमती पूनम सलूजा (एमएसएमई)	नराकास स्तर (सभी के लिए)	**निबंध लेखन** : गाँधी और आधुनिक भारत	प्रथम
श्रीमती सोनिका यादव (एनडीआरआई)			द्वितीय
श्री सुनील कुमार (आईआईडब्ल्यूबीआर)			तृतीय
सुश्री सोनम वर्मा (आईआईडब्ल्यूबीआर)			प्रोत्साहन

पुरस्कार व सम्मान

उत्कृष्ट कर्मचारी पुरस्कार 2019

प्रत्येक वर्ष की भांति वर्ष 2019 में भी राजभाषा हिन्दी में अधिकतर कार्य करने वाले कर्मचारियों को उत्कृष्ट कर्मचारी पुरस्कार से नवाजा गया। सभी वर्गों के लिए इस प्रतियोगिता के आयोजन का मुख्य उद्देश्य हिन्दी में कामकाज को बढ़ावा देना है।

कर्मचारी	पदनाम	अनुभाग	प्राप्त स्थान
श्री नरेश कुमार	प्रवर श्रेणी लिपिक	प्रशासन	प्रथम
श्री कृष्ण पाल	सहायक	वित्त एवं लेखा	द्वितीय
श्री सुनील कमुार	सहायक	प्रशासन	तृतीय
डा. सुधीर कुमार	प्रमुख अन्वेषक	फसल सुरक्षा	प्रोत्साहन
डा. मंगल सिंह	सहायक मुख्य तकनीकी अधिकारी	सामाजिक विज्ञान	प्रोत्साहन
श्रीमती प्रोमिला वर्मा	सहायक	प्रशासन	प्रोत्साहन

नराकास, करनाल का पुरस्कार

नराकास करनाल के अधीनस्थ सभी केन्द्रीय कार्यालयों/संस्थाओं को हिन्दी में उत्तम कार्य करने के लिए 2018–19 का पुरस्कार दिया गया जिसमें भाकृअनुप–भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान, करनाल को द्वितीय पुरस्कार से सम्मानित किया गया। संस्थान की ओर से डा आरके शर्मा, कार्यकारी निदेशक एवं डा अनुज कुमार प्रधान वैज्ञानिक व राजभाषा अधिकारी ने

20 जून, 2019 को राष्ट्रीय डेरी अनुसंधान संस्थान, करनाल में नराकास की छमाही बैठक में आयोजित समारोह में पुरस्कार ग्रहण किया।

करनाल नगर राजभाषा गौरव प्रमाण पत्र

भाकृअनुप–राष्ट्रीय डेरी अनुसंधान संस्थान, करनाल द्वारा संस्थान व नगर स्तर पर डा. अनुज कुमार, प्रधान वैज्ञानिक एवं राजभाषा अधिकारी को राजभाषा हिन्दी के प्रचार–प्रसार व प्रोत्साहन की दिशा में किए गए प्रयासों एवं उपलब्धियों के लिए ''संस्थान राजभाषा गौरव प्रमाणपत्र'' से 18 अक्तूबर, 2019 को राजभाषा हिन्दी उल्लास मास–2019 के पुरस्कार वितरण समारोह में दिया गया।

संस्थान राजभाषा गौरव प्रमाण पत्र

भाकृअनुप–राष्ट्रीय डेरी अनुसंधान संस्थान, करनाल द्वारा संस्थान व नगर स्तर पर डा. अनुज कुमार, प्रधान वैज्ञानिक एवं राजभाषा अधिकारी को राजभाषा हिन्दी के प्रचार–प्रसार व प्रोत्साहन की दिशा में किए गए प्रयासों एवं उपलब्धियों के लिए ''संस्थान राजभाषा गौरव प्रमाण पत्र'' से 18 अक्तूबर, 2019 को राजभाषा हिन्दी उल्लास मास–2019 के पुरस्कार वितरण समारोह में दिया गया।

नगर राजभाषा कार्यान्वयन समिति, पानीपत

नगर राजभाषा कार्यान्वयन समिति, पानीपत की 41वीं समीक्षा बैठक में नराकास, करनाल के कार्यकारी अध्यक्ष के रूप में दिनांक 24 दिसम्बर, 2019 को पानीपत रिफाइनरी के सभागार में भाग लिया।

गेहूँ एवं स्वर्णिमा उत्कृष्ट लेख पुरस्कार

संस्थान की वार्षिक हिन्दी पत्रिका गेहूँ एवं स्वर्णिमा के दसवें अंक में प्रकाशित ''भारत में सिंचाई जल एवं कृषि'' (राज पाल मीना, अनुज कुमार, कर्णम वेंकटेश एवं अंकिता झा) तथा ''दक्ष तकनीकियों द्वारा टिकाऊ खेती एवं सतत् उत्पादन'' (अनुज कुमार, राज पाल मीना, आरएस छोकर, सेन्दिल आर एवं रमेश चन्द) को उत्कृष्ट लेख पुरस्कार से सम्मानित किया गया है। इस प्रतियोगिता में चयनित दो लेखों के लिए 3000 रूपये प्रति लेख की नगद राशि दी जाती है।

कार्यशालाओं का आयोजन

भाकृअनुप–भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान, करनाल में विभिन्न रूप से कार्यशालाओं का आयोजन किया गया।

1. **''योग ही जीवन''** विषय पर एक दिवसीय कार्यशाला का आयोजन 21 जून, 2019 को किया गया।

2 **''राजभाषा का उत्थान''** विषय पर एक दिवसीय कार्यशाला का आयोजन 16 सितम्बर, 2019 को किया गया।

3. **''सतर्कता जागरूकता कार्यशाला''** विषय पर एक दिवसीय कार्यशाला का आयोजन 2 नवम्बर, 2019 को किया गया।

4. **''भारतीय कृषि के विकास में बैंकों की भूमिका''** विषय पर 17 फरवरी, 2020 को एक दिवसीय कार्यशाला का आयोजन किया गया।

राजभाषा उत्सव एवं हिन्दी पखवाड़ा (16–30, सितंबर), 2019 के अन्तर्गत गतिविधियों की झलक

गेहूँ एवं जौ स्वर्णिमा

का बारहवाँ अंक (वर्ष 2020)

''कृषि में महिलाओं का योगदान एवं महिला सशक्तिकरण'' विषय पर आधारित होगा।

गेहूँ एवं जौ स्वर्णिमा

के दसवां अंक (वर्ष 2018) में

इन दो आलेखों को उत्कृष्ट पुरस्कार देकर सम्मानित किया गया।

1. भारत में सिंचाई जल एवं कृषि
राजपाल मीना, अनुज कुमार, कर्णम वेंकटेश एवं अंकिता झा

2. दक्ष तकनीकियों द्वारा टिकाऊ खेती एवं सतत् उत्पादन
अनुज कुमार, राजपाल मीना, आर एस छोकर, सेन्दिल आर एवं रमेश चन्द

कृपया अपने लेख 30 अक्तूबर, 2020 तक भेजे
anujp2001@gmail.com/ anuj.kumar1@icar.gov.in
dwrrajhasha@gmail.com पर kurti Dev10/16 में तथा फोटो JPEG प्रारूप में भेजें।

भाकृअनुप-भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान

करनाल – 132001, भारत

ICAR-Indian Institute of Wheat and Barley Research

Karnal-132001, India